एमएपीएसटी - 08

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुलिस - संघर्ष निवारण

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. विनय कुमार पाठक
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक/ समन्वयक एवं सदस्य

संयोजक
प्रो. करण सिंह
आचार्य, राजनीति विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सह संयोजक
डा. अकबर अली
सहायक आचार्य, लोक प्रशासन
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

1. **श्री ओ.पी. माथुर (आई.पी.एस)**
   कुलपति
   रक्षा शक्ति विश्वविद्यालय, अहमदाबाद, (गुजरात)
2. **श्री एम.एल. कुमावत (आई.पी.एस)**
   कुलपति
   सरदार पटेल पुलिस सुरक्षा एवं आपराधिक न्याय विश्वविद्यालय, जोधपुर
3. **श्री भूपेन्द्र सिंह (आई.पी.एस)**
   निदेशक
   राजस्थान पुलिस अकादमी, जयपुर
4. **श्री बी.एन. राय (आई.पी.एस)**
   निदेशक
   सरदार वल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद
5. **श्री रिषिराज सिंह (आई.पी.एस)**
   निदेशक
   केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, मुम्बई
6. **श्री राजीव त्रिवेदी (आई.पी.एस)**
   निदेशक
   आंध्र प्रदेश पुलिस अकादमी, हैदराबाद
7. **श्री निखिल जे. गुप्ता (आई.पी.एस)**
   उपनिदेशक
   महाराष्ट्र पुलिस अकादमी, नासिक
8. **प्रो. पी.डी. शर्मा**
   सेवानिवृत्त आचार्य
   राजनीति विज्ञान विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
9. **प्रो. लीलाराम गुर्जर**
   आचार्य, राजनीति विज्ञान
   वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संपादन एवं पाठ्यक्रम लेखन

संपादक
प्रो. करण सिंह
आचार्य, राजनीति विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सह संपादक
डा. अकबर अली
सहायक आचार्य, लोक प्रशासन
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

भाषा संपादक
डॉ. कीर्ति सिंह
सहायक आचार्य, शिक्षा
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संपादन एवं पाठ्यक्रम लेखन

पाठ्यक्रम लेखन

1 **डॉ. गोपाल सिंह** (1,2,1**8**)
विभागाध्यक्ष
राजकीय महाविद्यालय, कोटा

2 **डॉ. गीता अग्रवाल** (18)
परामर्शदाता, व.म.खु.वि.वि.,
कोटा

3 **डॉ. स्मृति सिंह**(3, 6,7,8,15)
व्याख्याता, हिन्दी विभाग
अग्रवाल स्नातकोत्तर, सेवानिवृत्त,आगरा रोड, अजमेर

4 **डॉ. मिनाक्षी विजय** (4,10,10,11,13)
व्याख्याता, लोक प्रशासन
जयपुर

5 **डॉ. सुषमा सिंह** (17)
रीडर, शिक्षा विभाग
जे.एल.एन.टी.टी. महाविद्यालय, सकतपुरा, कोटा

6 **प्रो. पी. डी. शर्मा** (**5**,1**4**,1**6**)
रिडार्यड, आचार्य राजनीति विज्ञान
जयपुर

7 **डॉ. एन. एल. गुर्जर** (19)
प्राचार्य,
शहीद केप्टन रिपुडमान विधी कॉलेज
सवाई माधोपुर

8 **श्री योगेश शर्मा** (18)
सहायक आचार्य, विधी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ.) विनय कुमार पाठक
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. लीलाराम गुर्जर
निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. (डॉ.) करण सिंह
निदेशक,
पाठ्यसामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. अनिल कुमार जैन
अतिरिक्त निदेशक,
पाठ्यसामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन: फरवरी, 2014 **ISBN No. : 13/978-81-8496-433-2**

इस सामग्री के किसी भी अंश भी अंश को व.वि.खु.म., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व.वि.खु.म., कोटा के लिए कुलसचिव को व.वि.खु.म., कोटा द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित (.राज)

मैसर्स दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर द्वारा मुद्रित प्रतियाँ 300

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

इकाई सं.	इकाई का नाम	पेज न.
इकाई – 1	संघर्ष का अर्थ एवं परिभाषा	1
इकाई – 2	भारतीय समाज में संघर्ष के कारण और प्रकृति	19
इकाई – 3	संघर्ष और पुलिस की भूमिका	28
इकाई – 4	सी डी आर (अपराध जांच रिपोर्ट)	39
इकाई – 5	पुलिस और विरोधी स्थितियों का प्रबन्धन	48
इकाई – 6	गांधी और पुलिस प्रशासन	57
इकाई – 7	अहिंसा का संघर्ष-प्रकृति एवं स्वरूप	64
इकाई – 8	संघर्ष का समाधान और सत्याग्रह की भूमिका	76
इकाई – 9	शांति शिक्षा	84
इकाई – 10	अमेरिका में शांति आंदोलन	94
इकाई – 11	अमेरिका में नागरिक अधिकार आंदोलन	110
इकाई – 12	शांति समितियों की भूमिका	130
इकाई – 13	शांति सेना- अर्थ एवं प्रकृति	140
इकाई – 14	गांधी, सुरक्षा और पुलिस	145
इकाई – 15	संघर्ष के समाधान- सिद्धान्त एवं प्रयोग	155
इकाई – 16	सामाजिक संघर्षों के सुलझाने में पलिस की भूमिका	161
इकाई – 17	प्रतिद्वन्द्व का तात्पर्य	168
इकाई – 18	संघर्ष समाधान : वैधानिक एवं व्यवहारात्मक सन्दर्भ	187
इकाई – 19	आपराधिक न्याय प्रशासन: अन्तर्विरोध निवारण का एक सिंहावलोकन	197

इकाई - 1

संघर्ष का अर्थ एवं परिभाषा

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 संघर्ष का अर्थ एवं परिभाषा
1.3 संघर्ष की विचारधाराएँ अथवा दृष्टिकोण
1.4 संघर्ष की प्रकृति
1.5 संघर्ष की प्रक्रिया एवं स्तर
1.6 संघर्ष के प्रकार
1.7 संघर्ष उत्पन्न होने के कारण
1.8 संघर्ष समाधान की विधियाँ
1.9 संघर्ष समाधान की तकनीक
1.10 संघर्ष का क्षेत्र
1.11 सारांश
1.12 अभ्यास प्रश्न
1.13 संदर्भ ग्रंथ

1.0 उद्देश्य (Objectlves)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :-

- संघर्ष का अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र को भली भाँति समझने में सक्षम हो सकेंगे।
- संघर्ष की प्राचीन एवं नवीन विचारधाराओं में अन्तर करने में समर्थ हो सकेंगे।
- किसी संगठन में उत्पन्न होने वाले संघर्ष के प्रकारों को समझ सकेंगे।
- किसी संगठन में संघर्ष उत्पन्न होने के कारणों से अवगत हो सकेंगे।
- संघर्ष के समाधान के तरीकों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे; और
- संघर्ष की प्रक्रिया और स्तर के बारे में समझ उत्पन्न कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

संगठन में पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अनेक व्यक्ति सामूहिक रूप से प्रयासरत् रहते हैं। संगठन में कार्यरत् इन विभिन्न व्यक्तियों की मानसिक स्थिति, शैक्षणिक स्तर, आकांक्षा, अभिरूचि एवं कार्य के प्रति दृष्टिकोण में पर्याप्त अन्तर होता है। इसलिए उनमें संघर्ष होना स्वाभाविक है। अत: संगठन एवं संघर्ष दोनों साथ-साथ चलते है। दूसरे शब्दों में कहें तो संघर्ष संगठन के अस्तित्व के साथ जुड़ा हुआ है। यदि किसी संगठन में संघर्ष का अभाव दिखाई देता है, तो इसका यह आशय है कि वह संगठन या तो नीरस है अथवा उसमें संघर्षों को जान-बूझकर दबाकर रखा गया है।

परम्परागत प्रबन्धक/प्रशासक संघर्ष को संगठन के विकास और समुन्नयन के लिए घातक एवं विनाशकारी मानते हैं, लेकिन आधुनिक प्रबन्धक संघर्ष को दबाने अथवा उसकी उपेक्षा करने के बजाय उसे चुनौती के रूप में स्वीकार कर उसका रचनात्मक उपयोग करना चाहते हैं। मेरी पार्कर फौलेट ने रचनात्मक संघर्ष (Constructive Conflict) की अवधारणा का प्रतिपादन करते हुए स्पष्ट किया है कि संघर्ष का एक सकारात्मक पक्ष भी है। इसी कारण आधुनिक प्रशासक/प्रबन्धक संगठन में परिवर्तन, अन्तर्व्यवहार एवं सक्रियता की दृष्टि से संघर्ष की स्थिति को एक सीमा तक स्वीकार करने लगे हैं और उसके उत्पन्न होने के कारणों को समझकर उसका रचनात्मक उपयोग करने में विश्वास रखने लगे हैं।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का भी अभिमत है कि जो शक्ति संघर्षों के निराकरण में व्यर्थ जाती है, यदि उसका रचनात्मक उपयोग किया जाए तो संगठन के वातावरण को कार्य संस्कृति के विकास और प्रतिस्पर्धात्मक लाभा की दृष्टि से स्वस्थ एवं सशक्त बनाया जा सकता है। इसलिए संघर्ष को समझाना और उसका सकारात्मक उपयोग संगठन और उसमें कार्यरत कार्मिकों के व्यापक एवं पारस्परिक हित संरक्षण एवं संवर्धन हेतु किया जाना चाहिए।

1.2 संघर्ष का अर्थ एवं परिभाषा

सामान्य अर्थ में, संघर्ष दो या अधिक पक्षों के मध्य हितों, विचारों, मूल्यों एवं दृष्टिकोणों की टकराहट है। स्वार्थों और सोच की भिन्नता संघर्ष का मूल कारण है - जिसके कारण अन्तवरैयक्तिक व्यवहारों (inter-personal behaviours) में परिवर्तन परिलक्षित होने लगता है। अलग-अलग विद्वान संघर्ष को अलग-अलग दृष्टि से देखते हैं। कार्ल मार्क्स संघर्ष को 'वर्ग संघर्ष' (Class conflict) के रूप में देखते हैं। समाज शास्त्रीय दृष्टि से संघर्ष एक आनुभाविक सत्य है। अमेरिकन समाजशास्त्री संघर्ष को 'सहयोग और समायोजन' के रूप में देखते हैं। औद्योगिक संगठन इसे श्रम संघ प्रबन्धक वर्ग के बीच होने वाले उन व्यवहारों के रूप में देखते हैं जिनके माध्यम से विरोध एवं परस्पर विरोधी अनुस्थापनों की अभिव्यक्ति होती हैं। कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गयी संघर्ष की परिभाषा अग्रांकित है :-

जोसेफ रिट्स के शब्दों में, ''एक संगठन के अन्दर संघर्ष को सामान्य कार्य संचालन में बाधा, रूकावट एवं व्यवधान के रूप में वर्णित किया जाता है, जिसके फलस्वरूप व्यक्तियों और समूहों को सामूहिक रूप से कार्य करने में कठिनाई अनुभव होती है।''

डेविड आर. हेम्पटन के अनुसार, ''संघर्ष उस व्यवहार को कहा जाता है जो दो या अधिक पक्षकारों के इस कारण से विरोधी स्थिति ग्रहण करने पर उत्पन्न होता हे कि एक पक्ष की कार्यवाही को दूसरा पक्ष अपने लिए तुलनात्मक वचन की स्थिति में अनुभव करता है।''

स्टीफन पी. रोबिन्स ने संघर्ष को एक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है जो प्राय: उस समय प्रारम्भ होता है जब एक पक्ष यह महसूस करता है कि दूसरा पक्ष उसे नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रहा है या नकारात्मक रूप से प्रभावित करने का प्रयास करता है जिसे प्रथम पक्ष महत्वपूर्ण मानता है। इसका आशय यह है कि जब विभिन्न पक्षों के मध्य कोई अन्तर्क्रिया सीमा पार (Crosses over) कर जाती है, तो वह संघर्ष का रूप ले लेती है। संक्षेप में रॉबिन्स के अनुसार, ''संघर्ष से आशय सभी प्रकार के विरोध अथवा विरोधी अन्त:क्रिया से है।''

1.3 संघर्ष की विचारधाराएँ अथवा दृष्टिकोण

संघर्ष के सम्बन्ध में समयानुसार विचारधाराओं में परिवर्तन होता रहा है। संघर्ष की विचारधाराओं को मुख्यत: निम्नांकित दृष्टिकोण से देखा जाता है :

1. **परम्परागत दृष्टिकोण (Traditional Approach) :-** यह दृष्टिकोण 1890 से लेकर 1940 के मध्य कालखण्ड में प्रचलित रहा। यह दृष्टिकोण इस बात पर जोर देता है कि मनुष्य कार्य करने के लिए सक्षम एवं उपयुक्त होना चाहिए। इस कारण इस दृष्टिकोण को 'मानव अभियांत्रिक दृष्टिकोण' भी कहा जाता है। यह दृष्टिकोण उद्योगों में श्रमशक्ति की उत्पादकता एवं कार्यकुशलता वृद्धि पर बल देता है। इस हेतु कार्य-प्रमाण, कार्य समय, कार्य नियमों एवं कार्य तकनीकों को लागू किया जाता है और प्रबन्धक श्रमिकों के कार्य, लक्ष्य एवं उपकरणों पर कठोर नियंत्रण रखते हैं जिसके कारण प्रबन्धक एवं श्रमिकों में संघर्ष होते हैं।

(I) **परम्परागत दृष्टिकोण की प्रमुख विशेषताएँ (Characterstics of Traditional Approach) :-**

1. संघर्ष संगठन के हित की दृष्टि से विघ्नकारी एवं हानिप्रद होता है।
2. सकारात्मक संघर्ष और नकारात्मक संघर्ष में कोई अन्तर नहीं होता है।
3. संघर्ष का नकारात्म्क दृष्टिकोण उत्पादन एवं उसकी प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करता है। संघर्ष हिंसा, अशान्ति, उप द्रव, विध्वंस के रूप में प्रकट होता है।
4. कार्य नियोजन का अभाव, लक्ष्यों व भूमिकाओं की अस्ष्टता, अधिकारों के प्रत्यायोजन का अभाव, कार्य वितरण सही न होना तथा कार्मिकों की अकुशलता संघर्ष उत्पन्न होने के प्रमुख कारक माने जाते हैं।
5. संघर्ष कार्मिकों के व्यवहार को आक्रामक एवं विकृत बनाता है और नमें निराशा, कुण्ठा एवं तनाव को जन्म देता है। यह कार्मिकों के सोच एवं विचारों को प्रदूषित करता है और उनके बीच दूरियाँ बढ़ाता है जिसके फलस्वरूप संस्था में अविश्वास तथा असहयोग का वातावरण निर्मित होता है।

6. इस दृष्टिकोण के अनुसार संघर्ष केवल हानिकारक होता है। अत: इसे समाप्त करना आवश्यक होता है।

(Ii) व्यवहारवादी दृष्टिकोण (Behavioural Approach) :-

इस विचारधारा का विकास प्रबन्ध में व्यवहारवाद के साथ हुआ। इसके अनुसार संगठन में संघर्ष की उत्पत्ति स्वाभाविक (obvious) है और यह उसका आवश्यक अंग है। इसलिए संघर्ष को चुनौती के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। यह दृष्टिकोण 1950 तक चलन में रहा।

व्यवहारवादी दृष्टिकोण की प्रमुख विशेषताएँ (Characterstics of Behavioural Approach) :- इस विचारधारा की निम्नांकित प्रमुख विशेषताएँ हैं :-

1. संघर्ष संगठन का अपरिहार्य अंग है इसलिए इसकी उत्पत्ति स्वाभाविक एवं तर्क संगत है।
2. संघर्ष सदैव नकारात्मक एवं हानिकारक नहीं होता। यह किसी समस्या को उजागर करता है और उसका सही एवं तार्किक समाधान ढूँढने की प्रेरणा भी प्रदान करता है।
3. संघर्ष नकारात्मक एवं सकारात्मक (रचनात्मक) दोनों प्रकार का हो सकता है। अत: यह आवश्यक नहीं है कि संघर्ष सदैव नकारात्मक ही हो।
4. इस दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्ति अच्छे होते हैं और सकारात्मक समुचित सहयोग भी देना चाहते हैं, किन्तु संगठन की दोषपूर्ण संरचना एवं नीतियों तथा सम्प्रेषण की कमियों के कारण उनमें आक्रामता एवं आवेश पैदा होने लगता है जो अन्ततोगत्वा संघर्ष को जन्म देता है।

व्यवहारवादी दृष्टिकोण की एक सबसे बड़ी कमी यह रही है कि यह सकारात्मक संघर्ष की उपयोगिता को संगठन के सन्दर्भ में स्पष्ट नहीं कर सकी जिसके फलस्वरूप संघर्ष का एक नया अन्तर्क्रियावादी दृष्टिकोण सामने आया।

(iii) अन्र्तक्रियावादी दृष्टिकोण (intractionerist Approach) :-

इस दृष्टिकोण की निम्नांकित प्रमुख विशेषताएँ है :-

1. किसी भी संगठन में क्रियात्मक संघर्ष नितात आवश्यक होने के कारण उसके अस्तित्व से जुड़ा हुआ होता है।
2. संगठन में संघर्ष होना स्वाभाविक है क्यों कि लोगों में प्रतियोगिता एवं आक्रामकता की भावना, सहज रूप में होती है, जबकि संगठनात्मक पारितोषिक (पद, सत्ता, उत्तरदायित्व आदि) सीमित होते हैं।
3. संगठन में संघर्ष को प्रोत्साहित एवं प्रेरित किया जाना चाहिए।
4. संघर्षों का उचित प्रकार से नियमन एवं निराकरण होना चाहिए, अन्यथा उसके घातक दुष्प्रभाव हो सकते हैं।
5. संघर्ष के प्रबन्ध में उसके निराकरण एवं प्रोत्साहन दोनों पर ही ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

6. संगठन/समूह को सक्रिय रखने तथा उन्हें नव-परिवर्तनों का सामना करने के योग्य बनाने के लिए संघर्ष का एक न्यूनतम स्तर बनाये रखना आवश्यक होता है।
7. संघर्ष परिवर्तनों को जन्म देता है जिससे संगठन का रूपान्तरण होता है जिससे संगठन का उत्तरोत्तर विकास होता है।
8. जब संगठन में संघर्ष के अभाव के कारण रचनात्मकता तथा नव-प्रवर्तन का मार्ग अवरूद्ध हो जाता है और इसके कारण अनुकूलतम निष्पादन स्तर को प्राप्त करना कठिन हो जाता है, तो संघर्ष को प्रोत्साहित किया जाना लाभप्रद होता है।
9. प्रबन्ध का कार्य किसी तथ्य या समस्या (संघर्ष) को समाप्त करना नहीं है; वरन् उसे इस तरह प्रबन्धित करना है ताकि उससे जुड़े लाभकारी परिणामों को अधिकतम और हानिप्रद परिणामों को न्यूनतम किया जा सकें।
10. यद्यपि अधिकांश संघर्ष अपकार्यात्मक (Disfunctional) होते हैं जो कि संगठनात्मक एवं व्यक्तिगत लक्ष्यों की प्राप्ति में नुकसान पहुँचा सकते हैं, किन्तु कुछ संघर्ष कार्यात्मक (functional) हो सकते हैं जो संगठन को अधिक प्रभावी एवं कार्यकुशल बना सकते हैं।

अन्तर्क्रियावादी विचारधारा यह मानती है कि संगठन में परिवर्तन प्राय: वयं नहीं होते हैं। परिवर्तन संघर्ष द्वारा प्रशस्त होते हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार यदि संघर्ष निम्न स्तरीय है, तो उसे प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और यदि यह चरम सीमा तक पहुँच गया है, तो इसका निराकरण किया जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण के प्रतिपादकों एवं समर्थकों का मानना है कि संघर्ष अन्तर्क्रियाओं को बढ़ावा देता है। संघर्ष के कारण ही नए विचार, नए परिवर्तन और नया अभिमत निकलता है। इन नवीन परिवर्तनों के कारण ही संगठन में रूपान्तरण, समायोजन एवं नव-प्रवर्तनों (Adaptation, Adjustment and innovation) को बल मिलता है जिससे संगठन की उत्तरजीविका (Juivival) दीर्घजीवी होती है। अत: प्रबन्धकों को संघर्ष की आवश्यकता, एवं उसकी प्रकृति एवं सीमा को भली-भाँति समझकर उसके समाधान के समय रहते उपाय किये जाने चाहिए।

1.4 संघर्ष की प्रकृति

संघर्ष की प्रकृति के सम्बन्ध में निम्नांकित तथ्य महत्वपूर्ण है :-

1. किसी भी संगठन में संघर्ष स्वाभाविक एवं तर्क संगत है।
2. संगठन और संघर्ष का सह अस्तित्व है अर्थात् संगठन में संघर्ष होना अवश्यम्भावी एवं अपरिहार्य है।
3. संघर्ष सदैव नकारात्मक एवं विध्वंसात्मक नहीं होता है।
4. संघर्ष सकारात्मक एवं रचनात्मक भी होता है और इस कारण से संघर्ष को एक सीमा तक उकसाना उचित होता है।
5. संघर्ष नकारात्मक होने पर अशान्ति, उप द्रव, विध्वंस एवं हिंसा के रूप में प्रकट हो सकता है।

6. संघर्ष सकारात्मक होने पर नव-प्रवर्तन, कार्य निष्पादर स्तर में सुधार एवं नवीन विचारों का सृजन एवं नवीन तकनीक, प्रौद्योगिकी एवं कार्य करने के तरीकों में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकता है।
7. संघर्ष को दबाने के स्थान पर उसे चुनौती के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है जिससे उसका सकारात्मक प्रयोग किया जा सकें।
8. कार्यात्मक/नकारात्मक संघर्ष का यथाशीघ्र निराकरण करना चाहिए और कार्यात्मक/रचनात्मक संघर्ष को प्रोत्साहन देना चाहिए।

1.5 संघर्ष की प्रक्रिया एवं स्तर

संगठन में संघर्ष कई स्तरों पर और अनेक रूपों में उपस्थित हो सकता है। संघर्ष का रूप कभी अत्यन्त सूक्ष्म तो कभी जटिल और विशाल हो सकता है। संघर्ष की उत्पत्ति से लेकर उसके समाधान तक की जो विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं, उन्हें संघर्ष की प्रक्रिया के नाम से जाना जाता है। संघर्ष एक सतत् गतिशील प्रक्रिया है जिसमें निम्नांकित चरण समाहित है :

1. **अव्यक्त/प्रसुप्त संघर्ष (Latent Conflict) :-**यह संघर्ष प्रक्रिया का प्रथम सोपान हैi इस स्थिति में संगठन के व्यक्तियों, समूहों व विभिन्न विभागों के बीच भ्रामक एवं परस्पर विरोधी धारणाएँ उत्पन्न होने लगती हैं अथवा हो जाती हैं जिसके कारण दो अथवा अधिक पक्षकार एक-दूसरे को अपना विरोधी मानने लगते हैं। यदि स्थिति के पूर्व उनके बीच किसी प्रकार की कटुता अथवा संघर्ष हुआ है, तो वे उसके प्रभाव/परिणामों से भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। इस प्रकार की प्रसुप्त अथवा अव्यक्त संघर्ष की स्थिति को इसके मुखरित अथवा प्रस्फुटित होकर ज्वालामुखी बनने से ही पूर्व ही निराकरण किया जाना संगठन के हित में होता है। प्रशासक/प्रबन्धक इस स्थिति को 'संवाद पहल' (Communication intiative) के द्वारा समाप्त कर सकते हैं। क्योंकि यह स्थिति प्राय: अनेक बार संवाद का अभाव अथवा गलत संवाद Communication gap or Mis Communication) के कारण उत्पन्न गलत फहमियों तथा भ्रामक प्रचार/अपवादों (Runours) के कारण उत्पन्न हो जाती है। लेकिन यदि संघर्ष वास्तविक रूप में है, तो इसे और अधिक गंभीरता से लिया जाना चाहिए और उसके उत्पन्न होने वाले कारणों को भलीभाँति समझकर उसका उचित निराकरण किया जाना चाहिए।
2. **संघर्ष की अनुभूति (Percieving Conflict) :-** इस स्थिति में संघर्ष प्रसुप्त अवस्था से निकल मस्तिष्क (विचार) के स्तर पर परिलक्षित होने लगता है। व्यक्ति अथवा समूह अब संघर्ष के कारण, प्रभाव एवं उसके परिणामों पर चिन्तन-मनन करने लगता है और साथ ही में उसके समाधान के विभिन्न विकल्पों के बारे में सोचने लगता है। संघर्ष का यह चरण इसके प्रथम चरण से अधिक साफ और स्पष्ट रूप से प्रतीत होने लगता है। इस प्रकार के संघर्ष की बात लोगों के जुबान और आपसी विचार-विमर्श में भी प्रकट होने लगती है। इस चरण के संघर्ष को आपसी विचार-विमर्श के आधार पर आपसी सहमति और समझौते के द्वारा समाप्त किया जा सकता है।

3. **संघर्ष को व्यवहार में अनुभूत करना (Feeling Conflict in Behaviour):-**संघर्ष का यह चरण वैचारिक धरातल से निकलकर व्यक्ति अथवा समूहों के आचरण/व्यवहार से प्रकट होने लगता है। इसमें पक्षकार यह अनुभव करने लगता है कि संगठन में कोई न कोई पक्षकार उसे व्यक्तिगत हितों, पद एवं प्रतिष्ठा, कार्य सुविधाओं, छवि एवं भविष्य में प्रगति की संभावनाओं को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर रहा है। इस चरण में संघर्ष तीव्र रूप ग्रहण कर लेता है। और पक्षकारों का व्यवहार आक्रामक होने लगता है। इस चरण में संघर्ष के विभिन्न पक्षकार स्पष्टत: एक-दूसरे के विरोधी लगने लगते हैं और उनके समूह बनाना प्रारम्भ हो जाता है।

4. **संघर्ष का व्यक्त हो जाना (Manifestation of Conflict) :-**इस चरण में संघर्ष सम्बन्धित पक्षकारों की भावनाओं, शब्दों और आचरण से स्पष्ट रूप से प्रकट होने लगता है। इस स्थिति में सभी पक्षकार अपने हितों, स्वार्थों, उद्देश्यों और आधिपत्य की पूर्ति हेतु दूसरे पक्षकारों को नुकसान पहुँचाने में हिचकिचाहट एवं संकोच नहीं करते। संघर्ष का यह तीव्र और मुखर रूप न केवल भावनाओं, शब्दों और व्यवहार में ही प्रकट होता है, वरन् यह लिखित शिकायत और शक्ति प्रदर्शन के रूप में परिलक्षित होने लगता है। उदाहरण के लिए ज्ञापन, धरना, घेराव, हड़ताल, तोड़-फोड़, मारपीट एवं हिंसा, वेतन कटौती, दुर्भावनापूर्ण छँटनी, निष्कासन, ताला-बनी, पुलिस एवं कोर्ट-कचहरी करने के किसी भी एक अथवा अधिक रूप में प्रकट हो सकती है। इस स्थिति में भी संघर्ष का समाधान तीसरे पक्षकार की मध्यस्थता अथवा सामूहिक सौदेबाजी (Arbitration and Collective Bargaining) द्वारा किया जा सकता है। इस हेतु दोनों पक्षों को बातचीत की मेज़ पर बैठकर कुछ पाने और कुछ खोने की भावना एवं सद्भाव एवं शान्ति से वार्ता करने हेतु सहमत होना पड़ता है, अन्यथा समाधान का मार्ग संकीर्ण बना रहता है।

5. **संघर्ष परिणाम (Conflict Aftermath) :-**यह संघर्ष प्रक्रिया का अन्तिम और अति महत्वपूर्ण चरण है। इस चरण में निम्नांकित दो स्थितियाँ हो सकती है :-

   (I) **संघर्ष को दबाना (Curshing Conflict) :-** यदि इस चरण में संघर्ष का येन-केन प्रकारेण दबा दिया जाता है, तो फिर यह संघर्ष भविष्य में किसी न किसी रूप में प्रस्फुटित होगा। वस्तुत: यह आगामी संघर्ष की पृष्ठ भूमि तैयार करता है। इसलिए यह स्थिति उचित नहीं है।

   (II) **संघर्ष का समाधान (Solution of Conflict) :-**यदि संघर्ष को पक्षकारों की आपसी सहमति एवं समझौते द्वारा सुलझा लिया जाता है, तो संघर्ष की स्थिति आपसी सहयोग, सामेंजस्य एवं टीम भावना में बदल सकती है जो संगठन के अस्तित्व एवं भावी विकास के लिए अपरिहार्य है। इस स्थिति में संघर्ष के पक्षकार शान्ति और सौहार्द के माहौल में बन्धुत्व भाव से मिल-जुलकर कार्य करने लगते हैं और उनके बीच मन-मुटाव समाप्त हो जाता है। यह स्थिति संगठन के लिए सुखद एवं फलदायी स्थिति है। संघर्ष की प्रक्रिया को निम्नांकित चार्ट द्वारा आसानी से समझा जा सकता है।

1.6 संघर्ष के प्रकार

संगठन में अज्ञान, भ्रम, संवादहीनता अथवा गलत संवाद में कमी रहने के कारण संघर्ष उत्पन्न होते हैं। संघर्ष के कारण संगठन की निष्पादकता एवं कार्यकुशलता में बाधा पहुँचती है और इस पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। प्रशासकों/प्रबन्धकों एवं कर्मचारियों में अविश्वास एवं असहयोग की भावना उत्पन्न होने लगती है, जिसके फलस्वरूप संगठन के लिए अपने पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करना कठिन हो जाता है। इसलिए संघर्ष के विभिन्न प्रकारों को समझना आवश्यक हैं।

(I) संघर्ष से उत्पन्न प्रभाव के आधार पर :- संघर्ष से उत्पन्न प्रभाव रचनात्मक अथवा विध्वंसात्मक हो सकता हे। इसलिए इस आधार पर संघर्ष रचनात्मक एवं विध्वंसात्मक अथवा सकारात्मक एवं नकारात्मक हो सकता है। इसका वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

1. रचनात्मक संघर्ष (Constructive Conflict) :- कोसियर तथा शेवंक (Cosier and Schwenk) के मतानुसार संघर्ष उस समय सृजनात्मक होता है, जब यह निर्णय की गुणवत्ता में सुधार करता है, सृजनात्मकता एवं नव-प्रवर्तन को प्रोत्साहित करता है, समूह सदस्यों के बीच रूचि एवं उत्सुकता में वृद्धि करता है, समस्या को सुलझाने का प्रभावी माध्यम प्रदान करता है तथा स्व-मूल्यांकन एवं नियंत्रण हेतु वातावरण को सृजित करता है।

रोबिन्स का अभिमत है कि रचनात्मक संघर्ष समूह चिन्तन के लिए प्रतिमारक (Antidote) है। यह समूह को रबड़ स्टॉम्प की तरह निर्णय लेने हेतु हतोत्साहित करता है, जो कमजोर मान्यताओं एवं असंगत विकल्पों पर आधारित हो सकता है।

उपर्युक्त विद्वानों के अभिमतानुसार रचनात्मक संघर्ष संगठन के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होता है। इससे संगठन में स्वस्थ एवं खुले वातावरण का निर्माण होता है, जिसके फलस्वरूप योजनाओं, नीतियों, नियमों एवं कार्य-व्यवहार में वांछित सुधार होता है। इस प्रकार का संघर्ष संगठन में स्वस्थ प्रतियोगिता को जन्म देते हैं जिससे उसकी उत्तरजीविता, प्रभावोत्पादकता एवं लाभप्रदता में सुधार आता है।

2. विध्वंसात्मक संघर्ष (Distructive Conflict) :- यदि संघर्ष के कारण संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने में बाधा आती है, तो इसे नकारात्मक अथवा अस्वस्थ अथवा विध्वंसात्मक संघर्ष की संज्ञा दी जाती है। रोबिन्स के अनुसार संघर्ष संगठन में गम्भीर समस्या हो सकती है। यह संगठन में अव्यवस्थित दशाएँ पैदा कर सकता है। इस प्रकार के संघर्ष की स्थिति में संगठन के सदस्यों के लिए टीम भावना से मिलकर कार्य करना कठिन हो जाता है जिससे संगठन के सामूहिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाईयाँ उत्पन्न हो जाती है। विध्वंसकारी संघर्ष का सबसे बड़ा खामियाजा यह होता है कि संगठन में कार्य संस्कृति नष्ट हो जाती है और निर्बाध एवं अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो जाती है।

(II) अन्तवैयक्तिक संघर्ष (Inter Personal Conflict) :-

यह एक व्यक्ति के स्वयं के भीतर उसके अन्तर्मन में उठने और चलने वाला संघर्ष है। वस्तुत: इस प्रकार के संघर्ष की उत्पत्ति व्यक्ति द्वारा स्वयं के लिए लक्ष्य का चुनाव करने और अपेक्षित भूमिका के निर्वाह को लेकर होती है। इसके अधोलिखित दो रूप होते है :-

1. **लक्ष्य संघर्ष (Goal Conflict) :-** यह तब उत्पन्न होता है जब व्यक्ति के सम्मुख दो या दो से अधिक लक्ष्यों में से किसी एक का चुनाव करने का प्रश्न आता है। ये लक्ष्य परस्पर विरोधी प्रकृति के होते हुए भी समान प्रभाव डालने वाले हो सकते हैं। लक्ष्य सम्बन्धी संघर्ष को भी निम्नांकित तीन वर्गों में रखा जा सकता है :-

   (I) **सादृश्य-सादृश्य संघर्ष (Approach-Approach Conflict) :-** जब व्यक्ति को दो या अधिक सकारात्मक लक्ष्यों में से किसी एक का चुनाव करना पड़ता है, तो इस प्रकार का संघर्ष उत्पन्न होता है। उसके सामने दोनों मनपसन्द विकल्प होते हैं, अत: उनमें से किसी एक लक्ष्य के चयन को लेकर संघर्ष चलता रहता है।

   (II) **सादृश्य परिवर्तन संघर्ष (Approach Avoidance Conflict) :-** इस स्थिति में व्यक्ति के समक्ष लक्ष्य तो एक ही होता है, किन्तु उसके साथ सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही पहलू जुड़े होने के कारण संघर्ष होता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति को पदोन्नति मिल जाने पर उसे घर छोड़ना पड़े, तो उसके लिए दुविधा (संघर्ष) हो जाती है।

   (III) **परिवर्तन-परिवर्तन संघर्ष (Avoidance-Avidance Conflict) :-** संघर्ष की इस स्थिति में व्यक्ति के सम्मुख उपस्थित दो प्रतिकूल विकल्पों में से किसी एक को चुनने की मजबूरी होती है। उदाहरण के लिए, एक अत्यधिक प्रदूषण वाले संयंत्र में काम करना अथवा घर से अत्यधिक दूरी वाले स्थान में स्थिति संयंत्र में काम करने के विकल्प से किसी एक का चयन करना।

2. **भूमिका संघर्ष (Role Conflict) :-** भूमिका संघर्ष तब उत्पन्न होता है जब व्यक्ति का कार्य एवं व्यवहार उसकी दी हुई भूमिका के परिप्रेक्ष्य में अपेक्षानुसार नहीं होता। इस प्रकार के संघर्ष उत्पन्न होने के अन्योन्य कारण हो सकते हैं, यथा व्यक्ति को अपने उत्तरदायित्वों व कार्यों का स्पष्ट ज्ञान न होना, अपनी अभिरूचि के अनुसार काम न मिलना अथवा योग्यता एवं गुणों के अनुरूप कार्य न मिलना इत्यादि।

   यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यदि कार्मिक संस्था की विवर्गीय नीतियों (Personal Policies) से संतुष्ट नहीं है, तो भी वह इस प्रकार के संघर्ष की त्रासदी झेल सकता है।

(III) समूह संघर्ष (Group Conflict) :-इस प्रकार का संघर्ष एक ही समूह के सदस्यों के बीच (अधीनस्थ-अधिकारी के बीच) अथवा/और संगठन के विभिन्न समूहों एवं विभागों के बीच हो सकता है। समूह संघर्ष के निम्नांकित प्रकार हो सकते है :

(I) व्यक्तियों के बीच संघर्ष (inter Personal Conflict) :-

इस प्रकार का समूह दो या अधिक व्यक्तियों के बीच होने वाली अन्त: क्रियाओं के कारण होता हे। एक संगठन में कार्यरत् विभिन्न व्यक्तियों के बीच लम्बवत्, समतलीय तथा विकर्णीय सम्बन्ध होते हैं और तद्रूरूप ही उनके बीच अन्त:क्रियाएँ चलती हैं और इसी प्रकार से संघर्ष भी जो इस प्रकार है :-

(अ) लम्बवत् संघर्ष :- उच्चाधिकारियों एवं अधीनस्थों के बीच चलने वाले संघर्ष।

(ब) समतलीय संघर्ष (Horizontal Conflict) :- संगठन में समान स्तर पर कार्य करने वाले व्यक्तियों के बीच चलने वाले संघर्ष।

(स) विकर्णीय संघर्ष:- यह दो या भिन्न स्तरों पर कार्यरत व्यक्तियों के बीच चलने वाला संघर्ष होता है जिनके मध्य प्रत्यक्ष उच्चाधिकारी एवं अधीनस्थ सम्बन्ध नहीं होते। ऐसे संघर्ष व्यक्तियों की प्रकृति एवं उनकी संगठनात्मक स्थिति के कारण उत्पन्न होते हैं। विकर्णीय संघर्ष उत्पन्न होने के निम्नांकित प्रमुख कारण हैं:-

1. व्यक्तियों की प्रतिष्ठा एवं आत्म सम्मान को ठेस पहुँचाना।
2. व्यक्तियों के मूल्यों, विश्वासों एवं उद्देश्यों में भिन्नता।
3. व्यक्तियों की जातिगत, धर्मगत, क्षेत्रगत एवं सामुदायिक भिन्नता।
4. व्यक्तियों के आचार-विचार में अन्तर।
5. व्यक्तियों में जन्मजात स्वाभाविक भिन्नता।
6. सम्प्रेषण की विफलता और संगठनात्मक कार्यों एवं भूमिकाओं की अस्पष्टता।
7. भिन्न-भिन्न अहम् स्थितियों में व्यवहार करना।

(II) व्यक्ति व समूह के बीच संघर्ष (Conflict between individual and group) :-

इस प्रकार का संघर्ष तब उत्पन्न होता है जब एक व्यक्ति अपने समूह के कार्य मानदण्डों को पूरा करने में असमर्थ रहता है।यदि व्यक्ति समूहगत निष्पादन के मानदण्डों से कम निष्पादन करता है, तो उस पर समह का दबाव पड़ता है। अनेक बार ऐसी स्थिति में समूह उस व्यक्ति को मौद्रिक एवं गैर-मौद्रिक रूप में दण्डित भी कर देता है। अत: व्यक्ति और समूह के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कभी-कभी व्यक्ति द्वारा समूह के नियमों एवं आचार संहिता (Code of Conduct) एवं निर्देशों की अवहेलना करने पर भी उनके बीच संघर्ष की स्थिति बन जाती है।

(III) समूहों के बीच संघर्ष (Conflict between Groups) :-

एक संगठन के विभिन्न समूहों के बीच संघर्ष की स्थिति को समूहों के बीच संघर्ष के रूप में परिभाषित किया जाता है। इस संघर्ष के उत्पन्न होने के निम्नांकित कारण है :

1. समूहों के लक्ष्यों एवं उन्हें प्राप्त करने के साधनों में अन्तर एवं अस्पष्टता होना।
2. समूहों के आदर्शों एवं नियमों में अन्तर होना।
3. समूहों की भूमिकाओं एवं कार्य क्षेत्रों में अस्पष्टता होना।

4. समूहों के परिवेश, सदस्यों के व्यवहार एवं आचरण, पृष्ठभूमि, जीवन-शैली व पदों में अन्तर होना।

5. समूहों के सदस्यों के वैचारिक सोच में अन्तर होना।

6. संगठन के सीमित साधनों पर अधिकार प्राप्त करने के लिए समूहों के बीच प्रतिस्पर्धा होना।

(Iv) संगठनात्मक संघर्ष (Organ|zational Conflict) :-

किसी भी संगठन के सुचारू संचालन के लिए निश्चित औपचारिक नियम एवं उपनियम होते हैं और जिन्हें संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु लागू किया जाता है। जब प्रशासक/प्रबन्धक इन नियमों को कठोरतापूर्वक लागू करते हैं, तो उनके अधीनस्थों के कार्य एवं व्यवहार पर प्रतिबन्ध लगता है और वे उसका प्रतिरोध करते हैं। इसका परिणाम संघर्ष के रूप में उत्पन्न होता है। इसके अलावा प्रत्येक संगठन की एक निश्चित कार्य वातावरण (Work Env|ronment) होता है जिसकी अनुपालना प्रत्येक कार्मिक को करनी पड़ती है। अनेक बार व्यक्ति संगठन के कार्य वातावरण के अनुरूप अपने आपको ढ़ाल नहीं पाता है, जिससे तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। संगठनात्मक संघर्ष के प्रमुख कारण अग्रांकित हैं :

1. पदानुक्रम संघर्ष (Hierarchical Conflict) :-

इसे श्रेणीबद्ध संघर्ष भी कहते हैं। इस प्रकार का संघर्ष संगठन में विद्यमान पदों के स्तर (Level of Pols|tions) के मध्य देखने को मिलता है, इसलिए यह लम्बवत् प्रकृति (Vert|cal Nature) का होता है। संचालक मण्डल और उच्च स्तरीय प्रबन्धकों के मध्य उच्च स्तरीय प्रबन्धकों एवं मध्य स्तरीय प्रबन्धकों के बीच, मध्य स्तरीय एवं निम्न-स्तरीय प्रबन्धकों के बीच तथा प्रबन्धकों एवं श्रमिकों के बीच पाये जाने वाला संघर्ष इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

2. कार्यात्मक संघर्ष (Functional Conflict) :-

संगठन के विभिन्न विभागों के बीच होने वाला संघर्ष कार्यात्मक संघर्ष कहलाता है। जैसे :- एक व्यावसायिक संगठन के उत्पादन, वित्त, विपणन, क्रय एवं कार्मिक विभागों के बीच पाया जाने वाला संघर्ष।

3. रेखा-स्टॉफ संघर्ष (Line-Staff Conflict) :-

संगठन के रेखीय एवं स्टॉफ कार्मिक के बीच उनके पद, प्रतिष्ठा, अधिकार एवं भूमिका को लेकर संघर्ष इस श्रेणी में रखा जाता है। यह संघर्ष मनोवैज्ञानिक एवं वास्तविक दोनों प्रकार का हो सकता है। इस प्रकार का संघर्ष विशेषकर तब उत्पन्न होता है जब रेखा एवं स्टॉफ के कर्मचारियों की भूमिका या तो ठीक तरह से परिभाषित नहीं होती या फिर उसको लेकर उनके दृष्टिकोण में अन्तर हो।

4. औपचारिक एवं अनौपचारिक संघर्ष (Formal and informal Conflict) :-

किसी भी संगठन में औपचारिक समूहों के अलावा अनेक अनौपचारिक समूह भी बन जाते हैं। यह अनौपचारिक समूह संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के दृष्टिकोण, मूल्यों, विचारों एवं व्यवहारों में समानता के आधार पर स्वत: ही निर्मित हो जाते हैं। औपचारिक समूह एवं अनौपचारिक

समूह के मूल्यों, दृष्टिकोण, मान्यताओं एवं मानदण्डों में अनेक बार भारी अन्तर परिलक्षित होने लगता। इस कारण से इन दोनों समूहों के बीच लक्ष्यों एवं कार्यशैली में सामेंजस्य का अभाव पाया जाता है जो अन्तत: इनके मध्य संघर्ष की स्थिति को उत्पन्न कर देता है।

5. संगठनों के बीच संघर्ष (Conflict between Organizations) :-

जब दो या अधिक संगठनों के बीच आर्थिक, तकनीकी, प्रबन्धकीय, क्षेत्राधिकार आदि को लेकर टकराहट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, तो इसे संगठनों के बीच संघर्ष की संज्ञा दी जाती है। व्यावसायिक संगठनों में इसे प्रतिस्पर्धा (Competition) का नाम दिया जाता है जिसके कारण बाजार में उत्पादों की नई किस्म, नये उत्पादनों का सृजन, प्रौद्योगिक विकास, लागत एवं मूल्यों में कमी तथा संसाधनों का श्रेष्ठ एवं अनुकूलतम उपयोग होता है। कभी-कभी इस प्रकार की प्रतिस्पर्धा गला-काट प्रतिस्पर्धा (Cut-throat Competition) का रूप धारणा कर लेती है।

1.7 संघर्ष उत्पन्न होने के कारण

किसी संगठन में संघर्ष उत्पन्न होने के अनेक कारण होते हैं। इनमें से प्रमुख कारण निम्नांकित हैं :-

1. लक्ष्यों की भिन्नता (Different Goals) :-

विभिन्न व्यक्तियों, समूहों, विभागों व संगठनों के लक्ष्यों में अन्तर उनके मध्य संघर्ष का कारण होता है। इस प्रकार का संघर्ष दुष्क्रियात्मक होता है जिसका प्रभाव संगठन के पक्षों के अतिरिक्त संगठन के बाहरी पक्षों पर भी पड़ता है।

2. क्षेत्राधिकार सम्बन्धी अस्पष्टता (Jurisdictional Ambiguilty) :-

एक संगठन के विभिन्न विभागों के क्षेत्राधिक को लेकर जब स्पष्टता नहीं होती है, तो उनके बीच क्षेत्राधिकार को लेकर संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। उदाहरण के लिए एक नगर के विभिन्न पुलिस केन्द्रों (Police Station) के बीच क्षेत्राधिकार को लेकर विवाद उत्पन्न हो जाना।

3. संगठन संरचना की अस्पष्टता (Ambiguous Organisation Structure) :-

संगठन की संरचना के द्वारा संगठन में कार्यरत विभिन्न व्यक्तियों के मध्य अधिकार क्षेत्र एवं कार्य क्षेत्र का उचित आवंटन करना है ताकि उनके बीच किसी भी प्रकार की अस्पष्टता न रहें। किन्तु अनेक बार व्यक्तियों और विभागों के बीच अधिकार एवं कार्य का स्पष्ट बटवारा नहीं होता, परिणामस्वरूप उनके मध्य विवाद एवं संघर्ष हो जाता है और संगठन का कार्य अवरूद्ध हो जाता है। संगठन संरचना की अस्पष्टता के कारण सत्ता के अधिकारों का केन्द्रीयकरण, विकेन्द्रीयकरण एवं प्रत्यायोजन (Dellgation) को लेकर मतभेद उभरने लगते है जो शनै:-शनै: संघर्ष का रूप ले लेते हैं।

4. संसाधन प्राप्ति की प्रतिस्पर्धा (Competition for Acquiring Resources) :-

सभी संगठनों के समक्ष साधनों की सीमितता की समस्या रहती है। इसलिए इनमें कार्यरत व्यक्तियों, समूहों व विभागों में अधिक से अधिक साधन प्राप्त करने की होड़ लगी रहती है और

ये सब अपने-अपने तरीके से संगठन पर दबाव की राजनीति करते हैं जो आगे चलकर संघर्ष का रूप ग्रहण कर लेता है।

5. व्यक्तिगत गुणों में अन्तर होना (Difference in Personal Traits) :-

संगठन में कार्यरत विभिन्न व्यक्तियों के गुणों में अन्तर होता है। यह अन्तर न केवल जन्मजात होता है, वरन् उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक पृष्ठभूमि में अन्तर होने के कारण भी होता है। उनके मूल्यों, मान्यताओं, विचारों एवं विश्वासों में अन्तर अनेक बार उनके बीच टकराहट का कारण बन जाती है। व्यक्तियों में विद्यमान गुणों के अन्तर के कारण उनकी कार्य कुशलता, प्रभावोत्पादकता, आचरण एवं व्यवहार में अन्तर को जन्म देता है जिससे उनके बीच आपसी तालमेल ठीक से नहीं बैठ पाता और नतीजन संघर्ष उत्पन्न हो जाता है।

6. पद-प्रतिष्ठा सम्बन्धी समस्या (Status Problem) :-

जब व्यक्ति विशेष को अपने पद के अनुरूप कार्य, अधिकार एवं प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती है, तो वह असंतुष्ट रहता है और उसमें विद्वेष की भावना पनपने लगती है। इसी प्रकार जब व्यक्ति को निरन्तर रूप से अच्छा कार्य करने के उपरान्त भी पदोन्नति अथवा प्रशस्ति (Promotion or Recognltion) नहीं मिलती है, तो भी वह भी असंतुष्ट होकर संघर्ष पर उतर आता है। अनेक बाद संगठन में एक ही स्तर के कार्मिकों की पद-प्रतिष्ठा और उनसे जुड़े आर्थिक एवं गैर-आर्थिक परिलाभों में अन्तर पाया जाता है, तो ऐसी विसंगतियाँ भी संघर्ष का कारण बन जाती है।

7. कार्य विशेषताओं में अन्तर होना (Difference in Work Characteristics) :-

विभिन्न वर्गों की विशेषताओं अथवा विशिष्टताओं में अन्तर होता है क्योंकि उनकी प्रकृति भिन्न होती है। उदाहरण के लिए पुलिस विभाग के पास अनेक प्रकार के कार्य होते हैं जिनके लिए अलग-अलग विशिष्टताओं की आवश्यकता होती है - सामान्य कानून व्यवस्था, प्रकार्य तथा अपराधों की रोकथाम प्रकार्य की विशेषताओं में भारी अन्तर होता है इसलिए इनकी कार्यदशाएँ एवं कार्यप्रणाली में अन्तर होता है। इन विभिन्न प्रकार की विशेषताओं वाले कार्यों के बीच उचित सामेंजस्य बिठाना कठिन काम है क्योंकि इनको अंजाम देने वाले व्यक्तियों की दक्षता एवं दृष्टिकोण में भारी अन्तर होता है।

8. क्रियाओं की अन्त: निर्भरता (Task interdependence) :-

आधुनिक संगठनों की प्रकृति, स्वरूप, संरचना एवं कार्यप्रणाली पूर्वापेक्षा विशाल और जटिल हो गयी है तथा इनमें कार्यरत कार्मिकों एवं विभागों की क्रियाएँ परस्पर एक-दूसरे पर निर्भर हो गयी है। एक व्यक्ति और विभाग का कार्य एक बड़ी सीमा तक दूसरे विभाग से प्राप्त सूचना और सहायता अथवा कार्य श्रृंखला निष्पादन पर निर्भरत करता है। उदाहरण के लिए यदि इन्टेलीजेंस विभाग सही सूचना समय पर नहीं देता है, तो अपराधों एवं आतंकवादी गतिविधियों पर रोक लगाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। अत: संगठन की सफलता इसमें कार्यरत व्यक्तियों और विभागों के बीच उचित सामेंजस्य, सहयोग एवं कुशलता पर निर्भर करता है। एक व्यक्ति अथवा

विभाग के कार्य निष्पादन में अकुशलता अथवा विलम्ब अन्य सभी विभागों के लिए कष्ट का कारण बन जाता है। थॉमसन ने संगठनों में निम्नांकित तीन अन्त:निर्भरताओं का उल्लेख किया है :

(अ) सामूहिक अन्त:निर्भरता (Pooled inter-dependence)

(ब) क्रमिक अन्त:निर्भरता (Sequential inter-dependence)

(स) पारस्परिक अन्त:निर्भरता (Reciprocal inter-dependence)

यदि इन अन्त:निर्भरताओं के कारण व्यक्तिओं और विभागों के बीच निष्पादन को लेकर प्रश्न उठते हैं, तो संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होना स्वाभाविक एवं लाजिमी है।

9. अन्य कारण (Other Factors) :-

नेतृत्व शैली में अन्तर, सम्प्रेषण का अभाव अथवा दोषपूर्ण सम्प्रेषण, मानवीय स्वभाव, जन्म दुर्बलताएँ एवं दुराग्रह, संगठन की कार्य संस्कृति की कमजोरियाँ, बाह्य आकस्मिक परिस्थितियों के कारण आगत अनायास संकट इत्यादि अनेक कारण भी संगठन में संघर्ष उत्पन्न कर सकते हैं।

1.8 संघर्ष समाधान की विधियाँ

संघर्ष का प्रबन्ध या समाधान निम्नांकित तीन तरीकों से किया जा सकता है:-

1. संघर्ष उकसाव पद्धति (Conflict Stimulation Methods) :-

प्राय: संघर्ष को नकारात्मक रूप में ही देखा जाता है। इसको सही रूप में देखने और समझने का प्रयास नहीं किया जाता है। प्रत्येक संघर्ष की एक संस्कृति एवं मूल्य होता है और इस रूप में संघर्ष की पहचान से नये विचारों के सृजन को प्रोत्साहन मिलता है। संघर्ष के निम्न स्तरीय होने पर प्राय: कार्य के नये और श्रेष्ठ तरीकों की खोज नहीं की जाती है और यथास्थिति को बनाये रखा जाता है। ऐसी स्थिति में अच्छा प्रबन्धक प्रतिस्पर्धा और संघर्ष के उकसाव हेतु उपयुक्त वातावरण का सृजन करता है जिससे श्रेष्ठ और नवीन तरीकों की खोज की जा सकें और निष्पादन स्तर में सुधार किया जा सकें।

संघर्ष के उकसाव हेतु संगठन में बाह्य व्यक्तियों को बुलाया जा सकता है, संगठन की पुन: संरचना की जा सकती है, उत्कृष्ट निष्पादन हेतु विशिष्ट मौद्रिक परिलाभ प्रदान किये जा सकते हैं, तथा उपयुक्त सक्रिय एवं प्रजातांत्रिक प्रबन्धकों का चयन किया जा सकता है।

2. संघर्ष-न्यूनता पद्धति (Conflict Reduetion Method) :-

इस पद्धति के अनुसार निम्नांकित तरीकों को अपनाकर संघर्ष को कम किया जा सकता है :

(I) प्रत्येक समूह को दूसरे समूह के बारे में अनुकूल सूचनाएँ उपलब्ध कराना।

(II) समूहों के मध्य सामाजिक सम्पर्कों में अभिवृद्धि द्वारा (साथ-साथ भोजन करना, सिनेमा देखना आदि)

(III) समूहों के नेताओं को एक-दूसरे के साथ पत्र व्यवहार करना तथा सूचनाएँ उपलब्ध कराना।

3. संघर्ष समाधान पद्धति (Conflict Resolution Method) :-

संघर्ष समाधान हेतु विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। इन विधियों में मुख्यत: दबाव, समझौता, प्रभुत्व तथा एकीकृत समाधान विधियाँ सम्मिलित हैं। थॉमस के अनुसार इन विभिन्न विधियों का प्रयोग विभिन्न दशाओं में आवश्यकतानुसार किया जाना उपयुक्त रहता हैं।

1.9 संघर्ष समाधान की तकनीक

संघर्ष समाधान की निम्नलिखित तकनीकों का प्रयोग किया जाता है :-

1. समस्या का सामना करना (Confronting the Problem) :-

इसके अन्तर्गत समस्या पर सीधे चोट कर उसका समाधान निकाला जाता है। इस तकनीक में इस बात पर विचार नहीं किया जाता है कि कौनसा पक्षकार सही और कौनसा गलत है अथवा कौन सा पक्षकार जीतता है और कौनसा हारता है। इसमें तो बस समस्या का स्थायी समाधान ढूंढ़ने का प्रयास होता है।

2. परम कोटिक लक्ष्यों का निर्धारण (Setting Superodinate Goals) :-

परम कोटिक लक्ष्य संगठन के लिए अति महत्वपूर्ण लक्ष्य होते हैं जिन्हें सभी पक्षों के सहयोग एवं समर्थन बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, संगठन की उत्तरजीविता (Survival) अथवा अस्तित्व का लक्ष्य। ये लक्ष्यों के निर्धारण से सभी पक्षकार संघर्ष को समाप्त करने के लिए तैयार हो जाते हैं क्योंकि परम कोटिक लक्ष्य सभी पक्षकारों के लिए हितकारी होते हैं। जब संगठन के अस्तित्व को खतरा होता है, तो संघर्ष के सभी पक्षकार स्वेच्छा से संघर्ष समाप्त करने को सहमत हो जाते हैं और यहाँ तक कि स्वेच्छापूर्वक अधिक समय तक कार्य करने, मजदूरी कम करने, अधिक कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए स्वत: ही तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार कर्मचारियों को उनके परम कोटिक लक्ष्यों का ज्ञान करवाकर संघर्ष का निराकरण किया जा सकता है।

3. संगठन संरचना में परिवर्तन (Change in Organization Structure) :-

संगठनात्मक संरचना में दोष के कारण उत्पन्न संघर्षों को संगठन की संरचना में सुधार करके समाप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, उत्तरदायित्वों का पुनर्निधरण करके, कार्यों का विकेन्द्रीकरण करके, क्षेत्राधिकार को स्पष्ट एवं सुसंगत परिभाषित करके तथा कार्यों एवं भूमिकाओं का सही विभाजन करके संघर्ष को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

4. मानसिकता में परितर्वन (Change in Mind-Set) :-

संघर्ष के विभिन्न पक्षकारों की मानसिकता में परिवर्तन करके भी संघर्ष का समाधान निकाला जा सकता है। सम्बन्धित पक्षकारों के सोच-विचारों, मूल्यों, मान्यताओं व विश्वास में परिवर्तन कर उन्हें वस्तु स्थिति से भलीभाँति अवगत करवाकर संघर्ष का समाधान निकाला जा सकता है।

5. **साधनों व सुविधाओं का विस्तार (Expansion of Resources and Facilities) :-**

संगठन में सदैव अधिक साधनों व सुविधाओं की माँग उठती रहती है। अत: इनका समय-समय पर यथेष्ठ विस्तार कर संघर्ष की आग को उत्पन्न होने से रोका जा सकता है अथवा उसका शमन किया जा सकता है।

6. **आधिकारिक निर्देशन (Authoritative Disection) :-**

इस विधि में एक शीर्ष अधिकारी अपने अधीनस्थों को आदेश-निर्देश देकर उसे मानने के लिए बाध्य कर सकता है। किन्तु यह संघर्ष का तात्कालिक समाधान भले ही हो, किन्तु स्थायी समाधान नहीं हो सकता।

7. **शांत करना (Smoothing) :-**

इस तकनीक के द्वारा पक्षकारों के समक्ष उनके सामान्य हितों की बात रखकर उनके मतभेदों को कम करने का प्रयास किया जाता है ताकि समाधान का मार्ग प्रशस्त हो सकें।

8. **अन्य तकनीक (Other Techniques) :-**

(I) परिवर्तन (Avoidance) के द्वारा।

(II) सूचना एवं सम्प्रेषण प्रणाली में सुधार द्वारा।

(III) परिवर्तन (Avoidance) के द्वारा।

(Iv) रचनात्मक एवं नये विचारों के प्रोत्साहन द्वारा।

(v) विशेषज्ञों से परामर्श द्वारा।

(vI) कार्यनीतियों एवं नियमों का सही प्रकार से निर्धारण द्वारा।

1.10 संघर्ष का क्षेत्र (Scope of Conflict)

संघर्ष का क्षेत्र अतिव्यापक है क्योंकि यह सभी प्रकार के संगठनों और उनके सभी प्रकार के स्तरों पर विद्यमान रहता है। संघर्ष सभी प्रकार के व्यावसायिक संगठनों, श्रम संगठनों, कर्मचारी संगठनों, राजनैतिक संगठनों, सामाजिक संगठनों, धर्मिक संगठनों, खेल संगठनों एवं सांस्कृतिक संगठनों में नीचे के स्तर से लेकर उच्च स्तर तक परिलक्षित होता है। संघर्ष का क्षेत्र इतना व्यापक है कि यह पारिवारिक जीवन में भी देख जा सकता है। सभी प्रकार के संगठनों में निम्नांकित प्रमुख स्तर होते हैं :-

1. निम्न स्तर (Lower Level)
2. मध्य स्तर (MIddle Level)
3. उच्च स्तर (Upper/Top Level)

संघर्ष न केवल विभिन्न स्तर के विभिन्न व्यक्तियों/समूहों के बीच होता है वरन् विभिन्न स्तरों के बीच भी विद्यमान रहता है। कभी यह प्रसुप्त रूप में रहता है, तो कभी यह मुखरित रूप में उभरकर सामने आ जाता है। कभी यह नकारात्मक होता है, तो कभी यह सकारात्मक होता है। कभी यह निम्न स्तरीय होता है, तो कभी यह उच्च स्तरीय होता है। कभी यह सामान्य रूप में प्रस्फुटित होता है तो कभी यह विस्फोटक रूप

में प्रकट होता है। चूँकि संघर्ष मनुष्य की सहज वृत्ति का अभिव्यक्ति है इसलिए इसकी व्यापकता सर्वत्र अर्थात् सार्वजनिक है। कभी-कभी संघर्ष विश्वव्यापी रूप ग्रहण कर लेता है। संघर्ष की उपस्थिति सैन्य बलों, अर्द्ध सैन्य बलां तथा पुलिस जैसे रेखीय एवं अनुशासित संगठनों में भी देखी जा सकती है। इस प्रकार के संगठनों में संघर्ष के अनेक उदाहरण इतिहास में अंकित हैं।

1.11 सारांश (Summary)

सामान्य अर्थ में, संघर्ष दो या अधिक पक्षों के मध्य हितों, मूल्यों, विचारों और दृष्टिकोणों की टकराहट है। विशेषज्ञ संघर्ष को भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखते हैं। कार्ल मार्क्स संघर्ष को 'वर्ग संघर्ष' के रूप में देखते हैं, जबकि समाजशास्त्री इसे एक आनुभाविक सत्य मानते हैं। अमेरिकन समाजशास्त्री इसे सहयोग और समायोजन के रूप में देखते हैं और औद्योगिक संगठन इसे प्रबन्धकों एवं श्रम संघों के बीच परस्पर विरोधी विचारधारा के रूप में देखते हैं। वस्तुत: संघर्ष को संगठन के कार्य संचालन में बाधा, रूकावट एवं व्यवधान के रूप में परिभाषित किया जाता है। संघर्ष की स्थिति प्राय: तब उत्पन्न होती है जब एक पक्ष के कार्य-व्यवहार से दूसरे पक्ष के हितों पर विपरीत प्रभाव पड़ता हो अथवा पड़ने की आशंका हों। संघर्ष की परम्परागत विचारधारा के अनुसार संघर्ष सदैव नकारात्मक होता है इसलिए इसका समय रहते समाधान (दमन अथवा शमन) करना आवश्यक है, किन्तु आधुनिक विचारधारा के अनुसार संघर्ष अनेक बार रचनात्मक होता है जिससे संगठन के समग्र निष्पादन स्तर में सुधार होता है, इसलिए संघर्ष को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। संगठन में संघर्ष होना स्वाभाविक है, इसलिए इस चुनौती के रूप में स्वीकार कर इसका रचनात्मक उपयोग करना चाहिए। संघर्ष प्रकार के हो सकते हैं। संघर्ष की प्रक्रिया में पाँच चरण होते हैं जो क्रमश: इस प्रकार हैं। प्रसुप्त संघर्ष, संघर्ष की अनुभूति, संघर्ष को व्यवहार में अनुभव करना, संघर्ष का व्यक्त हो जाना तथा संघर्ष का परिणाम।

संघर्ष अनेक प्रकार का हो सकता है। यह रचनात्मक अथवा विध्वंसात्मक हो सकता है। यह अन्तवरैयक्तिक, समूह व्यक्ति व समूह, समूह-समूह के बीच तथा संगठनात्मक रूप में हो सकता है। संघर्ष उत्पन्न होने के अनेक कारण होते हैं। यह पद-प्रतिष्ठा को लेकर हो सकता है, विभिन्न विभागों के बीच कार्य बँटवारे को लेकर, क्षेत्राधिकार की अस्पष्टता, लक्ष्यों की भिन्नता, संसाधनों की प्राप्ति की प्रतिस्पर्धा, व्यक्तिगत गुणों व कार्य विशेषताओं में अन्तर क्रियाओं की अन्तनिर्भरता इत्यादि के कारण हो सकता है। संघर्ष समाधान के तरीकों में संघर्ष उकसाव पद्धति, संघर्ष न्यूनता पद्धति तथा संघर्ष समाधान पद्धति प्रमुख हैं। संघर्ष के निराकरण के लिए समस्या का मुकाबला करना, संगठन की संरचना में परिवर्तन करना, व्यक्तियों की मानसिकता में बदलाव लाना, परम कोटिक लक्ष्यों का निर्धारण, साधन-सुविधाओं का विस्तार करना, सूचना एवं सम्प्रेषण प्रणाली में सुधार करना इत्यादि तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।

1.12 अभ्यास प्रश्न

1 संघर्ष को परिभाषित कीजिए और इसकी प्रकृति पर प्रकाश डालिए।

2 संघर्ष उत्पन्न होने के कारण स्पष्ट कीजिए।

3 संघर्ष समाधान के कारण स्पष्ट कीजिए और उसकी समाधान के तरीकों को समझाइए।

4 संघर्ष की प्रक्रिया के विभिन्न चरणों को विस्तारपूर्वक समझाइए।

5 संघर्ष की अवधारणा समझाइए और इसकी विभिन्न विचारधाराओं को स्पष्ट कीजिए।

6 संघर्ष के विभिन्न प्रकारों को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

7 संघर्ष समाधान की तकनीकों की विवेचना कीजिए।

1.13 संदर्भ ग्रंथ(Useful Books)

1. Stephen P. Robblns : Managing Organlsational Conflict , Prentlce Hall, 1974
2. M. Afzalur Rahlm : A Stratlgy for Managing Conflict ln Complex Organlsation
3. Stroler and Freeman : Management Prentlce Hall, 1989
4. पी.सी. जैन : संगठनात्मक व्यवहार, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

इकाई - 2

भारतीय समाज में संघर्ष : कारण और प्रकृति

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 सामाजिक प्रक्रिया अर्थ एवं प्रकार

2.4 संघर्ष अर्थ एवं परिभाषा

2.5 संघर्ष के स्वरूप

2.5.1 वैयक्तिक संघर्ष

2.5.2 प्रजातीय संघर्ष

2.5.3 वर्ग संघर्ष

2.5.4 राजनैतिक संघर्ष

2.6 भारतीय समाज में संघर्ष के कारण

2.6.1 व्यक्तिगत भिन्नताएँ

2.6.2 सांस्कृतिक भिन्नताएँ

2.6.3 जाति व्यवस्था

2.4.4 वर्ग व्यवस्था

2.6.5 समाज की संरचना

2.6.7 सांस्कृतिक विलम्बन

2.7 संघर्ष के परिणाम

2.7.1 अन्त: समूह की दृढ़ता

2.7.2 समूह दृढ़ता में कमी

2.7.3 व्यक्तित्व में बदलाव या परिवर्तन

2.7.4 जन-धन की हानि

2.7.5 व्यवस्थापन प्रभुत्व एवं अधीनता

2.8 संघर्ष का समाजशास्त्रीय महत्व

2.9 सारांश

2.10 अभ्यास प्रश्न

2.11 संदर्भ ग्रन्थ

2.1 उद्देश्य

इस इकाई में हम भारतीय समाज में संघर्ष के स्वरूप कारण और परिणाम को समझेंगें तथा संघर्ष के समाजशास्त्रीय महत्व को जानेगें।

2.2 प्रस्तावना

संघर्ष समाज में निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है किसी भी समाज का संघर्ष से अछूता रहना नितांन असंभव है। समाज जिसकी संरचना व्यक्तियों के समूह से होती है और व्यक्तियों के समूहों के बीच अन्त: क्रिया अवश्यंभावी है और यह सामाजिक प्रक्रिया सहयोगी व असहयोगी दो रूपों में सामने आती है। संघर्ष को एक असहयोगी सामाजिक प्रक्रिया माना जाता है जो हर समाज में सार्वभौमिक है।

2.3 सामाजिक प्रक्रियाएं

एक व्यक्ति के दूसरे व्यक्ति व समूह से तथा एक समूह के दूसरे समूह से अनेक प्रकार के संबंधपाए जाते है विभिन्न प्रकार के संबंधो जैसे पिता और पुत्र का, पति और पत्नि का, भाई और भाई का ,शत्रु और शत्रु का, के अभाव में समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। इन संबंधोके लिए अन्त: क्रिया का होना आवश्यक है। अन्त: क्रिया के आधार पर ही व्यक्ति और व्यक्ति के बीच व्यक्ति और समूह के बीच तथा समूह व समूह के बीच सामाजिक संबंधस्थापित होते है।

जब दो व्यक्ति आपस में मिलते है तो भाषा, हाव-भाव, मुख मुद्रा, प्रतीक आदि के माध्यम से विचारों और भावों का आदान-प्रदान होता है और वे एक दूसरे को प्रभावित करते है। इससे दोनों के व्यवहार में थोड़ा बहुत परिवर्तन हो जाता है। इसे अन्त: क्रिया कहते हैं।

एक व्यक्ति या समूह की दूसरे के साथ अन्त: क्रिया होती है। यह अन्त: क्रिया सहयोग, संघर्ष, प्रतिस्पर्धा आदि किसी भी रूप में हो सकती है। अन्त: क्रिया के विभिन्न स्वरूपों को ही सामाजिक प्रक्रिया के नाम से जाना जाता है।

सामाजिक प्रक्रिया का अर्थ स्पष्ट करते हुए गिलिन और गिलिन ने लिखा है- '' सामाजिक प्रक्रियाओं से हमारा तात्पर्य अन्त: क्रिया करने के उन तरीकों से है जो हमें, जब व्यक्ति और समूह मिलते है और संबंधो की व्यवस्था स्थापित करते है या जब परिवर्तन जीवन के प्रचलित तरीकों को अव्यवस्थित कर देते हैं, देख सकते है।''

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि सामाजिक प्रक्रिया सामाजिक जीवन में सदैव बनी रहने वाली और साथ ही परस्पर सम्बन्धित घटनाओं का एक क्रम है जो एक विशिष्ट परिणाम या परिवर्तन को जन्म देने के लिए उत्तरदायी हैं।

सामाजिक प्रक्रिया के प्रकार- विद्वानों के मतों पर विचार करने के उपरांत सामाजिक प्रक्रिया के दो प्रकार सामने है।

1. सहयोगी, सहगामी, संगठनात्मक या एकीकरण करने वाली सामाजिक प्रक्रियाएं।

2. असहयोगी, असहगामी, असंगठनात्मक या पृथक्करण करने वाली सामाजिक प्रक्रियाएं।

इन दोनों प्रकार की सामजिक प्रक्रियाओं को हम इस प्रकार समझ सकते है।

सामाजिक प्रक्रिया

सहयोगी सामाजिक प्रक्रिया — असहयोगी सामाजिक प्रक्रिया

सहयोग व्यवस्थापन सात्मीकरण — प्रतिस्पर्द्धा प्रतिकूलन संघर्ष

यहां पर हम अहयोगी सामाजिक प्रक्रिया के अन्तर्गत संघर्ष का विस्तृत रूप से अध्ययन करेगें।

2.4 संघर्ष का अर्थ एवं परिभाषा

संघर्ष को एक मौलिक और सार्वभौमिक सामाजिक प्रक्रिया माना जाता है। पूर्णत: संघर्ष रहित समाज का पाया जाना असंभव है। जब कोई व्यक्ति या समूह अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रतिस्पर्द्धा का मार्ग छोड़कर हिंसा की धमकी का सहारा लेता है।, विरोधी को नुकसान पहुंचाने, उसे पराजित करने या समाप्त करने का प्रयत्न करना है तो संघर्ष प्रारंभ हो जाता है।

संघर्ष में साधनों पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना साध्य या लक्ष्य प्राप्ति पर। जब अनेक व्यक्ति और समूह किसी सीमित लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं तब उनका मुख्य ध्यान लक्ष्य पर ही रहता है।

संघर्ष का अर्थ स्पष्ट करते हुए मैकाइबर तथा पेज ने लिखा है '' सामाजिक संघर्ष में वे सभी क्रिया-कलाप सम्मिलित है जिनमें मनुष्य किसी भी उद्देश्य के लिए एक दूसरे के विरूद्ध लड़ते या विवाद करते है।''

गिलिन तथा गिलिन ने स्पष्ट किया- ''संघर्ष वह सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अथवा समूह अपने लक्ष्यों की प्राप्ति विरोधी को प्रत्यक्ष हिंसा या हिंसा की चुनौती देकर करते है। ''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर संघर्ष की निम्न विशेषताएं सामने आती है-

1. संघर्ष के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों अथवा समूहों का होना आवश्यक है जो एक दूसरे के हितों को हिंसा की धमकी, आक्रमण, विरोध या उत्पीड़न के माध्यम से चोट पहुंचाने की कोशिश करते है।
2. संघर्ष एक चेतन प्रक्रिया है जिसमें संघर्षरत व्यक्तियों और समूहों को एक दूसरे की गतिविधियों का ध्यान रहता है। वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति के साथ साथ विरोधी को मार्ग से हटाने का प्रयत्न भी करते है।
3. संघर्ष एक वैयक्तिक प्रक्रिया है अर्थात् संघर्ष में ध्यान लक्ष्य पर क्रेन्द्रित न होकर प्रतिद्वन्दियों पर केन्द्रित हो जाता है।

4. संघर्ष एक अनिरन्तर प्रक्रिया है इसका अर्थ है कि संघर्ष रूक रूककर चलता है क्योंकि इसके लिए शक्ति और अन्य साधन जुटाने पड़ते हैं जो किसी भी व्यक्ति के पास असीमित मात्रा में नहीं पाए जाते। परिणामस्वरूप संघर्ष निरन्तर नहीं चलता।
5. संघर्ष एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है अर्थात् संघर्ष किसी न किसी रूप में प्रत्येक समाज एवं प्रत्येक काल में पाया जाता है।

2.5 संघर्ष के स्वरूप

संघर्ष के विभिन्न स्वरूपों को गिलिन और गिलिन ने निम्नलिखित पांच रूपों में बांटा है।

2.5.1 वैयक्तिक संघर्ष- आपसी हितों के टकराने से व्यक्ति- व्यक्ति के बीच होने वाला संघर्ष वैयक्तिक संघर्ष के अन्तर्गत आता है। ऐसे संघर्ष में विरोधियों में एक-दूसरे के प्रति घृणा, वैमनस्य तथा शत्रुता के भाव पाये जाते है। व्यक्ति प्रारंभ में अपने विरोधी से घृणा करता है, डराता, धमकाता है तथा मौका आने पर मारपीट भी देता है।

2.5.2 प्रजातीय संघर्ष- यह समूहगत संघर्ष है एक प्रजाति जब दूसरी प्रजाति के सम्पर्क में आती है तो उनमें वैचारिक एवं अन्य प्रकार के मतभेदों के कारण संघर्ष भड़क उठता है इसे ही प्रजातीय संघर्ष कहते है जिसका मुख्य कारण अपनी प्रजाति को अन्य प्रजातियों से श्रेष्ठ समझने की धारणा है।

2.5.3 वर्ग संघर्ष- आज वर्ग संघर्ष विश्व के कई देशो में भीषण रूप धारण करता जा रहा है। जब एक समूह स्वयं को श्रेष्ठ एव अन्य को हीन समझकर अपने स्वार्थ या हितों के लिए उसे अपने अधिकार में रखने की कोशिश करता है तब वर्ग संघर्ष उत्पन्न होता है। इस प्रकार के हितों में आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक लाभ आते है।

2.5.4 राजनीतिक संघर्ष- राजनीतिक संघर्ष के दो रूप देखने को मिलते है। प्रथम एक ही राष्ट्र के विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच होने वाला संघर्ष और द्वितीय विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के बीच होने वाला संघर्ष जिसे अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष कहा जाता है। कई बार राजनीतिक दल विरोधी नेता के विरूद्ध घृणा फैलाता है, भ्रामक प्रचार करता है तब स्थिति मारपीट या हत्या तक पहुंच जाती है। यह राजनीतिक संघर्ष कहलाता है।

2.6 भारतीय समाज में संघर्ष के कारण

विभिन्न संस्कृतियों एवं प्रजातीय दलों से भारतीय समाज का निर्माण हुआ है। इस अति प्राचीन एवं विशाल भारतीय समाज में अनेक धर्मो और जातियों के लोग रहते हैं। लोगों की प्रथाओं, मूल्यों, विश्वासों, रहन सहन के तरीको भोजन एवं वस्त्र आदि में यहां काफी भिन्नता देखने को मिलती है। ग्रामीण और नगरीय जीवन में भी स्पष्ट अन्तर दिखाई देता है। यहां एक ओर शिकार आदि के द्वारा अपना जीवन यापन करने वाली आदिम जनजातियां पायी जाती है तो दूसरी ओर नगरीय समुदायों में ऐसे लोग है जो नवीनतम यंत्रों के माध्यम से अपनी आजीविका चलाते है। भारतीय समाज में प्रजातीय और सांस्कृतिक सम्मिश्रण भी होता रहता है।

2.6.1 व्यक्तिगत भिन्नताएं- व्यक्ति -व्यक्ति में शारीरिक गठन , बौद्धिक क्षमता, आदतों, अभिवृतियों, मूल्यों, दृष्टिकोणों, स्वभाव आदि के आधार पर अनेक अन्तर पाये जाते है। किसी में क्रोध अधिक पाया जाता है किसी में सहनशीलता जब भिन्न-भिन्न क्षमताओं और विशेषताओं वाले व्यक्ति एक दूसरे के सम्पर्क में आते है तो वे सुगमता से समायोजन नहीं कर पाते। प्रत्येक अपने तरीके से सोचता है और व्यवहार करता है। यही स्थिति संघर्ष के लिए उत्तरदायी है।

2.6.2. सांस्कृतिक भिन्नाएं- प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व उस संस्कृति की देन होता है जिसमें उसका समाजीकरण होता है जिसमें उसका लालन पालन होता है। एक समूह की संस्कृति दूसरे समूह से भिन्न होती है और व्यक्ति के विचारों मूल्यों, दृष्टिकोणों तथा अभिवृतियों पर उसके समूह की संस्कृति का काफी प्रभाव होता है। जब दो भिन्न संस्कृति वाले एक दूसरे के सम्पर्क में आते है तो सांस्कृतिक भिन्नता उसके सहयोगी सम्बन्धों के मार्ग में कई बार बाधक बन जाती है और संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

2.6..3 जाति व्यवस्था- भारतीय समाज को एक जातिगत समाज के नाम से पुकारा जा सकता है। जाति व्यवस्था भारतीय समाज की अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यवस्था है। जो जन्म पर आधारित सामाजिक स्तरीकरण की एक गतिशील दशा है जो अपने सदस्यों पर विवाह, खानपान, व्यवसाय तथा सामाजिक सहवास सम्बन्धी अनेक प्रतिबन्ध लगाती है।

जाति व्यवस्था के आधार पर जन्म से व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण हो जाता है। प्राचीन समय से ही भारत में जाति के हितों को सर्वोपरि समझा जाता रहा है। आज जातिवाद के कारण ही जाति के नाम पर कई धर्मशालाएं, अस्पताल , मंदिर एवं अनेक संगठन चलाये जाते है। जाति भक्ति, जाति के व्यक्तियों की वह भावना है जो देश व समाज के हित से आगे जाति के सदस्यों के उत्थान को प्रमुखता देते है ऊँचे पद पर बैठा व्यक्ति अपनी ही जाति के व्यक्तियों को आर्थिक , सामाजिक एवं राजनैतिक रूप से शक्तिशाली बनाता है यही जातिगत प्रेम संघर्ष को निमेंत्रण देता है क्योंकि इससे जाति विशेष में परस्पर घृणा एवं संघर्ष का भाव पनपने लगता है। जो साम्प्रदायिकता को जन्म देता है तथा राष्ट्रीय एकता में बाधक सिद्ध होता है।

2.6.4 वर्ग व्यवस्था- विश्व के सभी समाजों में वर्ग पाए जाते हैं। ये वर्ग आयु लिंग, शिक्षा, व्यवसाय तथा आय के आधार पर आदिकाल से बने हुए हैं। वर्ग ऐसे व्यक्तियों का एक समूह है जो एक दूसरे को समान समझते है। सामाजिक वर्ग समान सामाजिक स्थिति वाले व्यक्तियों का समूह है जो जन्म के अतिरिक्त किसी अन्य आधार पर बनता है। इस प्रकार सामाजिक वर्ग एक विशेष सामाजिक स्थिति वाले व्यक्तियों का ऐसा समूह है जिन्हें कुछ विशेष अधिकार व शक्तियाँ प्राप्त हैं तथा जिनके कुछ उत्तरदायित्व है।

वर्गो की एक श्रेणी होती है जिसमें कुछ वर्ग ऊपर, कुछ वर्ग मध्यम एवं कुछ निम्नतम स्थान पर होते है। उच्च वर्ग के लोगों की सामाजिक प्रतिष्ठा एवं शक्ति अन्य वर्गो की तुलना में सर्वाधिक होती है और उसके सदस्यों की संख्या भी कम होती है। निम्न वर्ग के सदस्यों की संख्या अधिक होती है। इनकी

सामाजिक प्रतिष्ठा एवं शक्ति भी कम होती है। वर्गो में यही अन्तर आर्थिक स्तर पर शिक्षा के स्तर पर व्यवसाय के स्तर पर दिखाई देता है।

एक वर्ग के लोगो की जीवन शैली, खान-पान, सुख सुविधाएं समान होने एवं बचपन से ही उसके सदस्यों का सामाजीकरण उस वर्ग के अनुरूप होने से उस वर्ग के लोगों के अपने वर्ग के प्रति चेतना का निर्माण होता है। वर्ग चेतना के आधार पर ही एक वर्ग दूसरे वर्ग से प्रतिस्पर्द्धा और संघर्ष करता है।

वर्ग विभाजन का मुख्य आधार आर्थिक होता है। मार्क्स ने आर्थिक आधार पर वर्ग विभाजन किया है। उनके अनुसार उत्पादन प्रणाली एवं उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व के आधार पर ही वर्ग निर्मित होते है। जिन लोगों का उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व होता है वे पूँजीपति और जो लोग श्रम बेचकर जीवनयापन करते है वे श्रमिक कहलाते है। इन वर्गो में आर्थिक शक्तियों के असमान वितरण के कारण संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है।

भारत जैसे देश में व्यक्ति की वर्ग स्थिति निर्धारित करने में व्यक्ति की पारिवारिक स्थिति एवं उसके नाते रिश्तदारों की स्थिति भी महत्वपूर्ण मानी जाती है। आज जाति व्यवस्था की अवधारणा अधिक प्रबल दिखाई देती है। समान स्वार्थ समान शिक्षा, समान सामाजिक स्थिति के कारण एक वर्ग के व्यक्तियों का अन्य वर्ग के व्यक्तियों से संघर्ष होता है।

2.6.5 समाज की संरचना- ग्राम और नगर मानव के सामाजिक जीवन के दो पहलू है। नगर समाज से निर्मित एक ऐसा वातावरण है, जिसमें सामुदायिक जीवन के उद्देश्यों के लिए प्राकृतिक पर्यावरण के अनेक पहलूओं का सम्पूर्ण संशोधन किया जाता है। गांवो का प्रकृति से प्रत्यक्ष और निकट सम्पर्क पाया जाता है।

गांव एवं नगर के बीच कई अन्तरों के बावजूद ये दोनों एक दूसरे से पृथक नहीं है। इन दोनों में परस्पर आदान-प्रदान और अन्त: क्रिया होती रहती है। लोग उच्च शिक्षा प्राप्त करने, नौकरियां करने, व्यापार करने एवं अन्य आवश्यक कार्यो हेतु नगरों पर निर्भर रहते हैं। नगरों में आने पर वे यहां की संस्कृति को भी अपना लेते है। जो निस्संदेह ग्राम संस्कृति से भिन्न होती है। इस प्रकार संस्कृतियों के बीच संघर्ष प्रारंभ हो जाता है।

2.6.6 अंतर पीढ़ी संघर्ष- दो आनुक्रमिक पीढ़ियों में जब मतभेद एवं टकराव की स्थिति बन जाती है तो इसी को अन्तर पीढ़ी संघर्ष कहते है। प्रचलित मानदण्डो एवं मूल्यों तथा नवीन मानदण्डों के मुद्दे को लेकर दो पीढीयों के बीच मतभेद और टकराव उत्पन्न हो जाता है।

भारतीय समाज की संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है तथा पुरानी पीढ़ी जड़ों से जुड़े होने के कारण परम्परागत संस्कृति को बनाए रखने का प्रयास करती है जबकि नयी पीढ़ी समाज में हो रहे परिवर्तनों से जल्द ही सामजंस्य बिठाकर नवीन मूल्यों को ग्रहण करने के लिए तैयार रहती है तथा वैश्विक संस्कृति को बढ़ावा देती है यही अन्तर पीढ़ी संघर्ष का कारण है।

2.6.7. भारतीय समाज में सांस्कृतिक विलम्बन और संघर्ष

संस्कृति को दो भागों में विभाजित किया है जो इस प्रकार है (1) भौतिक संस्कृति (2) अभौतिक संस्कृति। भौतिक संस्कृति के अन्तर्गत समाज की भौतिक उपलब्धियों को रखा जा सकता है। ये मूर्त होती है इन्हें हम देख सकते है स्पर्श कर सकते है। अभौतिक संस्कृति वह है जिसे हम स्पर्श कर सकते है। अभौतिक संस्कृति वह है जिसे हम स्पर्श नहीं कर सकते और देख भी नहीं सकते। यह अमूर्त एवं व्यक्तिनिष्ठ होती है।

सांस्कृतिक विलम्बन की अवधारणा को हम संस्कृति के इन दो भागों के द्वारा समझ सकते है। भौतिक वस्तुओं में असीमित विकास की संभावना होती है इसलिए उसमें हमेशा कुछ न कुछ परिवर्तन होता रहता है जबकि अभौतिक संस्कृति जिसमें मूल्य, आदर्श, सामाजिक नियम कानून आदि आते है, इनमें परिवर्तन बहुत धीमी गति से होता है जिससे भौतिक संस्कृति आगे बढ़ जाती है और अभौतिक संस्कृति पिछड़ जाती है इसे ही सांस्कृतिक विलम्बन कहा गया है। इसमें अभौतिक व भौतिक संस्कृति में एक प्रकार का अंसतुलन हो जाता है जो समाज में संघर्ष को जन्म देता है।

2.7 संघर्ष के परिणाम

संघर्ष के व्यक्ति और समाज की दृष्टि में अनेक परिणाम निकलते है। गिलिन और गिलिन ने इसके पांच परिणामों का उल्लेख किया है।

2.7.1 अन्त: समूह की दृढ़ता- जब संघर्ष दो समूहों के बीच होता है तो प्रत्येक में एकता और दृढ़ता बढ़ जाती है। प्रत्येक समूह अपने सदस्यों के लिए अन्त: समूह और किसी अन्य समूह के सदस्यों के लिए बाह्य समूह होता है। किसी अन्य अर्थात् बाह्य समूह से संघर्ष होने पर उसका डटकर मुकाबला करने और विजय प्राप्त करने के लिए समूह के सदस्य आपसी मतभेदों को भुलाकर एकता के सूत्र में बंध जाते हैं।

7.7.2 समूह दृढ़ता में कमी- एक ही समूह के सदस्यों के बीच होने वाले संघर्ष से समूह की दृढ़ता में कमी आ जाती है विरोध बढ जाता है और एकता को खतरा पैदा हो जाता है। समूह के भीतर संघर्ष होने पर सदस्य छोटे -छोटे समूहों में बंट जाते हैं जो कई बार एक दूसरे का काफी विरोध करते है। ऐसे संघर्ष में सदस्यों के आपसी संबंध छिन्न भिन्न हो जाते है। और वे एक दूसरे की कमियों को बढ़ा-चढ़ाकर लोगों के सामने रखते हैं। ऐसी स्थिति में कई बार लोग गाली- गलौच और मारपीट पर उतारू हो जाते है।

2.7.3 व्यक्तित्व में बदलाव या परिवर्तन- समूह के भीतर चलने वाले संघर्ष और विभिन्न समूहों के मध्य चलने वाले संघर्ष के दौरान कुछ व्यक्तियों की वफादारी एक ही समूह के दो विरोधी उप समूहों या दो भिन्न-भिन्न विरोधी समूहों के प्रति होती हैं। ये व्यक्ति एक ही समूह के दो उप समूहों या धड़ो या दो भिन्न समूहों के आदर्शो, मूल्यों, विश्वासो एवं लक्ष्यों को अपने में संजोय होते है। परिणामस्वरूप ये किसी भी उपसमूह या समूह के प्रति पूर्ण वफादारी नहीं रख पाते। ऐसी स्थिति इनका व्यक्तिगत अनेक चिन्ताओं से ग्रसित है जो इनके मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिप्रद है ऐसे लोगों का व्यक्तित्व अपूर्ण होता है।

2.7.4 जन-धन की हानि- संघर्ष में जन और धन को कितनी हानि होती है, इसकी कल्पना उस समय तक नहीं की जा सकती तब तक कि किसी संघर्ष से हानि सम्बन्धित आंकड़े उठाकर नहीं देखे जायें।

संघर्ष के कारण अनेक परिवार टूट जाते है। भाई-भाई, माता-पिता और संतानें, पड़ोसी और पड़ोसी एक दूसरे से अलग हो जाते है पति-पत्नी में तलाक तक की नौबत आ जाती है। संघर्ष में कभी तोड-फोड़, आगजनी, मारपीट, हत्याओं तक के लिए उत्तरदायी है।

2.7.5 व्यवस्थापन, प्रभुत्व एवं अधीनता -जब संघर्ष में लगे दो दल या समूह शक्ति की दृष्टि से करीब-करीब समान होते है तो परिणामस्वरूप कोई भी दल दूसरे को नष्ट करने या उस पर प्रभुत्व स्थापित करने में सफल नहीं हो पाता। ऐसी दशा में उन दोनों में व्यवस्थापन या समायोजन हो जाता है। दोनों एक दूसरे से अनकूलन कर लेते है। जब दोनों में से एक दल शक्तिशाली होता है तो वह दूसरे को अपने अधीन कर लेता है उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेता है। परिणामस्वरूप विजेता समूह पराजित या अधीनस्थ समूह को अपनी शर्तो के अनुसार चलने को बाध्य कर देता है।

2.8 संघर्ष का समाजशास्त्रीय महत्व

संघर्ष एक मूलभूत मानवीय एवं सामाजिक लक्षण है। जीवन के लिए संघर्ष, हितों के संघर्ष का रूप धारण कर लेता है। संघर्ष रहित समस्त समूह का अस्तित्व, अव्यावहारिक तथा असंभव है। समाज के निर्माण तथा विकास के लिए शांति एवं अशांति, सहयोग एवं असहयोग दोनों की आवश्यक हैं संघर्ष रचनात्मक एवं सकारात्मक लक्ष्यों की पूर्ति करता है।

समाज में संघर्ष के महत्व के संबंध में दो विचार धाराएं प्रमुख है। प्रथम संघर्षवादी विचारधारा रेडीकल या आमूलचूल परिवर्तवादी विचारधारा है। और द्वितीय संन्तुलनवादी विचारधारा या संरचनात्मक प्रकार्यात्मक विचारधारा।

प्रथम विचाराधारा से सम्बन्धित विद्वानों के अनुसार संघर्ष स्वाभाविक सामाजिक प्रघटना है न कि कोई अस्थायी या असामन्य घटना। इनकी मान्यता है कि समाजों में पायी जाने वाली अभाव की स्थिति के कारण संघर्ष उत्पन्न होता है। प्रथम वर्ग या शक्तिशाली वर्ग दूसरे वर्ग या कमजोर वर्ग पर आधिपत्य रखता है। और उनका शोषण करता है यह शोषण संघर्ष का प्रमुख कारण बन जाता है इस विचारधारा के अनुसार संघर्ष इसलिए महत्वपूर्ण है कि यह परिवर्तन लाने में विशेष योग देता है शक्ति सम्पन्न लोग यथास्थिति बनाये रखना चाहते है ताकि उनके हित सुरक्षित रहे।

समन्वयवादी (सन्तुलनवादी) या संरचनात्क विचारधारा के समर्थक संघर्ष को समाज व्यवस्था के लिए बाधक मानते है। संघर्ष से समूह विशेष में तो एकता पनपती है और वह भी कुछ समय के लिए परन्तु सम्पूर्ण समाज व्यवस्था को इससे काफी हानि उठानी पड़ती है उसकी एकता और जनजीवन अस्त व्यस्त हो जाता है। युद्ध इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है।

आज संघर्ष मुक्त समाज की कल्पना करना असंभव है। संघर्ष के महत्व पर प्रकाश डालते हुए मैकाइबर व पेज ने लिखा है '' सहयोग और संघर्ष मानव जीवन में सार्वभौमिक तत्व हैं जिस प्रकार भौतिक जगत में आर्कषण और विकर्षण की शक्तियां है जो किसी स्थान में पदार्थो की स्थिति को साथ साथ संचालित एवं निश्चित करती है वैसे ही सामाजिक जगत में सहयोग व संघर्ष साथ साथ रहते हैं जो मनुष्यों और समूहों के सम्बन्धों में प्रकट होते है।''

2.9 सारांश

संघर्ष समाज की एक सार्र्वभौमिक प्रक्रिया है संघर्ष हितों के टकराव के कारण उत्पन्न होता है हर समाज में संघर्ष के कारण उस समाज की संरचना, स्थिति एवं बनावट कुछ परिवर्तित अवस्था में मिलते है परन्तु प्रत्येक समाज में आतंरिक रूप से संघर्ष के कारण समान ही होते है। संघर्ष का समाज में उतना ही महत्व है जितना की सहयोग का। इस प्रकार संघर्ष प्रत्येक समाज का आवश्यक अंग है।

2.10 अभ्यास प्रश्न

1 संघर्ष का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके स्वरूप एवं कारणों को समझाइए ?

2. संघर्ष के कारण बताते हुए उसके महत्व पर प्रकाश डालिए।

2.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. भारत में समाज- मोतीलाल गुप्ता

2. भारतीय समाज- वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा

इकाई - 3

संघर्ष और पुलिस की भूमिका

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 पुलिस अर्थ, प्रारंभ, एवं कार्यात्मक संगठन

3.4 समाज में पुलिस की भूमिका

3.5 सामाजिक प्रक्रिया

3.6 संघर्ष

3.6.1 संघर्ष अर्थ एवं परिभाषा

3.6.2 संघर्ष की विशेषताएं

3.6.3 संघर्ष के स्वरूप

3.7 संघर्ष और पुलिस की भूमिका

3.7.1 घरेलु संघर्ष में पुलिस की भूमिका

3.7.2 जातिगत संघर्ष में पुलिस की भूमिका

3.7.3 साम्प्रदायिक संघर्ष में पुलिस की भूमिका

3.7.4 छात्र एवं युवा संघर्ष में पुलिस की भूमिका

3.8 सारांश

3.9 अभ्यास प्रश्न

3.10 संदर्भ ग्रन्थ

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का उठ्ठेश्य समाज की पुलिस की भूमिका को समझना है। पुलिस जो देश एवं समाज की आतंरिक सुरक्षा एवं व्यवस्था के लिए अत्यन्त आवश्यक है उसकी समाज में होने वाले विभिन्न संघर्षो में भूमिका तथा व्यवहार को समझगे। विभिन्न संघर्षो में पुलिस को संघर्ष को समझकर उसके अनुसार व्यवहार करना होता है इसलिए इस इकाई में हम संघर्ष एवं उसमें पुलिस की भूमिका को जानेगे।

3.2 प्रस्तावना

सामाजिक सम्बन्धों के जाल का नाम ही समाज है। यह एक जटिल व्यवस्था है जिसमें संगठनकारी शक्तियों के साथ साथ विघटनकारी शक्तियां भी निरन्तर क्रियाशील रहती है। प्रत्येक समाज में प्रगति एवं विकास हेतु सामाजिक न्याय पर आधारित एक व्यवस्था पाई जाती है। समाज में कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते

है जो इस सामाजिक व्यवस्था एवं कानून का उल्लंघन चेतन अवस्था में करते रहते है। कानून एवं व्यवस्था का यह उल्लंघन चेतन अवस्था में किया जाय अथवा अचेतन अवस्था में, इससे समाज को हानि होती है। समाज की प्रगति बाधित हो जाती है और सामाजिक शान्ति को खतरा उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार के समाज विरोधी कार्य करने वाले लोगो पर अंकुश लगाना समाज को विघटन से बचाने के लिए नितान्त आवश्यक हैं। पुलिस ऐसा राजकीय संगठन है। जो समाज विरोधी कार्य पर अंकुश लगाकर समाज में शांति एवं व्यवस्था की स्थापना करता हैं प्रारम्भ में समाज विरोधी कार्य पर पड़ोस, परिवार,,धर्म एवं प्रथाओं जैसे अनौपचारिक संस्थाओ द्वारा सामाजिक नियन्त्रण रखा जाता था, परन्तु कालान्तर में अनौपचारिक नियन्त्रण में शिथिलता आ जाने के कारण कानून, पुलिस, न्यायालय और कारागार का विकास हुआ। पुलिस सामाजिक नियन्त्रण का महत्वपूर्ण अनौपचारिक स्वरूप है।

3.3 पुलिस अर्थ एवं कार्यात्मक संगठन

सदरलैंड ने पुलिस को निम्नलिखित शब्दों में परिभषित किया है पुलिस शब्द प्राथमिक रूप से राज्य के उन प्रतिनिधियों की ओर संकेत देंता है। जिनका कार्य कानून और व्यवस्था को बनाए रखना और सही रूप से नियमित आपराधिक संहिता को लागू करना है।'' इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर पुलिस की निम्नलिखित विशेषताएं होती है।

1. पुलिस राज्य के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करती है,
2. पुलिस का कार्य कानून और व्यवस्था को बनाए रखना है,
3. कानून एवं व्यवस्था बनाये रखने के लिये पुलिस का मौलिक कार्य नियमित आपराधिक संहिता को लागू करना है।

पुलिस व्यवस्था का वास्तविक प्रारम्भ इंग्लैड से हुआ है। इंग्लैड में सन् 1797 के एक संसदीय अधिनियम के अन्तर्गत एक आरक्षी दल की स्थापना की गई थी जिसका कर्तव्य आयरलैंड में शान्ति व्यवस्था बनाये रखना था। इंग्लैंड के विभिन्न गांवो कस्बों में भी यही प्रथा लागू की गई थी। परन्तु शहरों की उत्पति तथा बढ़ती हुई जनसंख्या के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई जीवन की जटिलताओं के कारण इन कांस्टेबलों के लिए अपने क्षेत्रो में शान्ति व्यवस्था बनाये रखना कठिन हो गया इंग्लैड की संसद का ध्यान इस समस्या की ओर आर्कषित किया गया तथा सन् 1828 में इंग्लैंड के तत्कालीन गृह सचिव ने प्रचलित कांस्टेबुलरी व्यवस्था में तुरन्त सुधार किये जाने की सिफारिश की। इसी के परिणामस्वरूप सन् 1819 के मेट्रोपोलिटन पुलिस एक्ट के अन्तर्गत लन्दन शहर के लिए एक अलग पुलिस-दल की स्थापना की गई। शीघ्र ही इंग्लैड के सभी भागों में यही पुलिस व्यवस्था अपनाई गई कालान्तर में सर राबर्ट पील द्वारा आरम्भ की गई पुलिस व्यवस्था के आधार पर अन्य पश्चिमी देशों ने भी अपनी पुलिस व्यवस्था प्रारम्भ की । पुलिस व्यवस्था को सुनियोजित ढंग से लागू करने वाले प्रथम व्यक्ति सर राबर्ट पील के नाम पर शुरूआत में इंग्लैड में पुलिस कांस्टेबलों की पीलर्स कहा जाता था, जो बाद में कहलाये जाने लगे। इस प्रकार जनता की सुरक्षा के लिए पुलिस व्यवस्था प्रारम्भ हुई।

कार्यात्मक संगठन -'पुलिस शब्द अत्यन्त व्यापक है। पुलिस का प्रशासकीय संगठन राज्य की शासन-व्यवस्था पर आधारित होता है। साधारणतया पुलिस संगठन के अन्तर्गत निम्न संगठन आते है।

(1) सामान्य पुलिस- यह पुलिस सामान्य प्रशासन में यह योग देती है। इस श्रेणी में आम्र्ड पुलिस एवं सिविल पुलिस आती है।

(2) सशस्त्र पुलिस- विभिन्न राज्यों में पी.ए.सी, आर. पी. एफ, आदि नामों से सशस्त्र पुलिस का एक संगठन कार्य करता है। जो हिन्सा एवं डकैती जैसी समस्याओं को रोकने में राज्य को सहयोग करता है।

(3) रेलवे पुलिस।

(4) गुप्तचर पुलिस।

(5) यातायात पुलिस।

(6) महिला पुलिस।

(7) सेन्ट्रल रिजर्व पुलिस एवं बार्डर सिक्योरिटी पुलिस फोर्स।

यद्यपि यह वर्गीकरण पर्याप्त नहीं है तथापि भारत में पुलिस समान्यतया इन्हीं स्वरूपों में कार्य करती है। भारतीय संविधान में पुलिस को राज्य सूची में दर्शाया गया है। सेन्ट्रल रिर्जवड पुलिस तथा बार्डर सिक्योरिटी पुलिस फोर्स को छोड़कर जिन्हें केन्द्र संचालित करता है, शेष का गठन राज्यों के द्वारा ही किया जाता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि समाज में पुलिस की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है

3.4 समाज में पुलिस की भूमिका

पुलिस समाज का सजग प्रहरी है। पुलिस समाज में शान्ति- व्यवस्था स्थापित करने एवं प्रत्येक नागरिक को उसके कर्तव्यों का ज्ञान कराने का काम करती है। अपराधों की रोकथाम का दायित्व भी पुलिस पर ही है। न्याय प्रशासन के अन्तर्गत अपराधों की रोकथाम, अपराधियों की गिरफ्तारी, उनका परीक्षण एवं दण्ड अथवा सुधार हेतु अनेक न्याय अभिकरणों की स्थापना की जाती है, जैसे पुलिस, ,न्यायालय, कारागार, परिवीक्षा, पैरोल एवं अपराधियों के लिए शिविर। पुलिस संदिग्ध अपराधी को गिरफ्तार करके उसके पूछताछ करती है और आवश्यक होने पर उसे न्यायालय के समक्ष परीक्षण के लिये प्रस्तुत करती है। अभियुक्त को न्यायालय में प्रस्तुत किये जाने पर साक्ष्य एवं तथ्यों के आधार पर उसका परीक्षण किया जाता हैं और विधि के अन्तर्गत दोषी पाये जाने पर उसे दण्डित किया जाता है। दण्ड भोगने के लिये अपराधी को कारागार में भेजा जाता हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि अपराधी इन सभी प्रक्रियाओं से गुजरे। कुछ अपराधियों की उनके दण्ड की अवधि समाप्त होने के पूर्व ही पैरोल पर छोड़ दिया जाता है जबकि कुछ प्रमाणित दोष अपराधियों को कारागार में न भेजकर उनकी आयु, अपराध की प्रकृति एवं सुधार-सम्भावनाओं के आधार पर परिवीक्षा पर छोड़ दिया जाता है। कुछ अभियुक्तों को न्यायालय साक्ष्य के अभाव में छोड़ देती है। जबकि कुछ को पुलिस गिरफ्तारी के तुरन्त बाद ही छोड़ देती है क्योंकि तफ्तीश के बाद पुलिस उन्हें हिरासत में रखना अनावश्यक समझती है। इस प्रकार अपराधी से सर्वप्रथम

सम्पर्क पुलिस का होता है, इसलिए पुलिस को आपराधिक न्याय प्रशासन का प्रथम अभिकरण कहा जाता है। बान्स एवं टीटर्स ने पुलिस को 'सुरक्षा की प्रथम पंक्ति' कहा है।

टैफ्ट महोदय ने लिखा है। '' वर्तमान समय मे प्रभावकारी पुलिस-सुरक्षा की आवश्यकता और बढ़ गई है। सामाजिक सम्बन्धों की अधिक जटिलता, बड़े शहरों के विकास, अधिक घातक हथियारों का प्रसार, अपराधियों के वृहत् संगठन और उनकी हमारे सम्पूर्ण सामाजिक ढांचे पर जकड़, अतिविकसित यातायात के साधन जिनसे अपराध-क्षेत्र, जिसमें अपराधी क्रियाशील रह सकता है, का विस्तार एवं गिरफ्तारी से बचाव की अधिक सम्भावना आदि सक्षम पुलिस की मांग करती है।

3.5- सामाजिक प्रक्रिया

एक व्यक्ति या समूह की दूसरे के साथ अन्त: क्रिया होती है और सामान्यतया सहयोग, प्रतिस्पर्धा, संघर्ष व्यवस्थापन, सात्मीकरण के रूप में प्रकट होती है। सामाजिक अन्त: क्रिया के इन्हीं रूपों को सामाजिक प्रक्रियाएं कहा जाता है। अत: कहा जा सकता है की सामाजिक क्रियाएं वह मूल विधियाँ है जिसके द्वारा मनुष्य अन्त: क्रिया तथा संबंधोंकी स्थापना करता है जब अन्त: क्रिया में निरन्तरता आ जाती है तो वहां निश्चित परिणाम की ओर बढ़ने लगती इस प्रकार सामाजिक प्रक्रिया के द्वारा समूह के मनु'यों में विशिष्ठ संबंधबनने लगते है यदि दो व्यक्ति लगातार आपस में मिलते है एवं अपने सुख' दुख की बात करते है तो धीरे धीरे उनके संबंधप्रगाढ़ होने लगते है यहीं सामाजिक प्रक्रिया है इन क्रियाओं को दो भागो मे बांटा जा सकता है : -

सामाजिक प्रक्रिया –

1.सहयोगी सामाजिक प्रक्रिया

2.असहयोगी सामाजिक प्रक्रिया

1. **सहयोगी सामाजिक प्रक्रिया** ऐसी सामाजिक प्रकियाएं जो समाज को संगठनात्मक या एकीकृत करती है सहयोगी सामाजिक प्रक्रिया कहलाती है। जिसके अन्तर्गत सहयोग, व्यवस्यपन एवं सात्मीकरण आते है।
2. **असहयोगी सामाजिक प्रक्रिया :-** ऐसी सामाजिक प्रक्रियाएं जो समाज को विघटित या पृथक् करती है असहयोगी सामाजिक प्रक्रिया कहलाती है इसके अन्तर्गत प्रतिस्पर्द्धा, प्रतिकूलन एवं संघर्ष आते है। विघनात्मक प्रक्रिया होने के बावजूद ये पूर्णत: नकारात्मक नही होती है यहां पर हम संघर्षके विषय में विस्तार से चर्चा करेंगे।

3.6 संघर्ष

संघर्ष एक सार्वभौमिक सामाजिक प्रक्रिया है। जो मानव संबंधो में सदैव विद्यमान रहता है। संघर्ष रहित समाज का होना असंभव है। जब कोई व्यक्ति या समूह अपने उद्देश्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रतिस्पर्धा अर्थात अहिंसात्मक तरीके से लक्ष्य प्राप्ति के प्रयत्न का मार्ग छोड़कर हिंसा का सहारा लेता है या विरोधी को नुकसान पहुंचाने का प्रयत्न करता है। यहीं से संघर्षका प्रारंभ हो जाता है। संघर्षमें साधनों की अपेक्षा साध्य महत्वपूर्ण होता है।

3.6.1 संघर्ष- का अर्थ एवं परिभाषा

जब कोई व्यक्ति या समूह लक्ष्य प्राप्ति के लिए विरोधी को नुकसान पहुंचाने का प्रयत्न करे तो उसे संघर्ष कहा जाता है। इस प्रकार के प्रयत्नों में शक्ति, हिंसा, विरोध या प्रतिकार का प्रयोग दिया जाता है।

संघर्ष का अर्थ बताते हुए मैकाइवर तथा पेज ने कहा है '' सामाजिक संघर्ष में वे सभी क्रिया-कलाप सम्मिलित है जिसमें मनुष्य किसी उद्देश्य के लिए एक दूसरे के विरूद्ध लड़ते या विवाद करते है।''

गिलिन तथा गिलिन के अनुसार संघर्ष वह सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अथवा समूह अपने लक्ष्यों की प्राप्ति विरोधी को प्रत्यक्ष हिंसा या हिंसा की चुनौती देकर करते है।

स्पष्ट है कि अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बल प्रयोग या हिंसा की धमकी द्वारा दूसरो की इच्छाओं को दबाना या उनके उद्देश्यों की प्राप्ति के मार्ग में बाधा उपस्थित करना ही संघर्ष है।

3.6.2 संघर्ष की विशेषताएं:-

1. संघर्ष के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियो या समूहो को होना आवश्यक होता है जो एक दूसरे के हितों को हिंसा की धमकी , विरोध या उत्पीडन के माध्यम से चोट पहुंचाने की कोशिश करते है।
2. संघर्ष एक चेतन एवं सक्रिय प्रक्रिया है जिसमें संघर्षित व्यक्तियो द्वारा एक दूसरे की गतिविधियों का ध्यान रखा जाता है तथा स्वयं के लक्ष्य की प्राप्ति के साथ ही दूसरे व्यक्ति के मार्ग में रूकावट या अवरोध उत्पन्न किया जाता है।
3. संघर्ष एक वैयक्तिक प्रक्रिया है जो व्यक्तिश: अलग - अलग हो सकती है। तथा इसमें व्यक्ति या समूह का सम्पूर्ण ध्यान लक्ष्य की ओर केन्द्रित न होकर ज्यादा ध्यान प्रतिद्वन्द्वियोंके क्रिया कलापों पर केन्द्रित होता है।
4. संघर्ष एक अनवरत एवं निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया नहीं है अर्थात् संघर्ष रूक रूक कर चलता है। इसका कारण यह है कि संघर्ष के लिए शक्ति और अन्य साधन जुटाने पड़ते है जो किसी के पास भी असीमित मात्रा में नहीं होते है इसी कारण संघर्ष अनिरन्तर प्रक्रिया है।
5. संघर्ष एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है अर्थात् प्रत्येक समाज में संघर्ष एक अनिवार्य तत्व है जिसके बिना समाज का अस्तित्व संभव नहीं है, इसलिए प्रत्येक समाज एवं प्रत्येक काल में संघर्ष कम या अधिक मात्रा में अवश्य पाया जाता है।

3.6.3 संघर्ष के स्वरूप:-

1. **वैयक्तिक संघर्ष -** आपसी हितो के टकराने से व्यक्ति, व्यक्ति के बीच होने वाले संघर्ष वैयक्तिक संघर्ष कहलाते है। ऐसे संघर्ष में विरोधियों में एक दूसरे के प्रति घृणा, वैमनस्य का भाव पाया जाता है। व्यक्ति अपने विरोधी से घृणा करता है उसे नीचा दिखाने का प्रयत्न करता है तथा मारपीट तक करता है। व्यक्तिगत संघर्ष मुख्य रूप से धन, स्त्री और जमीन को लेकर होता है।
2. **प्रजातीय संघर्ष:-** यह व्यक्तिगत न होकर समूह गत संघर्ष है। एक प्रजाति में दूसरी प्रजाति से सदैव विभेद होता है यह विभेद शारीरिक, सांस्कृतिक आदि होता है। जब दो भिन्न प्रजातियां

एक दूसरे के सम्पर्क में आती है। तो कई बार उनमें संघर्ष हो जाता है। इस प्रकार का संघर्ष अमेरिका में श्वेत एवं नीग्रो प्रजातियों में देखा जा सकता है।

3. **वर्ग संघर्ष:-** जब एक समूह या वर्ग अपने को श्रेष्ठ मानकर अन्य को हीन समझता है तथा स्वयं को श्रेष्ठ समझकर केवल अपने स्वार्थ एवं हितो की रक्षा करने में प्रवृत्त रहता है तो वर्ग संघर्ष देखने का मिलता है। इस प्रकार के हितो में आर्थिक लाभ राजनैतिक शक्ति आदि आते है औघोगीकरण के कारण जन्में पूंजीवाद ने वर्ग संघर्ष को बढ़ाया। पूंजीवाद के कारण मालिक और मजदूर में विषमता की खाई बहुत अधिक बढ़ गई। इन दोनो वर्गो के हितो के टकराव, हड़ताल, तोड़-फोड़, मारपीट के रूप में दिखाई देते है।

4. **राजनैतिक संघर्ष:-** राजनीतिक संघर्ष दो रूपो में दिखाई देता है। पहला एक ही राष्ट्र के विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच होने वाला संघर्ष और द्वितीय विश्व युद्ध के विभिन्न राष्ट्रों के बीच होने वाला अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष। राजनीतिक दलों में वैसे तो प्रतिस्पर्धा होती है जिसमें सभी दल अपने सिद्वान्तों एवं कार्यक्रमों को शान्ति मय तरीके से प्रस्तुत कर जनता का समर्थन प्राप्त करने की कोशिश करते है परंतु यह प्रतिस्पर्धा तब संघर्ष का रूप ले लेती है। जब विरोधी दल भ्रामक प्रचार, चरित्र, हनन, मारपीट, हत्या आदि का प्रयास करता है।

5. **अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष:-** अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष विभिन्न राष्ट्रों के मध्य होने वाला संघर्ष है। भारत और पाकिस्तान के बीच हुए युद्ध और समय समय पर सीमा पर हाने वाला तनाव अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष के अन्तर्गत आता है।

3.7 विभिन्न संघर्ष एवं पुलिस की भूमिका

3.7.1 घरेलु संघर्ष में पुलिस की भूमिका –

महिलाओं के प्रति हिंसा से तात्पर्य है महिलाओं के निकट रिश्तेदारों जैसे माता-पिता, भाई-बहन, सास-ससुर ननद, भाभी, या परिवार के किसी सदस्य द्वारा की गई प्रताड़ना शामिल है। जो महिला को शारीरिक एवं मानसिक रूप से आघात पहुंचाती है।

नन्दिता गांधी एवं नन्दिता शाह ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है '' महिला के प्रति हिंसा के अन्तर्गत बलात्कार, दहेज हत्याए, पत्नी को यातनाएं देने तथा संचार माध्यम में स्त्री को गलत ढंग से समाहित किया जा सकता है।''

यघपि प्रशासन में महिलाओं की सुरक्षा, समानता एवं विकास के लिए कई कानून बना रखे है फिर भी महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा में कमी नहीं आ रही है। पिछले चार दशकों के आँकड़ो पर नजर डाले तो पता चलता है कि महिलाओं के विरोध में कुछ विशिष्ट प्रकार के अपराधो जैसे महिला उत्पीड़न, दहेज मृत्यु, पति एवं उसके रिश्तेदारो द्वारा क्रूरतापूर्ण व्यवहार इत्यादि में आश्चर्यजनक रूप में वृद्वि हो रही है। सामान्यतया महिलाएं निम्न प्रकार के संघर्षो का शिकार होती है -

1. बलात्कार
2. दहेज मृत्यु

3. मारपीट

4. क्रूरतापूर्ण व्यवहार

5. शारीरिक शोषण

6.पारिवारिक संघर्ष

1. बलात्कार:- बलात्कार से तात्पर्य किसी स्त्री की सहमति के बिना उसके साथ जबरन या डराकर धमकाकर या नशे में धोखे से संभोग करना है। बलात्कार की शिकार महिला न केवल शारीरिक हिंसा की शिकार होती है अपितु मानसिक संघर्ष एवं हिंसा का भी शिकार होती है।

2. दहेज मृत्यु :- दहेज मृत्यु से तात्पर्य किसी महिला की उस मृत्यु से है जिसका मूल कारण दहेज से सम्बन्धित है। अर्थात् दहेज लाने के लिए विवश करने पर या दहेज न देने पर यदि किसी औरत की हत्या कर दी जाए या ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न कर दी जाए जिससे वह औरत आत्माहत्या करने के लिए मजबूर हो जाए तो वह दहेज मृत्यु कहलाती है।

3. मारपीट:- प्राय: पुरूषों द्वारा पत्नी से मारपीट करना। इससे स्थिति इतनी बदतर हो जाती है कि महिलाएं आत्महत्या तक करने के लिए विवश हो जाती है। इसके अन्तर्गत अपराधिक संघर्ष छेड़छाड़, मारपीट, क्रूरता पूर्ण व्यवहार तथा शारीरिक शोषण आते हैं।

4. पारिवारिक संघर्ष :- पारिवारिक संघर्ष से तात्पर्य उस अनैतिक अमानवीय गैरकानूनी एवं अवांछित कार्य से है जो किसी परिवार के सदस्य या सदस्यों द्वारा किसी एक सदस्य के विरोध में प्रयोग किया जाता है पारिवारिक संघर्ष के अन्तर्गत परिवार में महिलाओं के विरूद्ध मारपीट करना, भूखा रखना, अपशब्दों का प्रयोग करना आदि शामिल है।

महिलाओ के संरक्षण में पुलिस की भूमिका :-महिलाओं की सुरक्षा सम्मान एवं अधिकारों की रक्षा के लिए हर संभव प्रयत्न करना चाहिए। तथा घरेलु संघर्षो में निम्न प्रकार से अपनी भूमिका निभानी चाहिए:-

1. महिलाओं से संबंधित कानूनों को सख्ती से तथा सही ढ़ग से लागू करने का प्रयास करना चाहिए।
2.' महिला पुलिसकर्मियों को पर्याप्त संख्या में तैनात किया जाए तथा महिलाओं के लिए पृथक् पुलिस थानों की स्थापना की जाए।
3. पुलिसकर्मियों को महिलाओं से संबंधित कानूनों की पूर्ण जानकारी एवं प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। ताकि महिलाओं को सम्मानजनक स्थान दिलाया जा सके।
4. महिलाओं के विरूद्ध किए जाने वाले अपराधों का अन्वेषण सही ढंग से करने के साथ- साथ, न्यायालय में प्रस्तुत करने के बाद सही ढंग से पैरवी करे।
5. पुलिस थानों का पर्यावरण इस प्रकार से तैयार किया जाए कि प्रत्येक महिला सूचना दर्ज कराने में कोई कठिनाई अनुभव न करे। पुलिस कर्मियो को चाहिए कि वे महिलाओं के साथ सम्मानपूर्वक बात करे।

6. जब कोई महिला घरेलु हिंसा या संघर्ष का शिकार होती है तब पुलिसकर्मी को मानसिक रूप से महिला को सशक्त बनाना चाहिए तथा उसके साथ सभ्यता एवं सही ढंग से बातचीत करनी चाहिए।
7. पुलिस कर्मियों को महिलाओं की सुरक्षा एवं सम्मान का सदैव ध्यान रखना चाहिए तथा पूर्ण निष्पक्षता एवं मर्यादा के साथ उदार दृष्टिकोण अपनाते हुए उनके प्रति समानता का भाव रखना चाहिए।

3.7.2 जातिगत संघर्ष में पुलिस की भूमिका :-

जातिवाद एक संकुचित भावना है। जिसके वशीभूत होकर व्यक्ति समाज और राष्ट्र को विशेष महत्व नहीं देकर अपने जाति हितो को सर्वोपरि मानता है और अपनी जाति के स्वार्थो की दृष्टि से सोचता है। जातिवाद ने जातियों को आन्तरिक दृष्टि से शक्तिशाली बनाने में योग दिया है। वर्तमान में जाति के नाम पर शिक्षण संस्थाएं, धर्मशालाएं औघोगिक संस्थान, औषधालय, मेंदिर एवं अन्य संगठन पाये जाते है।

जातिवाद या जाति भक्ति एक जाति के सदस्यों की वह संकुचित भावना है जो समाज या राष्ट्र के सामान्य हितों का ध्यान नहीं रखते हुए अपनी जाति के अन्य सदस्यों के हितों को बढ़ावा देने, उनकी सामाजिक स्थिति को उन्नत करने और उन्हें आगे बढ़ाने के अवसर प्रदान करने के लिए प्रेरित करती है।

जातिवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए डॉ. के. एन. शर्मा ने लिखा है '' जातिवाद या जाति भक्ति एक ही जाति के व्यक्तियों की वह भावना है जो देश या समाज के सामन्य हितों का ख्याल न रखते हुए केवल अपनी जाति के सदस्यों के उत्थान जातीय एकता और जाति की सामाजिक प्रस्थिति को दृढ़ करने के लिए प्रेरित करती है।

जातिवाद की भावना ने सामाजिक तनाव एवं जातीय संघर्षो को भी जन्म दिया है। जब एक जाति अपने को श्रेष्ठ समझ कर अपने सदस्यों का ही पक्ष लेती है। और अन्य जातियों से घृणा करती है तो जातियों में परस्पर टकराव पैदा होता है जातीय दंगें, मार-पीट, तोड़ फोड़ एवं आगजनी की घटनाएं घटती है। जाटों एवं राजपूतों के बीच जातिवाद के आधार पर अनेक संघर्ष हुए है। जातिवाद के फलस्वरूप कई बार साम्प्रदायिक संघर्ष अत्यन्त गंभीर रूप ले लेते है इनके लिए पुलिस को सुरक्षात्मक एवं कानूनी दोनों प्रकार के उपाय अपनाना चाहिए।

1. सुरक्षात्मक उपायो में ऐसे उपाय जो प्रशासन एवं कानून व्यवस्था लागू करने वाली संस्थाएं जातिगत संघर्ष भड़कने की संभावना होने पर पूर्व में ही रोकथाम के लिए लागू करें।
2. जातिवाद संघर्ष को रोकने के लिए पूर्व में ही पुलिस को गुप्त सूचनाएं एकत्र कर लेनी चाहिए। सूचनाओं से प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण करके उपयुक्त कार्यवाही करनी चाहिए ताकि प्रारंभिक चरण में ही इन पर काबू रखा जा सके और अनावश्यक रूप से पुलिस बल की आवश्यकता भी न पड़े।
3. जातिगत संघर्षो में पुलिस की भूमिका अलग अलग रूप से सामने आती है जैसे विशेष सैल का गठन, उपयुक्त अधिकारों की प्राप्ति में सहायता प्रदान करना, सामूहिक जुर्माना करना तथा ऐसी रणनीति बनाना जो इस संघर्षो को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके।

4. जब भी जातिगत संघर्षो के होने की संभावना हो। समाज विरोधी तत्वों जैसे गुंड़े, शरारती तत्वों तथा असामाजिक तत्वों को कुछ समय पूर्व ही गिरफ्तार कर लेना चाहिए। ताकि संघर्ष के प्रारंभिक चरण में ही रोकथाम हो सके।
5. चुनावों के दौरान जातिगत राजनीति जो कि पंचायत से लेकर संसद तक चलती है तथा जाति के आधार पर उम्मीदवार चुनाव लड़ते है तथा मत मांगते है जिससे पक्षपात एवं सहानुभूति का माहौल बनता है। तनाव और आपसी संघर्ष प्रारंभ हो जाता है। पुलिस चुनाव के समय चौकन्ना रहकर तथा जातिगत विभेद के इलाकों को चिन्हित कर जातिगत राजनीति के फलस्वरूप होने वाले संघर्षो पर रोक लगा सकती है।
6. जातिगत संघर्षो में भरे इलाको में पुलिस को थाने एवं स्थायी पुलिस चौकियों की स्थापना करनी चाहिए। इस प्रकार के संघर्षो का मुख्य कारण अंधविश्वास एवं कट्टरता होती है अत: पुलिस को क्षेत्र विशेष के कुछ प्रतिष्ठित लोगों को अपने साथ लेकर दोनों पक्षों के लोगो को समझाने का काम करना चाहिए।

3.7.3 साम्प्रदायिक संघर्षो में पुलिस की भूमिका :-

साम्प्रदायिकता राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधा है। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच सामेंजस्य का अभाव ही साम्प्रदायिकता को जन्म देता है। कई सांस्कृतिक एवं धार्मिक समूहों का तो भारतीय समाज में सामेंजस्य हो गया। कई उसमें विलीन हो गये किन्तु कइयों नें अपना पृथक् अस्तित्व बनाये रखा और समय समय पर धार्मिक एवं सांस्कृतिक तनावो को जन्म दिया। साम्प्रदायिकता के साथ ही क्षेत्रवाद एवं भाषावाद की समस्याएं भी है। और ये तीनो समस्याएं एक दूसरे से सम्बन्धित है।

साम्प्रदायिक संघर्ष सर्वाधिक, घातक, विनाशकारी एवं दुखदायी होता है। क्योंकि इससे न केवल विभिन्न धर्मो, जातियो, एवं समुदाय के लोगो में तनाव रहता है बल्कि आपसी भाईचारे और राष्ट्रीय एकता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है इस प्रकार के संघर्षो को रोकना तथा कानून व्यवस्था कायम रखना पुलिस का प्रथम कर्तव्य है। संघर्षो को रोकने के लिए पुलिस को निम्न उपायों का सहारा लेना चाहिए।

1. दंगो से पूर्व सुरक्षात्मक उपाय अपनाने से दंगो की संभावना को कम किया जा सकता है। पुलिस शांति समितियों का गठन कर शांति व्यवस्था लागू करवा सकती है। तथा संवेदनशील क्षेत्रों का चार्ट बनाकर समुदायों के त्यौहारों पर निगरानी रखी जा सकती है।
2. घटना, घटना स्थल , अपराधी और पुलिस एक दूसरे के पर्याय बनकर रहे गये है।, पुलिस को घटना के बारे में अधिकतर सूचनाएं पीड़ित व्यक्तियों द्वारा ही दी जाती है। इसलिए पुलिस का पीड़ित व्यक्ति से सम्पर्क करना अत्यन्त उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है पुलिस को पीड़ित व्यक्ति की भावनाओं एवं प्रतिक्रियाओं को शांत करने का प्रयास करना चाहिए। उसे सरकार द्वारा निर्धारित क्षतिपूर्ति दिलवाने में सहयोग करना चाहिए।
3. साम्प्रदायिक संघर्षो में पुलिस को जान व माल की सुरक्षा करनी चाहिए इन संघर्षो में असमाजिक तत्वों की सक्रियता बढ़ जाती है। तथा ये तत्व लूटपाट, चोरी, बलात्कार आदि में

सक्रिय हो जाते है पुलिस इस प्रकार के तत्वों को नियन्त्रित कर इन संघर्षो को प्रभावी तरीको से रोक सकती है।

4. साम्प्रदायिक संघर्षो के दौरान पुलिस को खाने पीने की वस्तुओं का इतंजाम करवाना चाहिए। पुलिस की देखरेख में चलती फिरती दुकानों में निर्धारित मूल्यों पर ही सामान की बिक्री हो इस पर निगरानी रखनी चाहिए।
5. इन संघर्षो में पुलिस को यह कोशिश करना चाहिए कि समझाइश, निगरानी एवं गश्त के द्वारा हालतों पर काबू पाया जा सके।
6. ऐसे सभी कारण जो साम्प्रदायिक संघर्षो को बढ़ा सकते है। जैसे अखबारों की उत्तेजक खबरें, भड़काऊ भाषण, उत्तेजक विडियो आदि पर रोक लगानी चाहिए।

3.7.4 छात्र एवं युवा वर्ग के संघर्ष में पुलिस की भूमिका:-

छात्र एवं युवा वर्ग की समस्याएं अत्यधिक विस्तृत होती है यह एक संगठित वर्ग होता है तथा अपनी सभी समस्याओं के प्रति सचेत रहता है। यद्यपि विधार्थियो का संघर्ष शैक्षिक संस्थाओं के अधिकारियों के साथ प्रवेश में घपलेबाजी, सीटों का आरक्षण , परीक्षा शुल्क में वृद्धि, छात्र संघ चुनाव ,अनुशासनात्मक कार्यवाही आदि के कारण होता है परंतु आर्थिक अस्थिरता तथा बेरोजगारी के कारण उत्पन्न रोष की भावना भी उन्हे हिंसात्मक कार्यवाही करने के लिए उकसाती है। चूंकि युवा अधीर होते है। उनकी कमजोरी का लाभ राजनीतक या असामाजिक तत्व उठा लेते है और आसानी से सरकार विरोधी संघर्ष में शामिल हो जाते है। कई बार स्थानीय एवं सामाजिक समस्याएं भी युवाओं के रोष का कारण होती है।

यद्यपि कई बार युवा वर्ग द्वारा किए गए कार्य विनाशकारी होते है लेकिन अपराधी वर्ग में शामिल न होने के कारण इन्हें अन्य लोगो का समर्थन प्राप्त होता है। कई बार राजनीतिक समर्थन भी इनके साथ होता है। इसलिए इन संघर्षो में पुलिस की अहम भूमिका होती है।

1. छात्र एवं युवाओं से निपटने समय पुलिस को सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि ये अपराधी नहीं है बल्कि आम आदमी है जो अपनी मांगों की पूर्ति करवाना चाहते है। इसलिए पुलिस का पहला कर्तव्य होता है कि वह शांति व्यवस्था बनाने की कोशिश करे।
2. यदि छात्र एवं युवा वर्ग प्रदर्शन कर रहे है तो पुलिस को उनसे दोस्ताना रवैया रखते हुए काम करना चाहिए क्योंकि युवा वर्ग अपनी मांगो को लेकर बहुत गंभीर एवं अधीर होते है यदि उन्हें ऐसा लगता है कि पुलिस उनकी भावनाओं से खिलवाड़ कर रही है तो वे हिंसक हो जाते है इसलिए पुलिस को छात्रो को मनोवैज्ञानिक रूप से समझकर अच्छा व्यवहार करना चाहिए।
3. छात्रो को यह विश्वास दिलाया जा सकता है कि पुलिस उनकी रक्षा के लिए है उनसे दुर्व्यवहार करने के लिए नहीं। इससे उन पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ेगा और वे हिसांत्मक कार्यवाही नही करेंगें।
4. पुलिस को चाहिए कि यदि छात्र किसी विश्वविद्यालय से संबंधितहै तो उस संस्थान के प्रमुख या अन्य जिसके छात्र नेताओं से अच्छे संबंधहो आपस में बातचीत करवाऐं।

5. यदि विद्यार्थी आक्रमक रूप धारण कर लेते है, पथराव करते है, आगजनी करते है, सरकारी एवं निजी संपत्ति को नुकसान पहुंचाते है तो ऐसी स्थिति में उनके साथ सख्त कार्यवाही कर उचित बल प्रयोग भी करना चाहिए।

3.8 सारांश

इस प्रकार प्रत्येक समाज में पुलिस की आवश्यकता होती है। पुलिस का कार्य समाज की सुरक्षा और भलाई करना है प्रत्येक देश में पुलिस व्यवस्था समाज के सिद्वान्तो के अनुरूप होती है। पुलिस कार्य पालिका के प्रमुख अंगों में से एक है। अत: संवैधानिक कानूनो को उचित ढंग से लागू करना उसका कर्तव्य है। तथा प्रत्येक समाज पुलिस के बिना स्वयं को असुरक्षित महसूस करता है समाज में होने वाले विभिन्न प्रकार के संघर्षो में पुलिस की अहम् भूमिका होती है। वर्तमान पुलिस के जनता से संबंध अच्छे नहीं है। इस बात को समझकर अब पुलिस एवं जनता के संबंधो में सद्भाव लाने की कोशिश की जा रही है ताकि समाज में आतंरिक शांति बनी रहे तथा समाज में होने वाली असमाजिक घटनाओ तथा संघर्षो का मुकाबला अच्छी तरह कर सामाजिक विकास को बढ़ाया जा सके।

3.9 अभ्यास प्रश्न

1 संघर्ष किसे कहते है तथा विभिन्न संघर्षो में पुलिस की भूमिका को समझाइये

2. संघर्ष के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए घरेलु संघर्षो में पुलिस के व्यवहार को समझाइए।

3.10 संदर्भ ग्रन्थ

1 भारत में समाज- एम.एल गुप्ता , डॉ पी.डी. शर्मा

2. अपराध शास्त्र एवं आपराधिक प्रशासन- एस.एस.चौहान

3. विवेचनात्मक अपराध शास्त्र- राम आहूजा , मुकेश आहूजा

इकाई - 4

सी डी आर (अपराध जांच रिपोर्ट)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 परिचय

4.2 पता लगाए गए अपराध

4.2.1 स्वीकृत अनुसंधान

4.2.2 अस्वीकृत अनुसंधान

4.3 क्राइम डाटा माइनिंग

4.3.1 जुर्म के प्रकार और सुरक्षा संबंध

4.3.2 क्राइम डाटा माइनिंग पद्धति एवं तकनीक

4.3.3 क्राइम रिपोर्टिंग सिस्टम

4.3.4 डाटा माइनिंग और क्राइम पैटर्न्स

4.4 क्राइम और अपराध और अनुसंधान रिकॉर्डिंग नीति

4.5 सामाजिक तथा आर्थिक प्रभाव

4.6 सारांश

4.7 अभ्यास प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, आप बता सकते है -

- अपराध के बारे में
- अपराध डाटा खनन के बारे में
- अपराध और अनुसंधान रिकॉर्डिंग नीति के बारे में
- अपराध के सामाजिक तथा आर्थिक प्रभाव के बारे

4.1 परिचय

अपराध के निर्धारकों का विश्लेषण सार्वजनिक बहस के मामले में सबसे आगे हमेशा से रहा है। कुछ टिप्पणीकार अपराध से लड़ने की प्रभावी रणनीति का व्यापक रूप से नीति हलकों में बहस कर हल सोच रहे है और लोकप्रिय प्रेस, कानून प्रवर्तन और सजा की भूमिका पर प्रकाश डाल, अन्य सामाजिक - आर्थिक कारकों की भूमिका पर बल दे रहे है। अन्य की उपेक्षा करते हुए अक्सर दो विचारों में से एक पर

जोर दिया गया है। जो अपराध के तथाकथित मूल कारण को देखते है (क्रिमिनोलॉजिस्ट) बीच प्रमुख करते है कि सामाजिक परिस्थिति अपराध के वयवहार को जन्म देते है और पुलिस को एक प्रभावी उपकरण के रूप में देखने से ख़ारिज करते है और जब दूसरों ने कठोर दंड के लिए मजबूर किया और अपराध के लिए सामाजिक और आर्थिक परिवेश की उपेक्षा की प्रतिष्ठित, देशों संगठनों और व्यक्तियों के लिए सबसे गंभीर और खतरनाक सुरक्षा खतरों के के रूप में है शारीरिक हिंसा, हिंसा के इस तरह के कृत्य हमें खेद के साथ पिछले कुछ वर्षो से देखने पड़ रहे है। नतीजन, शास्त्रीय पुलिस काम के अलावा, ऑनलाइन दायरे में प्रयासों के कारण उन व्यक्तियों और संगठनों को खोजने पर दृढ़ता से ध्यान केंद्रित किया गया है जो अपराध के हिंसा के प्रति उकसाकर इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से उन हिंसक कार्यो को करने कि वयवस्था बैठाते है। उसी समय यह भी स्पष्ट हो चला है की खतरों की संरचना और उन खतरों से निपटने वाले संगठनों और व्यक्तियों की की संरचना में भी बदलाव आने लगा है।

4.2 पता लगाये गए अपराध

पता लग जाने वाले अपराध वह होते है जो कि पुलिस द्वारा बता कर दिए गए है। हार वह अपराध जो की पुलिस को पता है या उन्हें लगता है की उन्हें पता है परिचयन कि सूची में नहीं आ सकता। कुछ अपराध परिचयन की श्रेणी में आ जाते है जिस में की मुजरिम पकड़ा गया हो लेकिन केस सुलझा नहीं लिया गया हो . किसी भी जुर्म को परिचयेन की परिभाषा में तभी लाया जा सकता है जब उस में पर्याप्त सबूत हो और निम्न सभी शर्ते पूरी होती हो-

- एक नज़र में आने वाला अपराध हुआ हो और दर्ज भी किया गया हो .
- एक संधिग्ध को पहचान लिया गया हो और सम्बंधित जूर्म का दोषी ठहराया गया हो उसे इस कृत्य कि सभी निहितार्त बतये गए हो और,
- निम्न में से कोई भी एक परिचयन माध्यम लागू हो -

पुलिस इनमें से कोई भी एक माध्यम जुर्म को परिचयन की श्रेणी में लेन के लिए बहुत है। यह प्रमुख दो श्रेणियों में आते है :

4.2.1. अनुमोदित परिचयन : इसमें वह अपराध आते है जिनमे अपराधी को औपचारिक स्वीकृति दी जाती है। सभी अनुमोदित परिचयन का यही परिणाम हो ऐसा जरूरी नहीं है –

सम्मन के लिए दोषी –एक अपराध को परिचयात माना जाता है यदि व्यक्ति को किसी अपराध के लिए चार्ज या सम्मन किया गया हो .

सावधान, प्रताड़ित, या उनकी चेतावनी दी गई हो :-

एक अपराध का परिचयन होना पाया जाता है जब अपराधी को पुलिस द्वारा सावधान किया गया हो, या क्राइम एक्ट 1988 के अन्तर्गत प्रताड़ित अथवा आखरी चेतावनी दी गई हो .

किसी अपराध की क्षतिपुर्ति –अगर मुजरिम अपने द्वारा किये गए अपराध को मान लेता है और उसको न्यालय द्वारा क्षतिपूर्ति के रूप में देखे जाने का अनुरोध करता है तथा अपराधी को उस अपराध के लिए साबित करने वाले साक्ष्य हो।

हंगामा करने के लिए प्राप्त कोई दण्ड पत्र:- एक अपराध को परिचयात माना जाता है यदि पुलिस के द्वारा हंगामा करने के लिए कोई दण्ड पत्र दिया गया हो . ऐसा नोटिस पुलिस को किसी प्रक्रिया से सम्बंधित ही जारी करना होता है। एक परिचयन तभी गिना जाता है जब वह अविवादित हो,याविवादित या बंद पड़े हुए केस में ; सक्षम निर्णयक केस का निरक्षण कर पूर्वनिर्धारित निर्णय के साथ रहता है।

4.2.2 अस्वीकृत परिचयन :-

अस्वीकृत परिचयन वह होते है जिनमे या तो जुर्म को साफ किया हुआ मान लिया जाता है या फिर उस के खिलाफ कोई और कार्यवाही नहीं की गई हो या विषय लोकल समुदाय द्वारा हल कर लिया गया हो

अस्वीकृत परिचयन-बिना किसी अग्रिम कार्यवाही के :-

अस्वीकृत परिचयन के दावो को पास करने के लिए अनेक कारण माने गए है जहाँ अपराधी के खिलाफ अग्रिम कोई कार्यवाही नहीं की गई है जहाँ –

- अपराधी या तो बहुत बीमार था या मानसिक तोर से विक्षुब्ध था कि कोई कार्यवाही हो सके
- परिवादी या की मुख्य गवाह की मृत्यु
- पीड़ित ने मन कर दिया या वो प्रमाण देने में नाकाम रहा
- पुलिस ने निश्चय कर लिया की पब्लिक के हित को ध्यान रखते हुए आगे बढना ठीक नहीं है
- पैरवी शुरू होने की छ:महीने की समय सीमा समाप्त हो चुकी हो

क्राइम डाटा माइनिंग :- डाटा माइनिंग क्राइम परिचयन समस्या में आदर्श साबित हुआ है। क्राइम एक समुदायिक उपद्रव है और समुदाय को इसकी कीमत अनेक तरीको से चुकानी पड़ती है। कोई भी शोध जो कि क्राइम को तेज गति से सुलझाने में सहायक हो वह खुद ही मूल्यवान साबित होगा. क्राइम डाटा माइनिंग पद्धति जुर्म के रूप को समझने और जल्द हल करने में मददगार साबित होगी. एतिहासिक दृष्टि से देखे तो जुर्म का समाधान क्रिमिनल जस्टिस और कानून को अमल कराने वाले विशेषज्ञों की प्राथमिकता रही है। जुर्म को ट्रैक करने के लिए कंप्यूटर सिस्टम के व्यापक प्रयोग से कंप्यूटर डाटा विक्षेशक कानून अमल करवाने वाले अधिकारीयों और ख़ुफ़िया पुलिस को जुर्म को जल्द हल करने के लिए काफी मददगार सिद्ध हुए है। क्राइम डाटा माइनिंग की समीक्षा करने के लिए दो आयामो में देखना अति आवश्यक है :-

4.3.1 जुर्म के प्रकार और सुरक्षा संबंध:-

क्राइम को "एक अधिनियम या एक अधिनियम का कमीशन जो की वर्जित है , या कर्त्तव्य में छुटे हो जो कि किसी पब्लिक कानून के द्वारा अपराधी को उस कानून के द्वारा सजा के लिए बाध्य करती है"। एक जुर्म का कृत्य अपने में बहुत सारी गतिविधियों को सम्लित कर लेता है उसका क्षेत्र एक मामूली नागरिक

कर्तव्य के उलंघन से ले कर अंतर्राष्ट्रीय सुनियोजित जुर्म तक फैल जाता है। टेबल 1 अनेक प्रकार के क्राइम को उनके पब्लिक प्रभाव के बढते क्रम में संयोजित करके दर्शाता है (दोनों स्थानीय एवं राष्ट्रीय सुरक्षा और कानून लागू करने वाली संस्थाए एक जैसी ही चुनोतियों का सामना करती है)-

टेबल – अलग स्तरों पर क्राइम के प्रकार

क्र.सं.	**प्रकार**	**स्थानीय कानून प्रवर्तन स्तर के**	**राष्ट्रीय सुरक्षा स्तर**
1.	ड्राइविंग यातायात उल्लंघन,	घातक व्यक्तिगत चोट / संपत्ति के नुकसान यातायात दुर्घटना, सड़क क्रोध	
2	सेक्स अपराध	यौन अपराधों यौन हमले, बच्चे को छेड़छाड़	संगठित वेश्यावृत्ति
3	चोरी	डकैती,चोरी, मोटर वाहन चोरी,	राष्ट्रीय रहस्य या हथियार जानकारी की चोरी, संपत्ति की चोरी
4	धोखाधड़ी	जालसाजी और जालसाजी धोखाधड़ी, पहचान धोखे	अंतर्राष्ट्रीय काले धन को वैध, पहचान धोखाधड़ी, अंतरराष्ट्रीय वित्तीय धोखाधड़ी.
5	आगजनी	भवनों, अपार्टमेंट पर आगजनी,	
6	गिरोह / ड्रग अपराध	मादक पदार्थो के अपराध (बिक्री या अधिकार)	अंतर्राष्ट्रीय नशीले पदार्थों की तस्करी
7	हिंसक अपराध	आपराधिक हत्या, सशस्त्र डकैती, भड़काऊ हमला	आतंकवाद (बायो टेररिज्म , बम विस्फोट, अपहरण आदि)
8	साइबर अपराध	इंटरनेट धोखाधड़ी, अवैध व्यापार, नेटवर्क घुसपैठ / हैकिंग, वायरस के प्रसार, नफरत अपराधों, साइबर चोरी, साइबर अश्लील साहित्य, गोपनीय जानकारी की साइबर आतंकवाद की चोरी.	

4.3.2 क्राइम डाटा माइनिंग पद्धति एवं तकनीक:-

डाटा माइनिंग की संरचना चित्ताकर्षक पहचान के तौर पर परिभाषित किया गया है। जहाँ पर संरचना पैटर्न, सांख्यिकीय या भविष्यसूचक मॉडल को नियुक्त कर उनका संबंध डाटा के अलग अलग भागों से करता है। निम्न क्राइम डाटा माइनिंग के विभिन तकनीकों को दर्शाता है :

इकाई का निष्कर्षण: पद्धति का प्रयोग स्वचालित रूप से व्यक्ति, पता , गाड़ी , मादक पदार्थ, और व्यक्तिगत गुणों को पुलिस रिपोर्ट में से निष्कर्षित करने के लिए किया जाता है।

गुच्छ तकनीक:- जैसे कि 'कल्पित स्थान' का प्रयोग संचलित ढंग से विभिन्न विषयों (जैसे कि व्यक्ति,संस्था, गाड़ियों) को साझा करने के काम आती है।

विचलन का परिचयन :- इस का प्रयोग फर्जी परिचयन, नेटवर्क अनधिकार परिचयन और अन्य क्राइम विश्लेषण जिसमें असमान्य गतिविधियां होती है के लिए किया जाता है।

वर्गीकरण :- ईमेल स्पैमिंग का पता लगाने और अवांछित ईमेल भेजने वाले लेखक का परिचयन किये जाने के लिए किया जाता है।

स्ट्रिंग तुलनित्र: - स्ट्रिंग तुलनित्र का आपराधिक रिकॉर्ड में भ्रामक जानकारी का पता लगाने के लिए परिचयन किया जाता है।

सोशल नेटवर्क विश्लेषण :- का प्रयोग क्रिमिनल भूमिका का विश्लेषण एवं क्रिमिनल नेटवर्क में इकाइयों के सम्बन्ध पता लगाने के लिए कि या जाता है।

4.3.3 अपराध रिपोर्टिंग प्रणाली: -

अपराध के लिए डॉटा अक्सर एक दिलचस्प दुविधा प्रस्तुत करता है। कुछ डॉटा को गोपनीय रखा जाता है, कुछ सार्वजनिक जानकारी हो जाती है। नशीले पदार्थों या किशोर मामलों से संबंधित अपराधों के बारे में डॉटा आमतौर पर अधिक प्रतिबंधित है। इसी तरह, यौन अपराधियों के बारे में जानकारी सार्वजनिक क्षेत्र में दूसरों को सचेत करने के लिए पब्लिक के बीच खुले तौर पर रखी जाती है , लेकिन पीड़ित की पहचान अक्सर प्रस्तुत कर दी जाती है। इस प्रकार एक डॉटा माइनर के रूप में, विश्लेषक को इन सभी पब्लिक बनाम प्राइवेट डॉटा कि डाटा माइनिंग मॉडल की प्रक्रिया इन कानूनी सीमाओं का उल्लंघन नहीं करे।

पुलिस विभाग पारंपरिक कागज आधारित अपराध की रिपोर्ट के बदले, अपराध की रिपोर्टिंग के लिए इलेक्ट्रॉनिक प्रणालियों का उपयोग कर रही है। ये अपराध की रिपोर्ट अर्थात् जानकारी निम्न श्रेणियों में वर्गित होती है - अपराध के प्रकार, तिथि / समय, स्थान आदि सब जानकारी संदिग्ध (ज्ञात या अज्ञात),पीड़ित और गवाह।. इसके अतिरिक्त, कथा या विवरण के रूप में आमतौर पर अपराध और काम करने का ढंग (एमओ) होता है जो कि अमूनन पाठ्य रूप में होता है। पुलिस अधिकारियों या जासूस मुक्त पाठ को अपने ज्यादातर टिप्पणियों को रिकॉर्ड करने के लिए काम में लेते है। खासकर के उन टिप्पणियों को जो कि चेकबॉक्स प्रकार के पूर्व निधारित सवालों में सम्मिलित नहीं किये जा सकते। हलाकि पहली दोनों प्रकार की जानकारियाँ को आमतोर पर कंप्यूटर डॉटाबेस में अंकीय ,अक्षर या टेबल की डॉटा

फील्ड के रूप में संग्रहित किया जा सकता है पर आखिरी जानकारी अक्सर मुक्त पाठ के रूप में ही संग्रहित की जाती है।

डॉटा माइनिंग अपराध के आंकड़ों में चुनौती अक्सर मुक्त पाठ क्षेत्र से ही आती है। मुक्त पाठ क्षेत्र अखबार के स्तंभ लेखक, एक महान कहानी हो सकती है , लेकिन उसे हमेशा एक डॉटा माइनिंग विशेषता में परिवर्तित करना आसान नहीं होता ।

4.3.4 डाटा माइनिंग और क्राइम पैटर्न: -

डॉटा माइनिंग शब्दावली क्लस्टर एक समान डाटा बिंदुओं का समूह है –एक संभव क्राइम पैटर्न: इस प्रकार का उचित समूह या क्लस्टर का एक सबसेट अपराध पैटर्न से एक से एक अनुकूल होगा।

डाटा माइनिंग में इस प्रकार क्लस्टरिंग एल्गोरिदम डॉटा के उन समूह के रिकॉर्ड के ग्रुप को पहचानने के समान है जो कि आपस में तो एक जैसे है किन्तु बाकि सारे डॉटा से भिन्न है। इन में से कुछ क्लस्टर क्राइम कि उन गतिविधियों को पहचानने में सहायक जो एक या समान समूह के संदिध द्वारा किया जाता है। यह क्लस्टर तद्पश्चात् जासूसों को दिया जाता है ताकि वह अपनी अपनी डोमेन विशेषता से प्रशिक्षण अभ्यास कर सके . क्राइम पैटर्न का स्वाचलित परिचयन पहले तो जासूसों को क्राइम गतिविधियों पर केन्द्रित होने का अवसर देता है, दूसरे, संपूर्ण क्राइम गतिविधि को या कुछ केस में यदि घटनाओं के समूह को एक गतिविधि का दर्जा मिलता है तो, पूरा साक्षय जुर्म की थोड़ी –थोडी सूचना के आधार पर बनाया जा सकता है।

आजकल यह सर्वाधिक हाथ से ही किया जाता है स्प्रेडशीट की मदद से रपोर्ट जो कि जासूस अमूनन कंप्यूटर डॉटा विशेषज्ञ से या अपने क्राइम लोग से ले लेते है। इस के साथ ही क्राइम का व्यवहार समय के साथ बदलता है , जैसे कि इन्टरनेट आधारित जुर्म या जुर्म जिनमें , सेल फ़ोन का इस्तेमाल होता है कुछ समय पहले तक असामान्य नहीं थे . इस प्रकार के नवीन एवं अज्ञात क्राइम पैटर्न के परिचयन के लिए भविष्य में क्लस्टर तकनीक ज्यादा बेहतर काम करेगी

आज अपराध पैटर्न विश्लेषणक की कुछ सीमाओं में से एक है कि वह जासूसों की केवल मदद कर सकते है उन्हें प्रतिस्थापित नहीं कर सकते । इसके अलावा डाटा माइनिंग उस इनपुट डॉटा की गुणवत्ता के प्रति संवेदनशील होता है जिस में अशुद्ध जानकारी गायब हो, या डॉटा प्रविष्टि त्रुटिपूर्ण हो आदि । इसी प्रकार डाटा माइनिंग विशेषताओं के साथ वास्तविक डॉटा मानचित्रण करना आसान नहीं होता और अक्सर इस के लिए डॉटा विश्लेषक या कुशल डॉटा माइनर चाहिए होता है।

4.4 अपराध और अनुसंधान रिकॉर्डिंग नीति

❖ **नियम और नीति के दायरे –**

लिंकनशायर पुलिस बल अपराध रिकॉर्डिंग और क्राइम की परिचयन के एकदम सही और होम ऑफिस काउंटिंग रूल्स फॉर रिकार्डेड क्राइम (HOCR) जिसमें नेशनल क्राइम रिकॉर्डिंग स्टैण्डर्ड को भी शामिल होता है, के अनुसार आकड़े दर्ज कराने के प्रति प्रतिबद्ध है।

यह सुनिश्चित करता है कि सूचनीय क्राइम जानकारी जो कि लिंकनशायर पुलिस बल के द्वारा सांख्यिकीय विश्लेषण और प्रबंधन सूचना के किये प्रस्तुत या काम में ली गई है वह पूर्ण रूप से इस कार्य के लिए उपयुक्त है।

- लिंकनशायर में क्राइम की रिकॉर्डिंग और परिचय्निता दर्ज डाटा गृह मंत्रालय के काउंटिंग रूल्स फॉर रिकार्डेड क्राइम के नियमो से मेल खाने चाहिए।
- डिप्टी मुख्य कांस्टेबल रिकार्डेड क्राइम की गुणवक्ता एवं फ़ोर्स के अन्दर के परिचयित क्राइम कि रिकॉर्डिंग के लिए उत्तरदायी होंगे
- फ़ोर्स HOCR NCRS के अनुसार चल रही है या नहीं ये जाचनें के लिए सभी तरह के बाहरी निरक्षण एवं मुल्यांकन के लिए खुली होगी और आश्वस्त करेगी वह ऐसे सभी निर्क्षणों में पूर्ण रूप से सहयोग करेगी.

❖ **क़ानूनी आधार -**

मुलभुत विधान पुलिस एक्ट, 1996 और क्राइम एंड डिसऑर्डर एक्ट 1998 के अन्तर्गत पुलिस और अन्य एजेंसियों के ऊपर स्तातुअरी ड्यूटी लगाती है अपराध और अव्यवस्था को रोकने के लिए अपराध और अवयास्था की सूचना रिकॉर्ड करना इस क़ानूनी ड्यूटी का एक अनिवार्य हिस्सा है।

❖ **डॉटा संरक्षण अधिनियम, 1988: -** यह निति इस एक्ट के अनुसार चलने में अधिकार देती है। यह स्वीकार करती है कि फ़ोर्स द्वारा रखी गई कोई भी जानकारी पर्याप्त प्रासंगिक, अत्यधिक नहीं, सटीक और अप-टू –डेट होगी

व्यतिगत जानकारी की रिकॉर्डिंग अपराध के बचाव और परिचयन के लिए यदि की गई हो तो वह क़ानूनी है।

❖ **मानव अधिकार अधिनियम, 1998**

इस नीति में ऊपर के अधिनियम के निम्नलिखित अनुच्छेदों को संलग्न करने की क्षमता है-

• अनुच्छेद 8 - निजता का अधिकार

जहाँ पर नामित व्यक्तियों की जानकारी रखी जाती है , फ़ोर्स यह पहचानती है कि उसे यह दिखाना पड़ेगा की उसके द्वारा किये गए कृत्य कानून के हिसाब से थे और आवश्यक एवं उचित अनुपात में थे।

- राष्ट्रीय सुरक्षा के हितों में ,
- सार्वजनिक सुरक्षा या देश की आर्थिक भलाई के हित में,
- विकार या अपराध की रोकथाम के लिए,
- स्वास्थ्य और नैतिकता की सुरक्षा के लिए,
- दूसरों के अन्य अधिकारों और स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिए।

❖ **विविधता: -**

एक घटना या अपराध की रिपोर्ट करने की क्षमता एक व्यक्ति की क्षमता या पुलिस से जानकारी संवाद करने की इच्छा और जानकारी प्राप्त करने और समझने की पुलिस की क्षमता से प्रभावित होती है। एक अपराध तभी ही रिकॉर्ड किया जा सकता है जब जानकारी को संवादित और समझी जाए , इसीलिए संभावित महत्वपूर्ण जोखिम क्षेत्रो को संबोधित करना सेवा प्रावधान की समानता सुनिश्चित करने के लिए अतिअवाशक है।

कर्मचारियों को दिए गए मार्गदर्शन और प्रशिक्षण, और नीति के प्रावधान यह सुनिश्चित करते है कि जोखिमों को पहचाना जाएगा और उनके प्रदर्शन का निरिक्षण किया जाएगा और असमानताओं को संबोधित करने के लिए उपाय किये जा रहे है।

❖ **परामर्श: -**

यह नीति मुख्य अधिकारी समूह, डिवीजनल कमांडर, सभी विभागीय और धारा प्रमुखों, स्टाफ संघों, पुलिस प्राधिकरण और इच्छुक पार्टियों के साथ पूर्ण परामर्श के अधीन कर दी गई है।यह नीति पूरी तरह से हर दो साल में समीक्षा की जाएगी। इससे पहले समीक्षा चुनौतियों से संकेत मिल सकता है या अक्षमताओं की पहचान की जा रही है। समीक्षा कानून और मानव अधिकार, समानता और विविधता के मुद्दों के साथ अनुपालन किया जाएगा

4.5 सामाजिक तथा आर्थिक प्रभाव

सामाजिक - आर्थिक चर एक रेखीय और द्विघात विनिर्देश दोनों में सभी अपराध प्रकार में महत्वपूर्ण हैं, लेकिन उनमें से कुछ एक counterlntultlve हस्ताक्षर देते है। उच्च बेरोजगारी चोरी और चोरी को बढ़ती है लेकिन डकैती और धोखाधड़ी को कम करती है।

एक स्थानीय आबादी में युवा लोगों का अनुपात और अपराध के बीच नकारात्मक एसोसिएशन गतिशील शक्ति संतुलन के विचार के साथ संगत है, एक आपराधिक रिकॉर्ड होने से युवा लोगों को खोने के लिए अधिक होता है जो कि उनके लिए भविष्य में रोजगार की संभावनाओं को कम करती है, यह भी मामला हो सकता है कि बेरोजगार युवाओं अपराध की ओर सामान्य तौर पर युवा लोगो से अधिक झुकाव रखते हो । इसके अलावा , यह भी हो सकता है कि अपराध कीतरफ झूकाव रखने वाले युवा वह हो जो जेल अवधि काट रहे हो लेकिन युवाओं की सामान्य आबादी अपराध की ओर इतना झुकाव नहीं रखती।

सामाजिक - आर्थिक चर भी अपराध की लागत और अपराध के लाभों से अपराध को काफी प्रभावित करते है। इसलिए, अपराध को प्रभावित करने में सामाजिक - आर्थिक कारकों बनाम कानून लागू करने के महत्व अपराध पर कैसे प्रभाव डालते है कि बहस काफी हद तक भ्रमक करने वाला हो सकता है। दोनों प्रकार के कारकों के महत्वपूर्ण गुणांक है इसलिए हमें ठोस सबूत मिलता है कि अपराध पर दोनों प्रभाव डालते है।

4.6 सारांश

अपराध के निर्धारकों का विश्लेषण सार्वजनिक बहस के मामले में सबसे आगे हमेशा से रहा है। कुछ टिप्पणीकार अपराध से लड़ने की प्रभावी रणनीति का व्यापक रूप से नीति हलकों में बहस कर हल सोच रहे है और लोकप्रिय प्रेस, कानून प्रवर्तन और सजा की भूमिका पर प्रकाश डाल, अन्य सामाजिक - आर्थिक कारकों की भूमिका पर बल दे रहे है

4.7 अभ्यास प्रश्न

1 परिचय्नित किये गए अपराधों की परिभाषा दे

2 क्राइम डाटा माइनिंग का क्या अर्थ है? विवरण दें

3 अपराध और परिचयन रिकॉर्डिंग नीति का परिचय दे

इकाई -5

पुलिस और विरोधी स्थितियों का प्रबन्धन

इकाई की रूपरेखा

5.0 प्रस्तावना

5.1 पुलिस प्रबन्धन

5.2 पुलिस व्यवसाय विरोध एवं प्रशासन

5.3 पुलिस प्रशासन

5.4 पुलिस के कार्य

5.5 सारांश

5.6 संदर्भग्रन्थ

5.7 अभ्यास प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

पुलिस प्रबन्धन की व्याख्या में फादर बुल्के ने "Conflict "शब्द के अपने शब्दकोश में तीन अर्थ बताये है -

1) द्वन्द्व

2) विरोधी स्थिति और

3) प्रतिकूलता, ये तीनों अर्थ प्रबन्ध की अवधारणओं में यह मानकर चलते है कि प्रबन्ध के शरीर पर बैठे व्यक्ति को अनुकूल और प्रतिकूल दोनों स्थितियों से गुजरना पड़ता है। प्रतिकूल परिस्थिति विरोधी स्थिति बना सकती है जिसके फलस्वरूप एक द्वन्द्व की प्रक्रिया सारे प्रबन्ध को बाधित कर उद्देश्य भ्रष्ट कर सकती है। एक प्रभावी मैनेजर वह नहीं होता जिसके संगठन में चुनौती भरे विरोध नहीं होते, बल्कि एक सफल प्रबन्धक ही वह है जो विरोधों की प्रतिकूलताओं को अनुकूलताओं के बदले और उन लोग से काम करवाये जो काम नहीं करना चाहते। विरोध के अभाव में सभी संगठन जड़ हो जाते है। अच्छे प्रबन्धक तो यहॉं तक मानते हैं कि यदि सब कुछ ठीक-ठीक चल रहा है तो भी संगठन में कुछ तनाव पैदा किये जाये जिससे विरोधों को सुलझाने से संगठन में उर्जा उत्पन्न हो सके और उसे दिशा दी जा सके । कोई भी विरोध धीरे-धीरे विकसित हो कर अचानक विस्फोट की स्थिति में आ सकता है । कभी-कभी विरोध दिखलाई नहीं देते पर होते है ।

पुलिस और विरोधी स्थितियों का प्रबन्धन

विरोधी स्थितियॉं जानबूझ कर बनाई जा सकती है और बहुधा वे इसलिए बन जाती है कि संगठन के विकास के साथ -साथ अधिकारी कर्मचारियों की दृष्टियॉं भी बदल जाती है। क्रिस अर्गरिस तो यहॉं तक

मानता है कि अच्छे सगठनों में विरोध अवरोध ज्यादा होते है क्योंकि व्यक्ति तो तेजी से बदलते है पर संगठन अपने को बदलने से डरते है। संगठन के आकार के बढ़ने से भी सम्बन्धों में टकराहटें बढ़ती है। तकनीकी के प्रयोग से मानव सम्बन्ध शिथिल बनते है और अनावश्यक विरोधों के द्वन्द्व संगठन को घेरने लग जाते है।

5.1 पुलिस प्रबन्धन

पुराना संगठन सिद्धान्त मानता था कि विरोधी प्रतिकूलता एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है और मैनेजमेन्ट को चाहिए कि विरोध को कुचल कर एक शान्त वातावरण बनाये। यह स्थिति अब सम्भव नहीं है। संगठन का मनोविज्ञान यह बतलाता है कि विरोधों और टकराहटों को समझा जाये और बम निरोधक दस्तों की तरह उन्हें निष्क्रिय करना सीखा जाये। पुलिस कार्य में यह सबसे अधिक जरूरी है क्योंकि पुलिसकर्मी कासारा प्रशिक्षण ही यह है कि विरोधों को दबाया जाये और विरोध को अनुशासन हीनता की दृष्टि से देखा जायें। पुलिसकर्मी जिस तरह अपने संगठन में विरोधी स्थितियों को दबाते है, वैसे ही वे समाज और राजनीति मे भी अपने विरोधियों की विपतियाँ को कुचलने में समस्याओं का समाधान ढूँढ़ते हैं।

प्रबन्ध व्यवहार के शोधकर्ता यह मानते हैं कि किसी भी द्वन्द्व या विरोध में तीन स्थितियाँ होती हैं -

1- Domination -. जिसमें एक पार्टी अपनी बात मनवाने के लिए दूसरे पार्टी पर विजय पाने या उसे दबाने की कामना करती है

2- Surrender-जिसमें कोई सी भी एक पार्टी भयभीत होकर दूसरे के पक्ष को न मानते हुए भी स्वीकार कर लेती है।

3- integration -जिसमें दोनों व्यवहार मिश्रित होकर एक तीसरा विकल्प ढूँढते है और परिस्थितियां यह तय करती है कि एक परिस्थिति को दूसरी परिस्थिति से कैसे बदला जाये?

मिस फालेट का मानना है कि विरोध की तीसरी स्थिति नई और स्थायी होती है। यहॉ समस्या यह नहीं होती कि सही गलत क्या है, पर समस्या यह बन जाती है कि एक सही समाधान भी ऊपर से थोपा हुआ होने के कारण दुष्परिणामों में बदल जाती है। पहली दो स्थितियां विरोध को या हानिकारक बनाती है जबकि तीसरी स्थिति में विरोध रचनात्मक रूप ग्रहण करता है और पूरे संगठन को उसका दीर्घगामी लाभ मिलता है। (विरोध क्रांति) या विरोध निस्तारण का यह मॉडल इस प्रकार है -

(I) जीतो और हराओ

(II) हारो और जीतने दो

(III) हार गये तो दूसरों को भी हराओ

(Iv) जीतो और दूसरों को भी जीतने दो

अधिकतर संघर्ष पहली तीन स्थितियों में उलझ कर रह जाते है और जीतने की स्थिति को प्राय: अपमान जनक माना जाता है। यह पहली और दूसरी स्थिति तीसरी में बदल जाती है और चौथी कभी आ ही नहीं पाती। अपराध , अव्यवस्था और दुराचरण से संघर्ष करने समय पुलिस कर्मी पहली स्थिति में होने के कारण वह अपने आपके के अन्दर के विरोध से लड़ता है और स्थिति को निष्क्रिय करने के चौथे उपाय

उसे तीसरी स्थिति में धकेल देते है। मैनेजमेंन्ट का यह मॉडल पुलिस पर पूरी तरह फिट तो नहीं बैठता, किन्तु पुलिस संगठन में हजारों ऐसी स्थितियां भी आती है ।

कोटो में कोई उन्हें समर्थन नहीं देता और राजनीतिज्ञ उनका दुरूपयोग करते है। पहले मैंनेजर भी ऐसा ही माना करते थे। पर ट्रेड यूनियनों के भारी आन्दोलनों के बाद औद्योगिक जगत तो अब यह मानने लगा है कि विरोधो का शून्य स्थिति में नहीं लाया जा सकता और समझौता विरोध सुलझाने का एक कम बुरा विकल्प है।

5.2 पुलिस व्यवसाय विरोध एवं प्रशासन

पुलिस व्यवसाय में विरोध की स्थिति सबसे अधिक और सबसे ज्यादा जटिल है। पुलिस संगठन आन्तरिक द्वन्द्वों और विरोधों से भरा पड़ा है और पुलिस के समाज तथा जनता के अलग -अलग वर्गो से अलग-अलग तरह के विरोध और द्वन्द्व है। प्रशासन और पुलिस कार्यो की दृष्टि से उन्हें इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है -

(I) संगठन के आन्तरिक विरोध जो -

(A) राजनेताओं से नीति सम्बन्धी हो सकते है।

(B) वरिष्ठ कनिष्ठ अधिकारियों के विरोध जो अनुशासन की अनुपालन से पैदा हो सकते है।

(C) मुख्यालय और Field Agenciesमें विरोध जो स्थितियों को देखने की दृष्टि से पैदा हो सकते है।

ये सभी विरोध कुछ समय बाद अवरोध (Obstacles)लगने लग जाते है । Senior पुलिस अधिकारी मंत्रियों, सांसद और विधायक से असहमत होने पर चुप भले हीहो जाते हो पर उनके विरोध और झगड़े चलते रहते है । ट्रांसफरों के बाद भी मनमुटाव नहीं मिटते और वे अनिच्छा से भी राजनीतिक द्वन्द्वों में फंस जाते है। अधिकारी और सिपाही के बीच पुलिस में इसलिए संघर्ष अधिक होते है क्योंकि पद सोपनी नियम अधीनस्थों की अपनी शिकायतों को दूर करवाने के संगठनात्मक साधन बहुत कम प्रदान करते है । सिपाहीदुखी है क्योंकि उन्हें छुट्टी नहीं मिलती । थानेदारों को शिकायत है कि उन्हें Promotion मिलने के अवसर नहीं बढ़ाये जाते । ऊपरी अधिकारियों को शिकायत है कि उन्हें उनके काम में समुचित सुरक्षा नही मिलती। पुलिस कार्य में परामर्श और सहयोग के सम्बन्ध न होकर केवल आदेश देने और रिपोर्ट मांगने के बन जाते है ।

ये विरोध तब और भी अधिक बढ़ जाते है जब सीमित संसाधनों और सुविधाओं को बॉटते समय न्याय नहीं होता । शक्ति के दबावों में आकर निचले अधिकारी से गलत काम करवाते है और भी यह चाहते है कि उन्हें गलत काम करने दिये जाये क्यों कि सभी अपने अपने स्तरों पर गलत काम कर रहे है । यह लड़ाई कानून से अधिक अनुशासन की व्याख्याओं की है । पुलिस कर्मी समाज की समस्याओं पर अलग – अलग दृष्टि रखते है । वे अपने को शासक समझते है और मानते भी है। आज की बदलती हुई परिस्थितियों में भी वे यह मानने को तैयार नहीं है कि जनता उनकी मालिक है । उनके (Attitude, Conflict) और Mind Set उनके पुलिस व्यवसाय ने इतने जड़ और सख्त बना दिये है कि विरोधों और द्वन्द्वों में जीने की आदत पाल लेने के बाद वे किसी से भी कोई संवाद करने में विश्वास ही नहीं रखते ।

अन्यायों को सहन करने की उनकी क्षमता अपार है और इसका प्रतिकार वे समाज को सताकर सता सुख में ढूँढते है। एक सिपाही एक रिक्शावाले को पीटकर ;जो उसी के स्तर का एक साधारण नागरिक है खुद की उच्च समझता है कि उसने अपनी उन परिस्थतियों के दुख को घटा लिया जो उसके Senior उसे देते रहते है। विरोधी आक्रोश की घुटन पुलिस व्यवसाय की एक ऐसी नियति मानी जाती है जिसमें विभागीय द्वन्द्वों की कीमत एक पुलिसकर्मी समाज पर अत्याचार कर एक प्रतिफल(Reward)के रूप में करना चाहता है।

दूसरे शब्दों में विभाग की प्रतिकूल परिस्थितियां पुलिस के सामाजिक व्यवहार में और समाज की विरोधी स्थिति पुलिस संगठन के आंतरिक सम्बन्धों में प्रतिबिम्बित होती है। असन्तुष्ट पुलिस अधिकारी अपने द्वन्द्वों की सजा अपने समाज को देते है और इसी तरह सामाजिक जीवन की विरोधाभासी विडम्बनायें पुलिस व्यवसाय में एक पुलिकर्मी को सुख चैन से जीने नहीं देती। एक दूसरे को दोष देने से ये Conflict और गहरे बनते हैं और फलस्वरूप ये न ही पुलिस कर्मियों के आपसी विरोध सुलझाने में कोई मदद मिलती है। पुलिस कर्मी अपने सघर्ष को कम करने में अक्षम है और समाज उस के कार्यो से अपने Conflict का उत्तर न पाने पर पुलिस को अधिक अक्षम बना रहा है। विरोधों में जीने की नियति पुलिस समाज सम्बन्धों को कुट बनाती है और एक लोकतंत्र में यह तरह तरह के विस्फोटों में बदल कर पुलिस सुधारों की प्रक्रिया को भारी नुकसान पहुंचाती रही है। इस कटुता, प्रतिकूलता और द्वन्द्वों को संगठन में घटाने के लिए कोई स्वतंत्र संस्था नहीं है। पुलिस यूनियन बनाने की इजाजत नहीं दी जा सकती न्यायालयों की प्रक्रिया, मंहगी और विलम्बकारी है। सीनियर संवाद नहीं चाहते। मीडिया का इन Conflict में दखल देने से पुलिस की प्रभावशालिता घटती है। अत: ट्रांसफर सजा और प्रशिक्षण के माध्यमों से पुलिस में आन्तरिक संघर्ष निवारण चलता रहता है जो बेहद निराशाजनक है। इससे पुलिस व्यवहार में तो विकृतियां आती है वह समाज के उत्पीड़न और भ्रष्ट्राचार के रूप में बहुत मंहगी पड़ती है। पुलिस के सामाजिक अपराध पुलिस द्वारा पकड़े नहीं जा सकते और सी0बी0 आई0 तथा स्थानीय पुलिस के बीच नित नये द्वन्द्व पैदा करने से भी पुलिस और जनता दोनों को नुकसान पहुचता है। एक स्थायी गैर-पुलिस और गैर राजनीतिक आयोग ;जैसा जापान में इस दिशा में एक नया प्रयोग हुआ है किन्तु उसे भी स्वस्थ परम्परायें स्थापित करने में लम्बा समय लगेगा। संवाद की संस्कृति (Dialogue Culture)अपील व्यवस्था (Appeal System)से अधिक प्रभावी समाधान है पर यह संस्कृति आदेशों से नहीं बनती।

5.3 पुलिस प्रशासन

पुलिस के अधिकतर विरोध शासकों और जनता से है। ये शासक तीनों ही सरकारी अंगों में हैं। मंत्री कार्यकारी (Executive)है , विधायक, सांसद (Legislator)है और अब न्यायाधीश भी पुलिस की शिकायतों के घेरे में आने लगे है क्योंकि वे जनता की पीड़ा के नाम पर पुलिस की पीड़ा को नहीं समझते। उन्हें पुलिस के द्वन्द्वों के बीच में वकीलों द्वारा फैके जाने वाले पत्थर नहीं नजर आते। ये तीनों प्रकार के शासक हुकूमत की कुर्सियों पर सुरक्षा से अपना काम इसलिए कर रहे है कि कोई पुलिस वाला उनके पीछे खड़ा है। यह बोल नहीं सकता और शासक समझते है इससे बल प्रयोग करवाकर जनता के गुस्से को पुलिस की बर्बरता की ओर मोड़ दो। स्थिति यहॉ तक आ गई कि पुलिस वाला तो हड़ताल नहीं

करता पर उनकी पत्नियॉं और बच्चे भूख हड़ताल पर बैठने लगे है। मीडिया भी उतना स्वतंत्र नहीं है जितना वह लगता है। यह सही है कि शासको को कठोर निर्णय लेने पड़ते है जिनसे जनता नाराज होती है। पुलिस एक बफर (Buffer) सुरक्षा है पर वह शासकों को बचाने के लिए जनता के प्रति क्रूर नहीं हो सकती। उससे यदि कठोर कार्य करवाने है तो उस पर भी दया करो अन्यथा यह हिंसा अंतत: शासको पर भारी पड़ेगी पुलिस शासको का यह द्वन्द्व नैतिक अथवा कानूनी लड़ाई नहीं है। यह तो परिस्थिति की प्रतिकूलता है जिससे पुलिस का आचरण राजनीति विरोधी या जनता विरोधी दोनों बना सकता है। अत: यह एक मानवीय स्थिति (Human Situation)बनती है। जिसमें पुलिस, मजिस्ट्रेट और मंत्री तीनों समान रूप से उत्तरदायी है। ट्रांसफर करवाकर जनता का गुस्सा शान्त किया जा सकता है पर एक हत्यारा पुलिसकर्मी इस शहीदत्व को स्वीकार नहीं कर सकता। लोकतंत्र की राजनीति में पुलिस की नीतियां और मजबुरियां राजनीतिक शासको की गलतियां अधिक होती है और साझा जिम्मेदारी से कोई भी बच नहीं सकता।

पुलिस व्यवहार के ये द्वन्द्व और उनका प्रबन्धन समाज के स्तर पर और अधिक संवेदनशील है। महिलायें, बच्चे अल्पसंख्यक, दरिद्र, वृद्ध और दुर्बल वर्ग सभी अपराध करते है और अपराधों के शिकार भी बनते हैं। नैतिक और कानूनी दृष्टि से तो पुलिस सबकी अभिभावक है। पर समाज का यथार्थ यह है कि संगठित और शक्तिशाली लोग अपने को कानून से बाहर और ऊपर समझते है। V.I.P. की परिभाषा ही यह बनती जा रही है जिसे पुलिस गिरफ्तार न कर सके। ऐसे व्यक्ति अपने आप को शासक या शासको के मित्र मानते है। पुलिस की Executive Arm Philosophy इन सभी अभिजनों को यदि कानून से बाहर मानने लग जाती है तो अपराधों का राजनीतिकरण (Politicisation Of Crime) आरम्भ होता है। अपराधों को राजनीतिक शासको की दृष्टि से देखते ही पुलिस का राजनीतिकरण (Polltlclsation of Police) शुरू होता है ओर यदि पुलिस थानों का राजनीतिकरण हो जाता है तो लोकतंत्र की विकृति का एक घेरा पूरी पुलिस का अपराधीकरण (Criminalisation Of Police) कर कानून के शासन का अन्त कर देता है।

बम्बई के पुलिस आयुक्त रिबेरो और उत्तरप्रदेश के पूर्व डी0जी0प्रकाश सिंह सुप्रीम कोर्ट में इन प्रश्नों को उठा चुके हैं। पुलिस अपराधी शासको की चौकीदार नहीं हो सकती (Choukidar of Ruling offlcers)पर दूसरी ओर यह भी उतना ही सही है कि पुलिस कानून लागू करने के नाम पर मनमाना भी नहीं कर सकती। नियत्रंण और संतुलन के मध्यम मार्ग है क्योंकि सत्ता चाहे जनता ने दी हो या कानून ने दोनों ही गैर जिम्मेदार नहीं हो सकते। सभी समाज में अपराधों की जड़े सत्ता, सम्पति, सैक्स अपराधों में पायी जाती है। इस दृष्टि से पुलिस की बहुत सी कुण्ठायें और द्वन्द्व यौन अपराधों और महिलाओं से जुड़े हुए है। मूलत: ये संस्कृति के प्रश्न है और जितने इस क्षेत्रों में कानून बनाये जाते है उतनी ही पुलिस के महिलाकरण की मांग बढती है। पुलिस 1861में जब भारत में बनायी गई थी तो महिला अपराध, महिला सहभागिता, दु"कर्म बलात्कार सभी की परिभाषाये मध्य युगीन थी और एक पुरूष पुलिस अपने ढंग से अपराधियों से महिला अस्मिता की रक्षा कर रही थी। अब समाज का यह आधा वर्ग पुलिस थाने में भी

अपने को असुरक्षित महसूस करता है और पुलिस कर्मी को भी डर लगता है कि यदि महिला ने आरोप लगा दिया तो मीडिया और जनता उसे ऐसी सजा दे सकती है जो न्यायालय नहीं देते। यह स्थिति एक मानसिक तनाव के कारण पुलिस की कर्तव्य परायणता में उत्साह शून्यता लाती है और अपराधी पुलिस अधिकारी भी महिला जागरण को अनुचित बतला रहे है। उत्तर तो पुलिस विभाग का महिलाकरण (Feminisation)है चाहे इससे पुलिस कार्य कुशलता कितनी ही क्यों न घट जाये। नारी के प्रति पुलिस दृष्टि बदले बिना ये Conflict कम नहीं हो सकते। इसी प्रकार पुरूष के साथ पुलिस कार्य करते समय ये प्रतिकूलताये महिला को भी तरह-तरह के द्वन्द्वों में धकेलती है। इनका इलाज केवल ईमानदारी के सम्बन्ध ही नहीं हैबल्कि इस द्वन्द्व की यौनिक दुर्बलता और सहजता को समझना है जो समाज के शिक्षा औरपरिपक्वता से आयेगी। सैक्स अपराध पहली बार कानूनी स्पष्टता में आ रहे हैं और पुलिसकर्मी यदि तनावों और विरोधों से बचना चाहते है तो उन्हें इनकी समतावादी व्याख्यायें समझनी होगी।

दुर्बल वर्ग भारत के संदर्भ में पुलिस सहायता चाहने वाला एक बड़ा वर्ग है। यह दुर्बलता जन्म, गरीबी, अशिक्षा जेंडर तथा विकलांगता आदि अनेक कारणों से व्यक्ति या समूहों को अशक्त बनाती है। एक कल्याण राज्य में सरकार का यह दायित्व बनता है कि वह निशक्तों को सशक्त बनायें। गरीबी और बेरोजगारी तो उसका एक पहलू मात्र है। यह पूरा वर्ग ही समाज में एक स्वस्थ पुनर्वास (Rehabititation) चाहता है। इसमें भी इस वर्ग की समाजिक सुरक्षा पुलिस का विशेष दायित्व है। पुलिस द्वारा इस वर्ग की उपेक्षा सामाजिक कानूनी (Social Legislation) को कठोरता से लागू न करना पुलिस प्रशासन की आलोचना के विषय बनते है। दलित आन्दोलनों के नेता पुलिस से टकराते है और इस प्रकार द्वन्द्व सही और गलत दोनों ही प्रकार के कारणों से पुलिसकर्मी की जिन्दगी में तनाव और कटुता के सम्बन्ध जोड़ते रहते है। अब इस वर्ग में अल्पसंख्यक लोग और जुड़ने लगे है और पूरा क्षेत्र पुलिस प्रशासन की दृष्टि से एक अतिरिक्त भार के रूप में कमजोर पुलिस के कन्धों पर आ गिरा है। बहुत से वरिष्ठ पुलिस अधिकारी इसे पुलिस कार्य ही नहीं मानते और समाज कल्याण विभाग को अतिरिक्त जिम्मेदारी देकर पुलिस की भूमिका को घटना चाहते है। पर Postivie Policeingकेवल अपराध रोकने का तंत्र न होकर एक नई समाज संरचना का प्रशासनिक निकाय भी मानी जाती है। इससे पुलिस में द्वन्द्व और प्रतिकूलतायें बढ़ रही है पर यदि पुलिस अपने दर्शन को सकारात्मक बना सके तो समाजिक बदलाव की पुलिस (Police for Social Change)यथास्थिति पुलिस (Sation quoist Police)की तस्वीर बदल सकती है।

लोकतंत्र की प्रगति के साथ एक ओर तो पुलिस प्रबन्धन में द्वन्द्व और प्रतिकूलता की स्थितियां बढ़ रही है दूसरी और (Conflict Resolution)के जो तरीके प्रबन्ध विज्ञान ने ढूंढे है वे पुलिस व्यवसाय की सोच से टकराते है। टकराहट घटाने के चार उपाय है-

(i) मध्यस्थता

(ii) बीच-बचाव

(iii) पंच फैसला

(iv) न्यायिक अधिनिर्णय

पुलिस अपने विभागीय द्वन्द्वों और समाज के साथ टकराहटो की इन तरीको से सुलझाना नहीं चाहती। सेना की तरह उसका दृष्टिकोण अनुशासनवादी है और पुलिसकर्मी के मानव अधिकारों को स्वीकार न करते हुए वे उसे विभागीय खोजबीन से सजा देना चाहते है। यह पुलिस दर्शन का प्रश्न है कार्य कुशलता की दृष्टि से पुलिस को भी (नागरिक माना जा रहा है और इसलिए पुलिसकर्मी की शिकायतों या (Grivences)के निराकरण के लिए अर्द्ध न्यायिक प्रक्रियायें प्रस्तावित की जाती है। ये Conflict घटाती नहीं बल्कि उन्हें गहरा बनाती है।

हाल ही में लोकपाल (लोकायुक्तो) के गठन को लेकर देश में एक लम्बी बहस चली है। प्रशासनिक अधिकारी स्वयं और उनके खिलाफ जनता दोनो ही अपनी - अपनी शिकायतों से न्याय मांग सकते है। पुलिस के लिए कोई अलग लोकपाल व्यवस्था हो या पुलिसकर्मी अपनी शिकायते प्रशासनिक अधिकरणों में ले जाये। ये सारे सुझाव परिणाम तक इसलिए नहीं पहुंचते क्योंकि पुलिस व्यवहार को सीमा में रखने के लिए उच्च अधिकारी अधिक जिम्मेदार है। यह एक नौकरशाही दृष्टि है और उन संगठनों में समस्याएँ उत्पन्न करती है जहॉ निर्वाचित यूनियने नहीं है और कर्मचारियों को अर्द्धनागरिक माना जाता है। सशस्त्र पुलिस संगठनों में इस Pera Militarisonके कारण पुलिस पर मानव अधिकार हनन के मुकदमें चलते है और पुलिस अधिकारी भी अपने पुलिस अल्किाकारों की अभिरक्षा के लिए न्यायालयों के दरवाजे खटखटाने लगे है।

ऐसा लगता है कि देर सवेर इस प्रश्न को सुलझाना पड़ेगा कि पुलिसकर्मी नागरिक अधिक है या सैनिक। वह दोनो भूमिकाओं में है इसलिए उसके तनाव संगठन के अन्दर और संगठन के बाहर दोनों तरह के है। बाह्य सुरक्षा की तरह आन्तरिक सुरक्षा (internal Security)के प्रश्न राष्ट्र की रक्षा और व्यक्ति की स्वतंत्रता के बीच संतुलन चाहते है। एक सैनिक की तरह पुलिसकर्मी भी देश रक्षक है किन्तु सैनिक नागरिकों के मानव अधिकारों का हनन नहीं करता, जबकि पुलिस प्रशासन में एक पुलिस अधिकारी को यह इजाजत नहीं दी जा सकती कि वह नागरिकों की स्वतंत्रता छीनें।

5.4 पुलिस के कार्य

पुलिस में प्रतिकूल परिस्थितियॉ उसके कार्यो Functions के कारण अधिक पैदा होती है। जीवन की सुरक्षा और समाज की व्यवस्था के लिए ही ये नकारात्मक कार्य महत्वपूर्ण बने और इन्हीं के कारण पुलिस प्रबन्धन में तनाव द्वन्द्व तथा विरोध बढते है।

लोकतंत्र में इन्हें कुचला या दबाया नहीं जा सकता। अत: सकारात्मक विकास कार्य पुलिस व्यवसाय को दिये जा सकते है और आज कल दिये भी जा रहे है। समाज की सेवा सहायता और सहयोग का यह क्षेत्र इतना बड़ा और व्यापक है कि कालान्तर में सकारात्मक पुलिस नकारात्मक पुलिस कार्यो को गौण बना सकती है। पुलिस को समाज विकास से जोड़कर नई भूमिकाये और सर्वथा नये कार्य दिये जा सकते है जिससे नागरिक को पुलिस से डरना बन्द करें, अपराधियों को जेल भिजवाने के लिए आगे आकर कोर्टो में गवाही दें। ये कार्य भविष्य की पुलिस को देने से उसकी समग्र भूमिका सकारात्मक बनने लगेगी और कानून तथा व्यवस्था प्रशासन विकास प्रशासन का ही एक दूसरा पहलू बन जायेगा।

ये सकारात्मक् पुलिस कार्य हो सकते है

(1) Traffic Management

(2) Accident and Disaster

(3) Panchayati Policeing

(4) Human Rights Police Division

(5) Tourist Safety

(6) Student Police Help

(7) Women & Weaker Section Support

(8) Police Welfare Responsibility of crore

(9) Cyger Policeing (10) Public Hygicne Operations इत्यादि।

इस प्रकार के दर्जनों और अन्य अनुबंधी कार्य कानूनी और अनौपचारिक ढंग से पुलिस कामों में जोड़े जा सकते है। वैसे तो पुलिस आज भी ये सब कार्य कर रही है पर ये गौण माने जाते है। सकारात्मक पुलिसिंग आरम्भ करने के लिए राज्य और जिले के स्तरों पर एक Specialised और Deccantralised Modren Police Force एक्ट और additionally गठित करनी पड़ेगी। एक आई0जी0पी0 स्तर का अधिकरी अपनी स्टेट की पुलिस कान्स्टेबुलेरी में से पॉच वर्ष की सेवा के श्रेष्ठ और अनुभवी कर्मियों को इन Specialities में Promotional grades पर नियुक्ति देकर योग्य और नये पुलिसकर्मियों से विशेष पुलिस सेवा कार्य करवायेगा। धीरे -धीरे इसमें विशेषीकरण Specialisation आ सकेगा और बाद में यह फोर्स थाना स्तर पर पुलिस कर्मियों का प्रशिक्षण कार्य भी कर सकेगी। ये विशेषज्ञ हस्ते जन सहयोग और कमेठी व्यवस्थाओं द्वारा कार्य करते हुए मीडिया के माध्यम से जनता के प्रति उत्तरदायी होगें। थाना अपने बहुत से कार्य को जिनके लिए उसके पास साधन नहीं है और जो गंभीर प्रकृति के भी नहीं है इस फोर्स को तममित कर सकेगा। केन्द्र सरकार इस सामाजिक पुलिस को विशेष सामग्री और विशेष पैकेज दे सकती है। जिला स्तर पर यह एक रिजर्व पुलिस होगी जिसमें तीन विशेषताएं हो सकती है -

(1) भर्ती, पदोन्नित और प्रशिक्षण सामान्य फोर्स से भिन्न होगा।

(2) इसे जन सहयोग मीडिया एम.एल.ए., एम.पी. और कमिटियों का साथ लेकर काम करना होगा।

(3) इसमें अनुशासन शिथिल होगा पर विशेषीकरणऔर आधुनिकरण पर लगातार बल दिया जायेगा।

एक प्रयोग के तौर पर सकारात्मक अनौपचारिक रूप से कार्य करने वाला यह पुलिस बल वर्तमान व्यवस्था में कोई छेड़छाड़ नहीं करेगा। पर जो सिपाही थानेदार वर्तमान व्यवस्था में दुखी और निष्फल महसूस कर रहे है वे अपना स्थानान्तरण करवा सकेगें। पदोन्नित के अवसर इस सामाजिक पुलिस में ज्यादा होगें। महिलायें इस पुलिस को अन्निाक प्रभावी और उपयोगी बना सकेगी। नये कामों से पुलिस की छवि बदलेगी और

नकारात्मक पुलिस कर्मी, (जो भी बेहद जरूरी है) अपना दण्डात्मक कार्य करते रहेगें। इस सामाजिक पुलिस का कानूनी स्तर वैसा ही रहेगा स्थानान्तरण भूगोल की जगह नये कार्यो में किये जायेगें। जापान ,

कोरिया, वियतनाम आदि देशों में यह प्रयोग काफी सफल रहा है। भारत में इसकी उपदेयता इसलिए भी है कि पुलिस के आचरण व्यवहार बदलने में एक लम्बा समय लगेगा। तब तक सुयोग्य पुलिस अधिकारियों को यह अवसर मिलना चाहिए कि वे पुलिस में रहते हुए पुलिस के द्वन्द्व कम हो और एक ऐसा अनुकूल वातावरण बनाये जिससे पुलिस का मनोबल बढ़ सके। पुलिस दुरूपयोग को कम करने का यह एक सकारात्मक तरीका है। परेशानियां इसमें भी आयेगी पर यह वर्तमान स्थिति से कम द्वन्द्व करने वाला या एक सुखद गॉधीवादी प्रयोग होगा।

5.5 सारांश

पुराना संगठन सिद्धान्त मानता था कि विरोधी प्रतिकूलता एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है और मैनेजमेन्ट को चाहिए कि विरोध को कुचल कर एक शान्त वातावरण बनाये। यह स्थिति अब सम्भव नहीं है। संगठन का मनोविज्ञान यह बतलाता है कि विरोधों और टकराहटों को समझा जाये और उन्हें निष्क्रिय करना सीखा जाये

5.6 अभ्यास प्रश्न

1- विरोध और द्वन्द्व क्यों जन्म लेते है? प्रबन्ध में इनसे निपटने के क्या तरीके है?

2- ''पुलिस प्रबन्धन में आन्तरिक द्वन्द्व केवल अनुशासन से नहीं मिटाये जा सकते है।'' विवेचना कीजिए।

3- पुलिस और समाज के अन्तर द्वन्द्व सकारात्मक पुलिसिंग द्वारा कम किये जो सकते है। अपने विचार प्रस्तुत करते हुए एक निबन्ध लिखिये।

5.7 संदर्भ ग्रन्थ

1 D.H. Balley : Police and Pollt|cal Development |n |nd|a. Pr|nc|ron U.

2 Sharma P.D. : Police and |nternal Secur|ty Uppal Delh|.

3 Saro||a S. : **भारत में पुलिस प्रशासन**

4 Reports of National Police Comm|ss|on.

5 Fluthens Organ|sational Behav|our

6 Robb|ns Organ|sational Behav|our

इकाई-6

गांधी और पुलिस प्रशासन

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

63. गांधीवादी दर्शन का मूल आधार

6.4 पुलिस व्यवस्था एवं गांधी

6.5 पुलिस एवं जनता के संबंधऔर गांधी

6.51 एक सेवक के रूप में पुलिस की स्थापना

6.5.2 नम्रता, निष्ठा एवं सेवाभक्ति

6.5.3 पुलिस थानों की छवि में सुधार

6.5.4 जनसम्पर्क शाखा की स्थापना

6.5.5 व्यवहार में परिवर्तन

6.5.6 पुलिस पत्रिकाएँ

6.5.7 पुलिस की कार्यविधि एवं भूमिका का प्रचार

6.5.8 समाज सेवी संस्थाओ से समन्वय व तालमेल

6.5.9 आपराधिक न्यायाप्रणाली से आतंरिक सहयोग प्राप्त करना

6.5.10 पुलिस कैडेट्स की स्थापना

6.5.11 पुलिस ड्राफ्टिंग या विशेष पुलिस

6.5.12 पुलिस बोर्ड एवं सलाहकार समितियों का गठन

6.6 सारांश

6.7 अभ्यास प्रश्न

6.8 संदर्भग्रन्थ

6.1 उद्देश्य

गांधीजी राज्य के कार्य रूप को कम से कम प्रयोग में लाने के पक्षधर थे। लेकिन वे यह भी मानते थे कि मनुष्य गलतियां करता है। अत: व्यक्ति एवं समाज को सुचारू रूप से चलाने के लिए वे पुलिस, दण्डात्मक नियंत्रण एवं जेल जैसी व्यवस्थाओं को नकारते भी नहीं है और इन्हें सुधारात्मक संस्थाओं में बदलना चाहते थे। इस इकाई में हम गांधीजी पुलिस व प्रशासन के विषय में विचारों को समझेंगें।

6.2 प्रस्तावना

गांधीजी राज्य एवं प्रशासनिक इकाईयों के महत्व को कम आँकडें है उनके अनुसार व्यक्ति साध्य तथा राज्य साधन मात्र है राज्य की उत्पति मनुष्य के लिए हुई, ना कि मनुष्य की राज्य के लिए। गांधीजी राज्य को सामाजिक उत्थान और जनकल्याण का एक साधन मात्र मानते थे। दार्शनिक आधार पर राज्य का विरोध करते हुए गांधीजी ने कहा है कि राज्य व्यक्ति के नैतिक विकास का मार्ग प्रशस्त नहीं करता अपितु दण्ड के भय और कानून की शक्ति से बाधित करता है परंतु राज्य के अस्तित्व को वे पूर्णत: नकार नहीं पाये।

6.3 गांधी वादी दर्शन का मूल आधार

राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में ऐसे अनेक विचारक हुए हैं, जिन्होंने राजनीति और धर्म को एक-दूसरे से पृथक किया है। परन्तु गांधीजी की विचारधारा इससे नितान्त विपरीत है। गांधीजी के द्वारा राज्य, शासन समाज और आर्थिक संगठन के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किए गए है। उन सभी विचारों का मूल आधार उनका धार्मिक दृष्टिकोण ही है।

गांधीजी मूलत: धार्मिक प्रवृति के व्यक्ति थे और जिस प्रकार उन्होंने अपने जीवन में धर्म का निर्वाह किया, उस आधार पर उन्हें भारतीय परम्परा का एक महान् सन्त कहा जा सकता है। एक धार्मिक नेता होते हुए भी गांधीजी धार्मिक रूढ़िवादिता और धर्मान्धता के समर्थन नही थे और धर्म के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण लौकिक और मानवता वादी था। वे प्राणिमात्र की सेवा ही वास्तविक आध्यात्मिक जीवन का मूल तत्व मानते थे और उनका कथन था कि '' मानव क्रियाओं से पृथक कोइ धर्म नहीं है।'' इसी प्रकार वे राजनीति शब्द में नीति अर्थात् धर्म, और मानवता को प्राथमिकता देते थे, 'राज' अर्थात् सत्ता को नहीं। धर्म के सम्बन्ध में अपने इस लौकिक दृष्टिकोण के कारण ही गांधीजी ने राजनीति में प्रवेश कर राजनीति में नीति के महत्व का प्रतिपादन किया।

स्वयं गांधीजी के शब्दों में '' उस समय तक मैं धार्मिक जीवन व्यतीत नही कर सकता था, जब तक कि मैं स्वयं को सम्पूर्ण मानवता के साथ एकीकृत नहीं कर लेता और मैं यह उस समय तक नहीं कर सकता था, जब तक कि राजनीति में भाग नहीं लेता।

गांधीजी की राजनीतिक विचाराधारा का मूल आधार राजनीति के प्रति उनका यह आध्यात्मिक दृष्टिकोण ही है। गांधीजी धर्म और राजनीति को पृथक करने के पक्ष में नही थे। गांधीजी का विचार है कि राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक कार्यों को पूर्णतया पृथक् भागों में विभाजित नहीं किया जा सकता और मानवीय कार्यो से पृथक् रूप में धर्म का कोई अस्तित्व नहीं है। धर्म मानव के सभी कार्यो को एक ऐसा नैतिक आधार प्रदान करता है, जिसके अभाव में मानव के सभी कार्यों का महत्व समाप्त हो जायेगा। गांधीजी इस बात को स्वीकार करने के लिए कदापि तैयार नहीं थे कि व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के मापदण्ड अलग अलग होने चाहिए, वरन् उनका विचार तो यह था कि मानवीय कार्यो के सभी क्षेत्रों में एक ही नैतिक संहिता लागू की जानी चाहिए। इस सम्बन्ध में उनका कहना था कि '' व्यक्ति की दो

अन्तरात्माएं नहीं हो सकतीं- एक व्यक्गित और सामाजिक तथा दूसरी राजनीतिक मानवीय कार्यों के सभी क्षेत्रो में एक ही नैतिक संहिता का पालन किया जाना चाहिए।

उनका लक्ष्य तो सत्य और अहिंसा को व्यक्तिगत व्यवहार ही नहीं वरन् सार्वजनिक व्यवहार का आधार बनाना था और उन्होनें इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया।

इस प्रकार उनके दर्शन व सभी विषयों पर उनके विचार सत्य अहिंसा, सत्याग्रह, धर्म, सदाचार, आदि बातों पर आधारित है।

7.4 पुलिस व्यवस्था एवं गांधी

महात्मा गांधी दार्शनिक अराजतावादी थे। उन्होने अपने भाषणों और लेखो में बिखरे हुए रूप में आदर्श अहिंसक समाज की रूपरेखा को मोटे तौर से समझाया था। एक आदर्श जनतन्त्रवादी समाज में वे यद्यपि किसी भी रूप में राज्य कें अस्तित्व के विरोधी थे, लेकिन व्यवहारवादी विचारक होने के नाते उन्होने 1946 में स्पष्ट रूप में कहा था कि संसार में कही भी बिना सरकार के राज्य का अस्तित्व नही है तथापि यदि हम इस प्रकार के आदर्श अहिंसक समाज के लिए निरन्तर कार्य करते रहें तो धीरे धीरे ऐसे समाज का आविर्भाव इस सीमा तक हो सकता है जो लोगों के लिए कल्याणकारी हो। इस पृष्ठभूमि में ही हमें राज्य और समाज के बारे में गाँधीजी के विभिन्न विचार- बिन्दुओं को समझना होगा यहां पर हम गाँधीजी के पुलिस व प्रशासनिक इकाईयों के विषय में विचारों का अध्ययन करेंगे।

गांधीजी चाहते थे कि राज्य के कार्य रूप में कम हों और लोग अधिकाधिक आत्मनिर्भर बने, लेकिन वे मानव- कमजोरी से अवगत थे, अत: अपराध का उपचार चाहते थे । उन्होनें कहा था, '' मैं बहुत सोचने समझने के बाद भी दण्ड - व्यवस्था या दण्डात्मक नियन्त्रण को सम्पूर्ण समाप्त नही कर सकता। पर दण्ड भी अहिंसक होना चाहिए।''

एक अहिंसक राज्य में अपराधी को बदले की भावना से दण्ड नहीं देना चाहिए। दूसरों को डराने- धमकाने के लिए भी दण्ड देना उचित नहीं है। दण्ड का उद्देश्य होना चाहिए- सुधार। वे मृत्यु दण्ड के पक्ष में नही थें। उनका कहना था कि अहिंसा के सिद्धान्तो द्वारा अनुशासित राज्य में खूनी को जेल भेजा जाना चाहिए, जहाँ उसे सुधारा जा सके। वैसे, व्यक्तिगत रूप से गाँधीजी हिंसा करने वालों को भी दण्ड देकर जेल भेजने में विश्वास नहीं करते थे, लेकिन समाज की वर्तमान परिस्थितियों में इसे अव्यवहारिक आदर्श मानते हुए उन्होंने जेलों की व्यवस्था को स्वीकार किया था।

गांधीजी जेलों को भी अंहिंसक बनाना चाहते थे। जेलों को सुधारात्मक संस्थाओं में बदल दिया जाए जिनमें लोगो को नए- नए काम सिखाए जा सके और नए-नए कार्यों का प्रशिक्षण दिया जा सके, ताकि जेलों से बाहर जाने पर वे आत्म निर्भर बने सके। गांधीजी ने जेलो के सुधार के लिए एक योजना बनाई।

उन्होंने कहा- '' ऐसे उद्योग जिनमें लाभ नहीं हो रहा उन्हें बंद कर देना चाहिए तथा जेलों को हाथ-करघा संस्थाओं के रूप में परिणित कर देना चाहिए और जहां सम्भव हो सके वहां कपास की उपज, अच्छे कपड़े बनाना प्रारम्भ कर देना चाहिए। कैदियों को विकृत नहीं माना जाना चाहिए और उन्हें अपराधी के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। जेल- कर्मचारियों को कैदियों पर अत्याचार करना छोड़ देना चाहिए।

उनके स्थान पर उन्हें मित्र और प्रशिक्षण दाता बन जाना चाहिए। एक शर्त यह होनी चाहिए कि कैदी जो खादी बनाएं उसे राज्य कम कीमत पर खरीद लें और यदि अधिक मात्रा में बने तो जन साधारण को उससे थोड़ी अधिक कीमत पर खरीद लेना चाहिए''।

गांधीजी चाहते थे कि सभी अपराधियों को रोगी मानना चाहिए और जेलों को ऐसा अस्पतला समझा जाना चाहिए जिनमें ऐसे रोगियों का उपचार हो। जेल-कर्मचारियों का दृष्टिकोण अस्पताल में डॉक्टरों और नर्सों जैसा होना चाहिए तथा कैदियों को महसूस होना चाहिए कि कर्मचारी उनके दोस्त है और उनके मानसिक स्वास्थ्य में मदद देने के लिए है न कि उन्हें किसी प्रकार का कष्ट देने के लिए।

गांधीजी व्यावहारिक व्यक्ति थे, अत: उन्होंने माना कि उनके अहिंसक राज्य में भी पुलिस की आवश्यकता होगी, लेकिन इस अहिंसक राज्य में पुलिस वाले ऐसे व्यक्ति होंगे जो अहिंसा में पूर्ण आस्था रखते हों। वे जनता के सेवक होंगे, मालिक नहीं। जनता और पुलिस परस्पर सहयोग से शान्ति-व्यवस्था कायम रखेंगे। पुलिस के पास जो हथियार होंगे उनका प्रयोग किसी अत्यधिक असाधारण स्थिति में ही किया जा सकेगा। पुलिस शारीरिक शक्ति का प्रयोग कम से कम करेगी सिवाय ऐसे अवसरों को छोड़कर जहां अनिवार्य हो। अश्रुगैस तक का प्रयोग बहुत ही असाधारण परिस्थिति में किया जाएगा। वास्तव में पुलिस वाले सुधारक होंगे। पुलिस का कार्य मुख्यत: डाकुओं और गुण्डों के लिए होगा।

गांधीजी यद्यपि सैनिक-व्यवस्था के विरूद्ध थे, लेकिन उन्होंने स्वीकार किया कि सैनिक व्यवस्था को आकस्मिक रूप में पूर्णत: हटा देना ठीक नहीं होगा। न्याय-व्यवस्था के सम्बन्ध में उनका विचार था कि राज्य इस कार्य को सम्पूर्णत: अपने पास न रखकर पंचायतों को सौंप दें आधुनिक न्याय- व्यवस्था, उनकी दृष्टि में अनैतिकता को प्रोत्साहन देने वाली है। गांधीजी का कहना था कि वकीलों को न्याय की सहायता के लिए मजदूरों जितना भत्ता लेकर कार्य करना चाहिए। **न्याय-** व्यवस्था में सुधार के लिए उन्होंने कहा कि '' न्याय व्यवस्था को सस्ती बनाना चाहिए।''

6.5. पुलिस व जनता के संबंध एवं गांधी

वर्तमान पुलिस संगठन निवेशवादी सरकार की देन है। आज संगठन वैसा ही है, उपनिवेशवादी सरकार चाहती थी। वर्तमान पुलिस संगठन लोकतांत्रिक ढाँचे के अनुसार अच्छा और उपयोगी नहीं समझा जाता। इसको उपयोगी एवं प्रभावशाली बनाने के लिए और पुलिस एवं जनता के संबंधो को मजबूत बनाने के लिए भी पुलिस का पुनर्गठन आवश्यक है। अत: अच्छे पुलिस एवं जनता संबंधो का निर्माण करने के लिए, पुलिस संगठन और समाज सेवा संबंधी कार्यक्रमों का निर्माण करने के लिए निम्नलिखित उपायों या सुझावों को बताया है।

6.5.1 एक सेवक के रूप में पुलिस की स्थापना-

वर्तमान तानाशाही पुलिस रवैये को बदलकर पुलिस की एक सेवक के रूप में स्थापना करनी चाहिए। पुलिस को सरकार द्वारा एक शस्त्र के रूप में प्रयोग किया जाता है, जबकि लोकतांत्रिक व्यवस्था के अनुसार पुलिस को समाज- सेवी होना चाहिए। अत: पुलिस एवं जनता संबंधो को सुदृढ़ बनाने के लिए पुलिस की एक सेवक के रूप में स्थापना की जानी चाहिए।

6.8.2 नम्रता, निष्ठा एवं सेवाभक्ति-

अगर पुलिस एवं जनता का सही, उचित पर्याप्त मात्रा में विकास करना है, तो पुलिस के जवानों में प्रशिक्षण एवं कर्तव्य पालन के दौरान न्रमता, निष्ठा एवं सेवाभक्ति के गुणों का विकास करना अति आवश्यक है। तब तक उनमें सेवाभाव उत्पन्न नहीं होगा, जब तक पुलिस अपना तानाशाही रवैया रखेगी। अत: पुलिस में नम्रता, निष्ठा एवं सेवाभक्ति के गुणों का विकास करना अति आवश्यक है।

6.5.3 पुलिस थानों की छवि में सुधार-

आजकल पुलिस थाने का नाम सुनकर लोग पुलिस से कतराने लगते है क्योंकि पुलिस थाने के नाम से लोग डरते हैं। थाने की छवि इतनी खराब हो चुकी है कि लोग पुलिस से नफरत करने लगे हैं। अत: पुलिस व जनता संबंधोको सुधारने के लिए पुलिस थानों की छवि में सुधार करना चाहिए। पुलिस तभी अच्छे संबंधस्थापित कर सकेगी।

6.5.4 जनसंपर्क शाखा की स्थापना-

प्रत्येक पुलिस थाने और मुख्यालय में एक जनसंपर्क शाखा की स्थापना की जाए, ताकि पुलिस जनता की शिकायतों की सुनवाई ठीक तरह करके, उनका विश्वास प्राप्त कर सके। इससे जनता में विश्वास एवं सहयोग की भावना का विकास होगा जिससे अच्छे पुलिस व जनता संबंधस्थापित किए जा सकते है।

6.5.5 व्यवहार में परिवर्तन-

यदि पुलिस कर्मचारी को जनता का विश्वास एवं सहयोग प्राप्त करना है, तब उसे अपने व्यवहार में भी परिवर्तन कर लेना चाहिए। तभी वह जनता से अच्छे संबंधस्थापित करने में सफल हो सकेगा। क्योंकि जिस व्यवहार की अपेक्षा वह दूसरों से करता है, वैसा ही व्यवहार पहले उसे लोगो के साथ करना होगा, तभी अपेक्षित व्यवहार मिल सकेगा। अत: अच्छे पुलिस व जनता संबंधोके लिए अपने स्वयं के व्यवहार में परिवर्तन कर देना चाहिए।

6.5.6 पुलिस पत्रिकाएँ-

पुलिस द्वारा पुलिस कार्यों से सबंधित कुछ पत्रिकाओं का प्रकाशन करना चाहिए, जिनसे जनता को पुलिस की कठिनाईयों का व पुलिस कार्यों का पता चल सके। इन पत्रिकाओं को जिला पुस्तकालयों तथा जनसंपर्क विभाग के दरवाजे के पास रखना चाहिए। ताकि सभी अच्छी तरह पुलिस के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें और पत्रिकाओं के माध्यम से सहयोग व अच्छे संबंधोको स्थापित कर सकें।

6.5.7 पुलिस की भूमिका एवं कार्यविधि का प्रचार-

अच्छे पुलिस व जनता संबंधोकी स्थापना के लिए, पुलिस की विषम परिस्थितियों में निभाई जाने वाली भूमिका एवं उसकी कार्यविधियों का प्रचार, संचार माध्यमों के द्वारा जनता तक पहुंचाया जाना चाहिए। इससे पुलिस के मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों को समझा जा सकता है। तथा उन कठिनाइयों को दूर करने में सहायता प्रदान की जा सकती है। अत: अच्छे पुलिस व जनता संबंधोके लिए पुलिस की भूमिका व उसकी कार्यविधि का प्रचार करना आवश्यक है।

6.5.8 समाजसेवी संस्थाओं से समन्वय व तालमेल-

जनता में अपनी छवि सुधारने, जनता का सहयोग एवं विश्वास प्राप्त करने के लिए, समाज-सेवी संस्थाओं के साथ समन्वय एवं तालमेल बनाए रखना भी काफी लाभप्रद होता है। इससे पुलिस व जनता संबंधोका विकास करने में काफी सहायता मिलती है। समाज सेवी संस्थाएँ समाज में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इससे पुलिस तथा जनता के संबंधोको बनाने में आसानी हो जाती है। अत: इन समाज सेवी संस्थाओ से समन्वय एवं तालमेल रखना चाहिए।

6.5.9 आपराधिक न्यायप्रणाली से आतंरिक सहयोग प्राप्त करना-

पुलिस कार्यों की सफलता या असफलता आपराधिक न्यायप्रणाली जैसे- अभियोजन शाखा और न्यायालयों आदि पर निर्र्भर करती है। अत: इससे पुलिस को अच्छा समन्वय और तालमेल रखना चाहिए। क्योंकि नागरिकों की सुरक्षा करना, उनको न्याय दिलवाना ही पुलिस का प्रमुख कर्तव्य है। निर्दोष व्यक्तियों की सहायता करना भी उनका कर्तव्य है। इसी के द्वारा जनता से अच्छे संबंधस्थापित किए जा सकते हैं। जब पुलिस इन संस्थाओं के साथ-साथ जनता से सहयोग एवं संपर्क बनाए रखेगी तभी वह जनता से अच्छे संबंधस्थापित कर सकती है।

6.5.10 पुलिस कैडेट्स की स्थापना-

जिस प्रकार से सैनिक शिक्षा के प्रशिक्षण के लिए या राष्ट्रीय कार्यों में सहयोग देने के लिए एन.सी.सी. एवं एन.एस.एस. की स्थापना की जाती है या होम गार्डों की स्थापना की गई है, उसी प्रकार स्कूलों एवं कॉलेजों में पुलिस कैडेट्स की स्थापना भी करनी चाहिए। ताकि वह नागरिकों की सहायता एवं सुरक्षा में योगदान दें और अधिक-से-अधिक लोग इस कार्यक्रम में भाग लें एवं पुलिस जनता संबंधबनाए जा सके। इन कैडेट्स को नौकरी में भी विशेषकर पुलिस सेवा में प्राथमिकता देनी चाहिए। इसमें आम जनता एवं नागरिकों में विश्वास की भावना बढ़ती है। और पुलिस कार्यों में सहयोग प्रदान कर सकते है।

6.5.11 विशेष पुलिस या पुलिस ड्राफ्टिंग –

विशेष पुलिस की स्थापना या पुलिस को पुन: ड्राफ्टिंग करना भी समाज व पुलिस संबंधोंके कार्यक्रमों के विकास की दिशा में एक उपयुक्त एवं उचित उपाय है। पुलिस का संगठन प्राचीन एवं जर्जर हो चुका है।, उसमें अनेक परिवर्तनों की आवश्यकता है। अत: अच्छे व स्वस्थ समाज व पुलिस संबंधोंके निर्माण के लिए विशेष पुलिस की स्थापना या पुलिस ड्राफ्टिंग करना आवश्यक है।

6.5.12 पुलिस बोर्डों एवं सलाहकार समितियों का गठन-

पुलिस बलों के समक्ष आने वाली समस्याओं के हल के लिए विभिन्न प्रकार के पुलिस बोर्डों एवं सलाहकार समितियों का गठन किया जाना चाहिए ताकि पुलिस भर्ती तथा अन्य आंतरिक मामलों को सही ढंग से निपटाया जा सके और अच्छे नागरिक भर्ती करके जनता व पुलिस के संबंधमजबूत बनाये जा सके।

6.6. सारांश

गांधीजी के पुलिस, न्याय एवं दण्ड व्यवस्था संबंधी विचार उनके दर्शन से पूर्णत: प्रभावित है वे आध्यात्मिक दर्शन में विश्वास रखते है तथा ईश्वर को सर्वोपरि मानते है इसीलिए वे व्यक्ति एवं समाज के विकास में राज्य की भूमिका को अधिक महत्व नहीं देते है तथा इसे व्यक्ति के विकास में बाधक समझते है इसलिए वे दण्ड एवं प्रशासनिक प्रक्रिया का भी उपयोग समाज में कम से कम चाहते है। इसके साथ ही उन्होंने पुलिस की छवि एक सदाचारी व्यक्ति के रूप प्रस्तुत की है वर्तमान संदर्भो में गांधीजी द्वारा पुलिस व जनता के संबंधोएवं पुलिस के व्यवहार के विचार प्रासंगिक है।

6.7 अभ्यास प्रश्न

1 पुलिस व्यवस्था के विषय में गांधीजी के विचारों को समझाइए ?

2 गांधीजी ने पुलिस एवं जनता के संबंधोमें सुधार के लिए क्या सुझाव दिए है, बताइये ?

6.8 संदर्भ ग्रन्थ

1 महात्मा गांधी जीवन और दर्शन- रोमां रोला।

2 आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन- डॉ अमरेश्वर अवस्थी डॉ रामकुमार अवस्थी।

इकाई - 7

अहिंसा का संघर्ष-प्रकृति एवं स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 गाँधी व्यक्तित्व एवं कृतित्व

7.3 गाँधीजी के विचारों पर प्रभाव डालने वाले तत्व

7.3.1 पारिवारिक एवं बाल्यकाल के परिवेश का प्रभाव

7.3.2 भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव

7.4 गाँधी दर्शन

7.5 अहिंसा का अर्थ-प्रकृति एवं स्वरूप

7.6 अहिंसा की विशेषताएँ एवं लक्षण

7.6.1 अहिंसा मानव जीवन की महानतम् शक्ति है

7.6.2 अहिंसा मानवीय जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्ति

7.6.3 अहिंसा हिंसा की तुलना में अधिक प्रभावशाली

7.6.4 अहिंसा बनाम प्रेम

7.6.5 अहिंसा सक्रिय आध्यात्मिक शक्ति

7.6.6 अहिंसा सत्य की खोज व प्राप्ति का साधन

7.6.7 अहिंसा वैयक्तिक एवं सामाजिक धर्म

7.6.8 अहिंसा हिंसा पर विजय का आध्यात्मिक साधन

7.6.9 मानव स्वभाव और अहिंसा

7.7 अहिंसा के प्रकार

7.7.1 निरपेक्ष अहिंसा एवं सापेक्ष अहिंसा

7.7.2 नकारात्मक अहिंसा एवं सकारात्मक अहिंसा।

7.7.3 प्रयोगकृता के प्रसंग में अहिंसा

7.7.3.1 बहादुरों की अहिंसा

7.7.3.2 व्यावहारिक अहिंसा

7.7.3.3 कायरों की अहिंसा

7.8 अहिंसा के सामाजिक, राजनैतिक व अन्तर्राष्ट्रीय आयाम

7.9 अहिंसा की व्यावहारिकता
7.10 अहिंसा की शक्ति एवं महत्व
7.11 सारांश
7.12 अभ्यास प्रश्न
7.13 संदर्भग्रन्थ

7.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य अहिंसा के अर्थ को समझना, उसका स्वरूप एवं मूल प्रकृति का अध्ययन करना है अहिंसा शब्द नकारात्मक होते हुए भी किस प्रकार सकारात्मक, आध्यात्मिक अर्थ रखता है। अहिंसा के लक्षण, विशेषता तथा उसके प्रकारों का जानना। अहिंसा के व्यावहारिक रूप को समझना तथा सामाजिक, राजनैतिक व अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर अहिंसा की भूमिका महत्व एवं शक्ति का ज्ञान अर्जन करना। अहिंसा जो कि प्राचीनकाल से ही भारत में प्रचलित है को आधुनिक युग के महत्वपूर्ण नेता एवं राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के दर्शन से समझना तथा अहिंसा के विषय में उनके विचारों एवं योगदान पर चर्चा करना।

7.1 प्रस्तावना

गाँधीजी ने सत्य के बाद तथा सत्य की अनुपूरक शक्ति के रूप में अहिंसा को अपने चिन्तन में स्थान दिया है। उन्होंने अहिंसा की परम्परागत व्याख्याओं को नकारते हुए इसे नये अर्थ सन्दर्भो से प्रकाशित किया। अहिंसा के संबंधमें यही गाँधीजी का योगदान है कि उन्होंने इसे एक जीवन्त सक्रिय सिद्धान्त के रूप में पुर्नव्याख्यायित किया है तथा इसकी विश्वसनीयता एवं सफलता को अपने जीवन काल में ही सिद्ध किया। अहिंसा मानव प्रकृति का सहज नियम है तथा मनुष्य की आत्मशुद्धि का भाव है। अहिंसा का अर्थ है किसी भी प्राणी को विचार शब्दों या कार्यों द्वारा हानि न पहुँचाना। प्रत्येक व्यक्ति के प्रति जागृत प्रेम और करूणा अहिंसा का सटीक मापदण्ड है। आज के युग में जहाँ चारों ओर अराजकता फैली हुई है तथा विश्व के कोने कोने में हिसंक वारदातें, अमानुशिक कर्म हो रहे है अहिंसा की प्रासंगिकता स्वयं सिद्ध है।

7.2 गाँधी-व्यक्तित्व एवं कृतित्व

महात्मा गाँधी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 ई. को गुजरात के पोरबन्दर नामक स्थान पर एक वैष्णव परिवार में हुआ था। उनके पिता करमचंद गाँधी पोरबन्दर, राजकोट आदि रियासतों के दिवान रहे थे। उनका विवाह बारह वर्ष की अल्प आयु में ही कस्तूरबाई के साथ हो गया था। गाँधी जी की प्रारम्भिक शिक्षा पोरबन्दर में हुई थी। माध्यमिक शिक्षा पूरी होने के बाद 1887 ई. में वे बैरिस्टर की शिक्षा के लिए लन्दन चले गये। इंग्लैण्ड जाते समय अपनी माँ द्वारा दिलाई तीनों प्रतिज्ञाओं मदिरा, परायी स्त्री और मांस को न छूने को उन्होंने निभाया तथा श्रीमद्भगवद्गीता को अपने जीवन की पथ प्रदर्शक माना। सन् 1891 में गाँधी जी बैरिस्टर बनकर भारत लौटे। परन्तु वकालत के व्यवसाय में उन्हें विशेष सफलता नहीं

मिली। अन्तत: उन्हें दादा अब्दुल्ला एवं कम्पनी नामक व्यापारिक संस्था की ओर से दक्षिण अफ्रीका में कानूनी कार्य की देखरेख का काम मिल गया।

दक्षिण अफ्रीका प्रवास गाँधी जी के जीवन, राजनीति एवं इतिहास के लिए एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ। यहीं पर गाँधी जी का राजनीतिक जीवन प्रारंभ हुआ। प्रिटोरिया यात्रा के दौरान उन्हें दक्षिण अफ्रीका की गोरी सरकार की रंग भेद की नीति का व्यक्तिगत तौर पर सामना करना पड़ा तथा भारतीयों के साथ हो रहे अपमान जनक व्यवहार ने उन्हें अंदर तक झकझोर दिया तब उन्होंने अहिंसक सत्याग्रह आंदोलनों का संचालन किया तथा अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त की।

गाँधीजी के नेतृत्व में भारतीय समुदाय द्वारा किये गये सत्याग्रह के फलस्वरूप दक्षिण अफ्रीका की गोरी सरकार को भेद-भावपूर्ण नीतियों को रद्द करना पड़ा और भारतीयों के अनेक अधिकारों को कानूनी स्वीकृति प्रदान करनी पड़ी। दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह का सफल प्रयोग करने के बाद गाँधी 1914 में भारत लौट आये।

भारत में आकर गाँधीजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन देशसेवा में लगा दिया तथा अनेक अहिंसक सत्याग्रह आंदोलनों का संचालन किया। 1917 में चम्पारन में नील की खेती करने वाले किसानों, 1918 में अहमदाबाद की सूती कपड़ा मिलों के मजदूरों तथा खेड़ा (गुजरात) के किसानों की शिकायत दूर करने के लिए अहिंसक आंदोलनों को सफलता पूर्वक अंजाम दिया।

सन् 1920 में लोकमान्य तिलक की मृत्यु के बाद गाँधी जी भारतीय राजनीति के मुख्य कर्णधार एवं शिखर पुरुष बन गये। जलियावाला बाग हत्याकाण्ड व रौलट एक्ट के विरोध में उन्होंने 1920 में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। 1930-31 में नमक कानून तोड़ कर सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ किया तथा 1942 से भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ किया जिसमें गाँधी जी ने करो या मरो का नारा दिया।

अग्रेंजों की फूट डालो और शासन करो की नीति के अन्तर्गत 15 अगस्त 1947 को भारत और पाकिस्तान अलग-अलग राज्यों के रूप में सामने आये। इस दौरान चहुँ ओर फैले साम्प्रदायिक दंगो की ज्वाला को शांत करने में लगे गाँधी जी को 30 जनवरी 1948 को नाथूराम गोडसे ने गोली मार दी। देश की स्वतंत्रता के महान व्यक्ति और अहिंसा के प्रखर उद्घोषक की मृत्यु हो गयी।

7.3 गाँधी जी के अहिंसावादी विचारों पर प्रभाव डालने वाले तत्व

7.3.1 पारिवारिक एवं बाल्यकाल के परिवेश का प्रभाव

गाँधी जी को सत्य निष्ठा, धर्म के प्रति आस्था, कष्ट सहने की तत्परता, न्याय में गहरी आस्था अपने पिता से संस्कारों में मिली। जिन्होंने कई रियासतों का कार्य करते हुए अपने दायित्वों को दृढ़ता एवं निष्ठा से निभाया। अपनी माँ पुतली बाई से गाँधी ने धर्म परायणता नियमबद्धता, सहनशीलता, सहिष्णुता आदि गुण ग्रहण किए।

इस प्रकार गाँधीजी का लालन-पालन धार्मिक वातावरण में हुआ था। पौराणिक एवं धार्मिक कथाओं का उनके बालपन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। श्रवण कुमार, हरिश्चन्द्र के चरित्रों ने उनके जीवन पर

निर्णायक प्रभाव डाला। वैष्णव परिवार में जन्म लेने के उपरान्त तथा कई धार्मिक समारोह व उत्सवों का हिस्सा बनने के बावजूद बचपन से ही उन्हें यह सिखाया गया कि ईश्वर आडम्बरों से नहीं बल्कि मन की सच्ची श्रद्धा व विश्वास से मिलता है।

7.3.2 भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव –

गाँधीजी पर प्राचीन भारतीय साहित्य और पाश्चात्य साहित्य दोनों ही का प्रभाव पड़ा था, किन्तु उन पर अधिक व्यापक प्रभाव भारतीय ग्रन्थों का ही पड़ा। अध्यात्म उनका प्रिय विषय है पतंजलि का 'योग सूत्र', 'उपनिषद' तथा 'वेदों', 'रामायण', 'महाभारत' जैसे धार्मिक ग्रन्थ उनके पथ प्रदर्शक बने। गाँधी जी ने कर्म पर सदैव बल दिया, वह गीता की ही देन है।

जैन, बौद्ध धर्म के ग्रन्थों एवं साहित्य का प्रभाव गाँधी जी के अहिंसावादी विचारो में देखा जा सकता है। श्रीमद भगवद् गीता के नि"काम कर्म के विचार ने उन्हें कर्मयोगी बनाया। गीता उन्हें अंधेरे में उजाला, संदेह में विश्वास, हतोत्साह में आशा की किरण दिखाती है। उपनिषद से उन्होंने ईश्वर के अद्वैत रूप को समझा तथा संसार की प्रत्येक वस्तु एवं जीव मात्र में ईश्वर को देखा।

गाँधी जी ने बाईबिल का भी अध्ययन किया तथा उससे उन्होंने बुराई को भलाई से, शत्रुता को मित्रता से, घृणा को प्रेम से, अत्याचार को प्रार्थना से जीतना सीखा। इस्लाम की शान्तिवादी शिक्षाओं का प्रभाव भी गाँधी जी पर पड़ा।

धार्मिक ग्रन्थों के अलावा गाँधी जी पर जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन्टू दिस लास्ट' और 'काऊन ऑफ वाइल्ड ऑलिव्स' का अत्यधिक प्रभाव था। उन्होंने सर्वोदय तथा शारीरिक श्रम के सिद्धान्त को जॉन रस्किन से ग्रहण किया। गाँधी जी टॉल्सटाय के प्रशंसकों में से थे। टॉल्सटाय के नैतिक दर्शन का उन पर अत्यधिक प्रभाव डाला, और अहिंसा में उनका विश्वास दृढ़ हो गया। गाँधी जी ने स्वयं कहा है- ''टॉल्सटाय उन तीन व्यक्तियों में से एक है जिन्होंने मेरे जीवन पर सबसे अधिक आध्यात्मिक प्रभाव डाला है।'' भारत में चल रहे सांस्कृतिक, दार्शनिक एवं धार्मिक सुधारवादी आन्दोलनों का प्रभाव गाँधी जी पर पड़ा। विवेकानन्द के स्वदेश प्रेम की भावना का प्रभाव उन पर विशेष रूप से पड़ा था।

7.4 गाँधीवाद या गांधी दर्शन

गाँधी सत्य, अहिंसा, प्रेम और भ्रातृभाव के पुजारी रहे, गाँधी जी मूलत: राजनीतिक विचारक नहीं थे। उन्होंने अपने पूरे जीवन को सत्य के अनुसंधान की प्रक्रिया के प्रति समर्पित कर दिया था। उन्होंने स्वयं लिखा ''गाँधी वाद नाम की कोई चीज नहीं है और न ही मैं अपने पीछे कोई ऐसा सम्प्रदाय छोड़कर जाना चाहता हूँ ..... मैंने तो व्यक्तिगत शैली में शाश्वत सत्य को दैनिक जीवन और उसकी समस्याओं पर लागू करने का प्रयोग मात्र किया है।''

गाँधीजी का यह कथन कि उन्होंने किसी वाद का प्रतिपादन नहीं किया। वस्तुत: उनकी विनम्रता का परिचायक है। गाँधीजी ने राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक प्रणाली के विषय में एक मौलिक एवं नवीन दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया है।

गाँधीवाद एक ऐसा वाद है जो सबके कल्याण की बात करता है। वह अहिंसा को ब्रह्मास्त्र की तरह सर्वश्रेष्ठ एवं असरकारक मानता है। शत्रुता के स्थान पर मित्रता, घृणा के स्थान पर प्रेम का सबक सिखाता है।

गाँधीजी मानव मात्र को एक ही ईश्वर की सन्तान मानते है, तथा सभी मनुष्य एक ही उद्देश्य, सत्य के साक्षात्कार या ईश्वर से एकाकार हो जाने के लिए निर्दिष्ट है। अत: सभी व्यक्तियों को क्षुद्र स्वार्थो या हितों से उपर उठकर अपना आध्यात्मिक विकास करना चाहिए। उनके अनुसार अहिंसा वह साधन है जिसके द्वारा सत्य की साधना की जा सकती है अहिंसा इस प्रकार अपने आप में साध्य नहीं होने पर भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि उसके बिना सत्य की साधना असंभव है।

अहिंसा गाँधी का अवि"कार नहीं है। अहिंसा का विचार भारतीय उपनिषेधों बुद्ध, महावीर के दर्शनों तथा अन्य धर्मों में शताब्दियों पहले प्रतिपादित किया गया है। परन्तु गाँधी जी ने अहिंसा को युग संदर्भों में पुर्नव्याख्यायित कर उसका सफल प्रयोग भी किया।

परम्परागत एवं स्थूल रूप में अहिंसा एक नकारात्मक शब्द है, जिसका अर्थ है-हिंसा का अभाव या हिंसा का निषेध। किंतु गाँधी जी अहिंसा के केवल नकारात्मक स्वरूप को स्वीकार नहीं करते है अपितु केवल नकारात्मक अर्थ में उसे अपूर्ण मानते है तथा अहिंसा के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पक्षों पर बल देते है। अहिंसा का अर्थ किसी को मन वचन और कर्म से दु:ख न पहुँचाने से अधिक गहरा है और यह अर्थ तभी पूर्ण होगा, जब इस नियम की सकारात्मक प्रेरणा प्राणी मात्र के प्रति निरपेक्ष, निरपवाद प्रेम एवं भलाई की भावना हो।

गाँधीजी का दर्शन सत्य अहिंसा, प्रेम, भ्रात्त्व जैसे सार्वकालिक आदर्शो पर आधारित है, इसलिए उनके विचार बहुमार्गी और व्यापक है। वे जहां एक ओर ऋषियों की भाषा बोलते है तो इसकी ओर आधुनिक भारत के सर्वोत्तम नेता के रूप में सामने आते है। उनके विचारों में कोई एक सिद्धान्त या पद्धति नहीं है। वे मानव सेवा को सर्वश्रेष्ठ कर्म मानते है। बी.पी. सीता रमैया ने ठीक ही कहा है कि ''गाँधीवाद सिद्धान्तों का, मतों का, नियमों और आदर्शो का समूह नहीं है, प्रत्युत वह एक जीवन शैली या जीवन दर्शन है। यह एक नयी दिशा की ओर संकेत करता है, अथवा मनुष्य के जीवन तथा समस्याओं के लिए प्राचीन समाधान प्रस्तुत करता है।

7.4 अहिंसा का अर्थ एवं प्रकृति

अहिंसा का अर्थ है मन वचन और कर्म से किसी को कष्ट न देना अर्थात किसी का दिल न दुखाना। अहिंसक व्यक्ति दया, क्षमा, प्रेम, अनुराग, सहानुभूति और सत्य की मूर्ति होता है।, वह अज्ञातशत्रु होता है, विश्व प्रेम, जीव मात्र पर करूणा तथा जीव मात्र की सेवा के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देता है इस प्रकार अहिंसा आत्मा का गुण है।

गाँधीजी प्रत्येक व्यक्ति के प्रति जागृत प्रेम या करूणा को अंहिसा का आधारभूत मापदण्ड मानते थे। इस प्रकार अहिंसा का सार शाश्वत प्रेम है यह प्रेम न केवल अपने मित्रों और सगे संबंधियोंके लिए हो, वरन् सच्चा अहिंसक दृष्टिकोण अपने विरोधियों एवं शत्रुओं से भी प्रेम करने के लिए प्रेरित करे। गाँधी जी ने

कहा '' अहिंसा उस व्यक्ति के प्रति प्रेम संवेदना तथा सेवा के भाव में निहित है, जिससे घृणा करने के लिए कारण उपस्थित हो, ऐसे व्यक्ति के प्रति प्रेम करने में जो हमें प्रेम करता हैं, अहिंसा निहित नहीं है।''

गाँधी जी अहिंसा के विचार को स्थूल एवं जड़ नहीं मानते है, बल्कि वह जीवन की तरह गत्यात्मक, दूसरों के प्रति नि:स्वार्थ प्रेम और उन्हें पीड़ा व कष्ट से मुक्त करने की इच्छा व प्रेरणा से गति पाता है। उन्होंने उदाहरण दिया है- ''यदि मैं किसी ऐसे व्यक्ति पर जो मुझ पर आक्रमण करे, बदले में प्रहार न करूँ, तो मेरा यह कृत्य अहिंसक हो भी सकता है और नहीं भी। यदि मैं भय के कारण उस पर प्रहार नहीं करता हूँ तो यह निश्चित रूप से अहिंसा नहीं है। किन्तु यदि मैं पूर्णत: सचेतन होकर, प्रहार करने वाले के प्रति करूणा और प्रेम के कारण उस पर हमला नहीं करता हूँ तो यह निश्चित रूप से अहिंसा है।''

इसका अर्थ है कि अहिंसा का सकारात्मक रूप भी है, जिसमें प्रेम, दया, क्षमा, स्वबलिदान, आवश्यक है तथा अहिंसा आस्था एवं निष्ठा का विषय है, कोई व्यावहारिक नीति नहीं है। क्योंकि एक नीति के रूप में यह प्रभावकारी परिणाम नहीं दे सकती है, परन्तु यदि कोई व्यक्ति अहिंसा में अडिग निष्ठा एवं विश्वास रखता है तो वो कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी पूर्ण निभीषिकता के साथ मानवीय सद्गुण के रूप में अहिंसा को आत्मसात् करके रखता है।

गाँधीजी का मत है कि अहिंसा के साधक के समक्ष केवल एक ही भय होता है वह है ईश्वर का भय। अहिंसक व्यक्ति नश्वर शरीर से अधिक आत्मा की शाश्वता में विश्वास रखता है, इसलिए वह अपने क्षणभंगुर शरीर का मोह त्यागकर सत्य की खोज में प्रवृत रहता है।

गाँधीजी का अहिंसा का क्षेत्र बहुत व्यापक है इसके अन्तर्गत अपरिग्रह, अस्तेय, अस्वाद आदि सब शामिल है आवश्यकता से अधिक लेना, अविनय, तिरस्कार, अंहकार, झूठ बोलना, ठगना, कम तोलना, विवशता का अनुचित लाभ उठाना, द्वैष, बैर, छीनना, क्रोध, यह हिंसा है।

गाँधीजी की अहिंसा शुद्धता और स्वच्छता पर आधारित है इसमें बैरभाव, अंहकार, घृणा, द्वैष, आदि तत्वों का लेषमात्र भी स्थान नहीं है। अपने पूर्ण अर्थ में अहिंसा सर्वोच्च दयालुता तथा सर्वोच्च आत्म बलिदान है। इसी कारण वे अहिंसा के स्वरूप को संगठित मानते है। जिस प्रकार धर्म लोगों को संगठित कर सकता है, उसी प्रकार अहिंसा भी लोगों को संगठित कर सकती है। उनका विश्वास था जहाँ कहीं भी अन्याय, भय, अत्याचार या विषमता है वहाँ अहिंसा को संगठित कर एक अस्त्र की तरह प्रयोग किया जा सकता है। दक्षिण अफ्रीका, चम्पारन, खेड़ा तथा सम्पूर्ण भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अहिसंक साधनों द्वारा जनमत को संगठित कर गाँधीजी ने यह सिद्ध कर दिया कि अहिंसा को संगठित कर सामाजिक विषमताओं को दूर किया जा सकता है वहीं यह युद्ध का नैतिक विकल्प भी प्रस्तुत करती है।

7.6 अहिंसा की विशेषताएँ एवं लक्षण

7.6.1. अहिंसा मानव जीवन की महानतम् शक्ति है-

अहिंसा मानव जाति के पास उपलब्ध शक्तियों में सर्वश्रेष्ठ है। अहिंसा विश्व के विनाशकारी शस्त्रों के योग की तुलना में अधिक शक्तिशाली और प्रभावकारी है। अहिंसा एक ऐसी शक्ति है जो गतिमान है तथा

सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है और इसमें आत्म शुद्धि का भाव समाहित है। अहिंसा की शक्ति उसे अपनाने वाले व्यक्ति की दृढ़ इच्छा शक्ति, अहिंसा में आस्था तथा हिंसा से विरक्ति के भाव पर निर्भर करती है।

7.6.2. अहिंसा मानवीय जीवन की स्वाभाविक वृत्ति है –

मानव की मूल प्रवृत्ति हिंसा की नहीं बल्कि अहिंसा की है। जिस प्रकार पशु के साथ पशुता या हिंसा अन्तर्व्याप्त है। उसी प्रकार मनुष्य के साथ अहिंसा की प्रेरक शक्ति अन्तर्निहित है।

7.6.3. अहिंसा हिंसा की तुलना में अधिक प्रभावशाली –

अहिंसा हिंसा की तुलना में नैतिक, और व्यावहारिक दोनों ही दृष्टियो से अधिक प्रभावशाली है, इसलिए अहिंसा की शक्ति हिंसा से कई गुना अधिक प्रबल होती है। हिंसा से किसी भी समस्या का समाधान नहीं हो सकता, वह केवल हिंसा को जन्म दे सकती है, जबकि अहिंसा से हिंसा को भी अहिंसा में परिवर्तित किया जा सकता है। अहिंसा में पराजय की कोई संभावना नहीं होती है, जबकि हिंसा में पराजय संभव है।

7.6.4. अहिंसा बनाम प्रेम –

अहिंसा का मुख्य तत्व प्रेम है जो व्यक्ति जीव मात्र के प्रति प्रेम, दया, करूणा रखता है वही अहिंसा के व्रत का पालन कर सकता है इस प्रकार अहिंसा के लिए जीवमात्र से प्रेम व ईश्वर में आस्था अत्यन्त आवश्यक है।

7.6.5. अहिंसा एक सक्रिय आध्यात्मिक शक्ति है-

सत्य के बाद अहिंसा को संसार की सबसे सक्रिय शक्ति माना गया है गाँधीजी के अनुसार ''सत्य के बाद असल में अहिंसा ही संसार में बड़ी से बड़ी सक्रिय शक्ति है।'' एक सक्रिय आध्यात्मिक शक्ति के रूप में अहिंसा जीवमात्र के बीच एकता, प्रेम, करूणा सहयोग तथा सेवा की भावना उत्पन्न करती है।

6.7.6. अहिंसा सत्य की खोज एवं प्राप्ति का साधन है-

अहिंसा को साध्य नहीं अपितु साधन माना गया है गाँधी जी के अनुसार अहिंसा सत्य की प्राप्ति का साधन है तथा सत्य स्वयं ईश्वर है अर्थात् ईश्वर तक पहुँचने के लिए उपयुक्त साधन अहिंसा ही है।

6.7.7. अहिंसा वैयक्तिक के साथ सामाजिक धर्म-

प्राचीन काल में अहिंसा को एक वैयक्तिक धर्म की तरह देखा जाता था परंतु गाँधी जी ने अहिंसा की अपनी अवधारणा में इसे वैयक्तिक के साथ ही सामाजिक धर्म भी माना। गाँधी जी के शब्दों में ''मैंने यह विशेष दावा किया है कि अहिंसा सामाजिक चीज है केवल वैयक्तिक चीज नहीं।'' इस प्रकार अहिंसा व्यक्तिगत उत्थान के साथ-साथ समाज के विकास में भी पूर्ण सहयोग प्रदान करती है।

7.6.7. अहिंसा हिंसा पर विजय का आध्यात्मिक साधन-

हिंसा शस्त्रों पर आधारित स्थूल बल है, इसलिए उस पर अहिंसा के सूक्ष्म अस्त्र की विजय सुनिश्चित है, अन्याय, अत्याचार, शोषण दमन, ये सभी हिंसा के ही रूप है, और इन पर अहिंसा की मदद से विजय पायी जा सकती है। अहिंसा की शक्ति में गाँधी जी का अटूट विश्वास था उनका कहना था - ''यदि एक ओर, एक करोड़ व्यक्तियों का समूह हो और दूसरी ओर अहिंसा का सिपाही अकेला ही हो तो भी वह शस्त्रो की हिंसक शक्ति के सामने समर्पण नहीं करेगा।'' इस प्रकार अहिंसा की शक्ति प्रचण्ड व अजेय है।

7.6.9 अहिंसा का अन्य गुणों से सम्बन्ध-

अहिंसा एक सद्गुण है उसका सम्बन्ध अन्य सद्गुणों जैसे सत्य, दया, करूणा, प्रेम आदि से है। वस्तुत: गाँधी जी ने सत्य और अहिंसा के बीच इतना घनिष्ठ सम्बन्ध माना है कि दोनों के एक दूसरे के बिना अपूर्ण माना है। अहिंसा के बिना सत्य पूर्ण नहीं हो पाता है तथा सत्य के बिना अहिंसा आधारहीन हो जाती है सत्य और अहिंसा में साध्य-साधन का सम्बन्ध है।

प्रेम की पराकाष्ठा अहिंसा ही मानी जाती है इसलिए कहा जाता है कि जिस व्यक्ति के हृदय में मानव मात्र के लिए प्रेम होगा वहीं अहिंसक हो सकता है इसी प्रकार बिना दया एवं करूणा, अहिंसा संभव नहीं है और जब हम अहिंसक अर्थव्यवस्था की बात करते है तो अस्तेय एवं अपरिग्रह से भी अहिंसा का व्यक्तिगत संबंधदेखते है।

7.6.10 मानव स्वभाव और अहिंसा –

मानव और पशु में जो मुख्य अंतर है। वह स्वभाव एवं प्रवृति गत अंतर है। मानव के स्वभाव का अध्ययन करने पर यह बात सामने आती है कि मानव मूलत: अहिंसा प्रिय जीव है और वह शांति से रहना पसंद करता है। अमृत संतान होने के कारण वह जीवन रक्षक अहिंसक प्रवृत्ति को जीवन विरोधी हिसंक प्रवृत्ति की तुलना में अधिक पसंद करता है तथा सभी प्रकार के आवेगों क्रोध, काम, द्वेष आदि से प्रभावित होकर उग्र होने के बाद भी सहज अवस्था में आते ही वह हिंसक आचरण की अपेक्षा अहिंसक रहना पसंद करता है, क्योंकि यही उसका मूल स्वभाव है इसलिए आवेगों के समाप्त होते ही मनुष्य का विवेक उसे पुन: अहिंसा को अपनाने के लिए प्रेरित करता है। गाँधी जी के अनुसार - ''अहिंसा हमारी प्रजाति का शाश्वत नियम है, जबकि हिंसा पशुओं का नियम है। पशु भौतिक शक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते है ..... अहिंसा एक ऐसा आदर्श है जिसकी ओर व्यक्ति प्राकृतिक रूप से बिना इच्छा किये ही चलते है .....।''

मानव की मूल प्रवृत्ति अहिंसा ही है इसी कारण वह मांसाहार से शाकाहार की ओर बढ़ रहा है अकेले रहने के स्थान पर समुदाय आधारित व्यवस्था में रह रहा है तथा मानव सभ्यता को विकसित कर रहा है।

7.7 अहिंसा के प्रकार

7.7.1 निरपेक्ष अहिंसा एवं सापेक्ष अहिंसा-

समस्त जड़ चेतन एवं दृश्य-अदृश्य सृष्टि के प्रति पूर्ण प्रेम व समर्पण की अवस्था निरपेक्ष अहिंसा कहलाती है। यह अंहिसा का उच्चतम एवं पूर्ण विकसित रूप है, जिसे संसार की सक्रिय गतिशील सृजनात्मक आध्यात्मिक शक्ति भी कह सकते है निरपेक्ष अहिंसा ईश्वरीय गुण है जिसका पालन सामान्य मनुष्य द्वारा संभव नहीं है।

मानव द्वारा सापेक्ष अहिंसा का पालन किया जा सकता है। सापेक्ष अहिंसा को व्यवहारिक अहिंसा भी कहा जा सकता है। इसमें मानव स्वयं अपने अथवा समाज की रक्षा के लिए हिंसा कर सकता है, परंतु वह सदैव यह कोशिश करता है कि हिंसा कम से कम हो, अर्थात् परिस्थितिवश वह हिंसा कर सकता है। सापेक्ष अहिंसा की धारणा के अनुसार मानव जीवित रहते हुए हिंसा से नहीं बच सकता है। ऐसी हिंसा

उसके अस्तित्व से जुड़ी है, इसीलिए सापेक्ष अहिंसा के अनुसार जो व्यक्ति न्यूनतम हिंसा करते हुए जीवन व्यतीत करता है उसे अहिंसा व्रत का पालन करने वाला माना जाता है।

7.7.2 नकारात्मक अहिंसा एवं सकारात्मक अहिंसा –

नकारात्मक अहिंसा का अर्थ है अभावात्मक या निष्क्रिय अहिंसा। सिद्धान्त: निरपेक्ष अहिंसा के समान ही नकारात्मक अहिंसा, हिंसा के पूर्ण निषेध में विश्वास करती है, किन्तु व्यवहार में यह सापेक्ष अहिंसा के समान ही न्यूनतम हिंसा की मजबूरी को स्वीकारती है। यह अहिंसा सापेक्ष अहिंसा की तुलना में अधिक कठोरता से अहिंसा का पालन करती है।

सकारात्मक अहिंसा का अर्थ, भावात्मक या सक्रिय अहिंसा से है। सकारात्मक अहिंसा मूल रूप से प्राणी मात्र के प्रति भावनात्मक रूप से सक्रिय प्रेम एवं करूणा है। यहाँ सक्रिय प्रेम एवं करूणा का अर्थ है अपने से भी अधिक दूसरो को प्रेम करना और इस प्रेम को अपने मित्रों या संबंधियों तक सीमित न रखकर शत्रुओं तथा विरोधियों के प्रति भी प्रेम पूर्ण भाव रखने में है सकारात्मक अहिंसा को गाँधी जी ने प्रेम की पराकाष्ठा माना है।

7.7.3. प्रयोगकृता के प्रसंग में अहिंसा के प्रकार -

7.7.3.1 बहादुरों की अहिंसा - गाँधी जी के अनुसार सर्वोच्च अहिंसा का पालन बहादुर व्यक्तियों द्वारा ही किया जा सकता है, क्योंकि बहादुरों की अहिंसा, लाचारी या विवशता के कारण नहीं, अपितु अहिंसा के प्रति नैतिक दायित्व एवं आस्था के कारण होती है। इस प्रकार अहिंसा शूरवीर का लक्षण है। यह 'अभय की परमावस्था' एवं वीरता की परिसीमा है। इस श्रेणी की अहिंसा सर्वाधिक प्रभावशाली होती है। यह आत्मिक एवं नैतिक बल का परिणाम है। इस प्रकार की अहिंसा का पालन करने वालों में प्रचण्ड आत्मबल होता है और वह कठिन से कठिन परिस्थिति का भी सामना कर सकता है। अपने प्रतिरोधी का बलपूर्वक नहीं अपितु प्रेम से हृदय परिवर्तन कर सकता है।

7.7.3.2 व्यवहारिक अहिंसा - यह अहिंसा हीन श्रेणी की मानी जाती है जिसमें अहिंसा का पालन एक नीति के रूप में किया जाता है। वह एक ऐसी अहिंसा है जिसे सुविधा के सिद्धान्त पर आधारित अहिंसा माना जा सकता है। इसे दुर्बल व्यक्ति की अहिंसा कहा जा सकता है। यह अहिंसा नैतिक आस्था के परिणामस्वरूप नहीं, अपितु किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कार्य करती है, इसलिए इसका फल सीमित होता है, चूँकि व्यक्ति अपनी अशक्तता के कारण अहिंसक होता है, अत: वह अपनी सुविधानुसार कभी भी हिंसा को अपना सकता है। वह हिंसा से होने वाली हानि का अनुमान कर अहिंसा को सुविधाजनक नीति के रूप में अपना लेता है। 1946 -47 में भारतीयों के द्वारा स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान अपनाई गई नीति को गाँधीजी ने इसी श्रेणी में रखा है।

7.7.3.3 कायरों की हिंसा - कायरों की अहिंसा, अहिंसा का निकृष्टतम रूप है। गाँधी जी इसे अहिंसा की संज्ञा नहीं देते है कायरता अहिंसा के आवरण में हिंसा ही है। जिस प्रकार अग्नि और जल एक साथ नहीं रह सकते, उसी प्रकार अहिंसा और कायरता साथ-साथ नहीं रह सकते। गाँधी जी का स्पष्ट मत था कि एक हिंसक व्यक्ति को अहिंसक बनाया जा सकता है, परन्तु एक कायर व्यक्ति को अहिंसक नहीं बनाया जा सकता। कायर व्यक्ति का ईश्वर में विश्वास नहीं होता और वह अहिंसा के आवरण में सत्य

का निषेध करता है। गाँधी जी ने दृढ़ शब्दों में कायरता से हिंसा को श्रेयस्कर माना है उनके शब्दों में ''यदि मुझे हिंसा और कायरता में से चयन करने दिया जाये तो मैं हिंसा का चुनाव करूंगा। मैं एक कायर व्यक्ति को उसी प्रकार अहिंसा का उपदेश नहीं दे सकता। जैसे किसी अंधे व्यक्ति को किसी सुन्दर दृश्य का आनन्द लेने के लिए नहीं कहा जा सकता। अहिंसा तो निश्चित रूप से बहादुरी का क्षेत्र है।

7.8 अहिंसा के सामाजिक राजनैतिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय आयाम

गाँधीजी के अनुसार अहिंसा केवल व्यक्ति का आभूषण नहीं है। अपितु जीवन का सर्वोच्च नियम है। अत: अहिंसा को सामाजिक व राजनीतिक दोनों क्षेत्रों में भी प्रयुक्त करना चाहिए। उनका कथन था कि अहिंसा के आदर्श को व्यक्तिगत गुण तक सीमित न रखकर, मनुष्य में स्थित व्यापक और रचनात्मक शक्ति के दोहन के लिए प्रयोग करना चाहिए।

गाँधी जी की दृढ़ मान्यता है कि एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था अहिंसा पर ही आधारित हो सकती है। उन्होंने अहिंसा को राजनैतिक, सामाजिक तथा व्यवस्था की प्रेरकरूप में प्रयुक्त किया, क्योंकि उनका मानना था कि यदि अहिंसा एक व्यक्ति तक सीमित रहेगी तो वह सर्वोच्च नहीं बन पायेगी एवं ऐसी अहिंसा की कोई उपयोगिता नहीं होती है। जब तक वह व्यावहारिक संसार में घटित न हो। व्यावहारिक संसार में घटित अहिंसा से ही समाज में नि:स्वार्थ सेवा की भावना जागृत हो सकती है। इस प्रकार सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अहिंसा के सिद्धान्त को प्रयुक्त कर अन्याय, दमन, शोषण, उत्पीड़न का सामूहिक तौर पर प्रतिकार किया जा सकता है। गाँधी जी के अनुसार अहिंसा राष्ट्र के सामाजिक और राजनीतिक जीवन को गतिशील करने के साथ ही न्याय सम्मत अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की भी एक विश्वसनीय प्रेरक शक्ति बन सकती है। अहिंसा के द्वारा बड़ी से बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का समाधान किया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में न्याय की प्रतिष्ठा एवं शांति की स्थापना के लिए अहिंसा ही एकमात्र उपाय है। अहिंसक संघर्ष में विजय निश्चित है। जो राष्ट्र अहिंसा को अपना शस्त्र बना लेते है उन्हें जीतना असंभव हो जाता है। गाँधी जी का मत था कि 'युद्ध और आक्रमण' अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों के समाधान में हिंसा के सिद्धान्त को अपनाने का परिणाम है। अब तक हुए युद्धों ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर युद्धों या हिंसा की निरर्थकता को सिद्ध कर दिया है। युद्ध का समर्थन करना पशुता को समर्थन करने के समान है। इस पशुता तथा अस्त्र-शस्त्रों की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ती होड़ को अहिंसा का एक सार्वभौमिक सिद्धान्त बनाकर ही दूर किया जा सकता है। इस प्रकार अहिंसा के सामाजिक राजनैतिक व अन्तर्राष्ट्रीय आयाम बहुत व्यापक है।

7.9 अहिंसा की व्यावहारिकता

मनुष्य जन्म में रहते हुए किसी भी व्यक्ति के लिए पूर्ण और निरपेक्ष अर्थ में अहिंसक होना संभव ही नहीं है। पूर्ण अहिंसा के मार्ग पर हमारा अस्तित्व ही एक बाधा है, और बिना अस्तित्व के हम कुछ भी नहीं है। जैसे जीवित रहने के लिए हमें सांस लेनी पड़ती है और हमारी एक सांस के साथ करोड़ो जीवाणु नष्ट हो जाते है, जीवित रहने के लिए किए जाने वाला भोजन भले ही वह शाकाहार ही क्यों न हो, कई वनस्पतियों को क्षति पहुँचाता है। इस प्रकार मनुष्य को जीवित रहने के लिए तथा अपने अस्तित्व को

बनाये रखने के लिए एक सीमा तक हिंसा करने के लिए विवश होना पड़ता है। समाज में रहते हुए कारण अकारण अन्य व्यक्तियों द्वारा की गई हिंसा तथा नैतिक दोषों का उत्तदायित्व भी मनुष्य को निभाना पड़ता है और अशंत: अन्य व्यक्तियों के द्वारा की गई हिंसा में समाज में रह रहे लोग भी शामिल माने जाते है। इस प्रकार मानव हिंसा से दूर नहीं रह सकता।

गाँधी जी ने स्पष्ट किया कि अहिंसा का व्यावहारिक अर्थ होता है जानबूझकर हिंसा न करना तथा अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए न्यूनतम संभव हिंसा का प्रयोग करना। किसी भी कार्य को करने के पीछे जो उद्देश्य होता है वही निर्धारित करता है कि किया गया कार्य अनिवार्य न्यूनतम हिंसा के अन्तर्गत है अथवा नहीं। जैसे फसल को नुकसान पहुँचाने वाले किटाणुओं पर कीटनाशक का प्रयोग एक व्यापक उद्देश्य 'मानव के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए ''अन्न का उपयुक्त मात्रा में उत्पादन''' से सम्बन्धित है। अत: यह हिंसा नहीं है। जीवन की व्यावहारिक परिस्थितियों में अहिंसा का सिद्धान्त एक सापेक्ष नियम है। इसका पालन मनुष्य को अपने विवेक तथा मर्यादा का इस्तेमाल कर करना चाहिए।

7.10 अहिंसा की शक्ति व महत्व

अहिंसा एक क्रांतिकारी एवं अजेय शस्त्र है जो बड़ी से बड़ी शक्ति को जीतने में समर्थ है तथा इसकी मदद से अन्याय एवं शोषण पर आधारित हिसंक व्यवस्था, का अंत किया जा सकता है अहिंसा के महत्व को बताते हुए गाँधी जी ने अहिंसा को मानव जाति के पास उपलब्ध महानतम शक्ति माना है। वे अहिंसा को सभी विनाशकारी अस्त्रों से अधिक प्रभावकारी एवं शक्तिशाली मानते है। अहिंसा की शक्ति असीमित है, जबकि संसार के सभी शस्त्रों की शक्ति सीमित है। अहिंसा की शक्ति सीमाहीन है, क्योंकि यह ईश्वरीय शक्ति का ही मानवीय रूपान्तरण है। चूँकि अहिंसा, सत्य एवं प्रेम एक दूसरे से जुड़े है तथा एक दूसरे के बिना अधूरे है। अत: ये सदैव साथ में आते है, और एक जीवंत शक्ति बन जाते है जिससे पूरा संसार नियन्त्रित एवं संचालित होता है।

मनुष्य की मूल प्रवृत्ति का आभूषण अहिंसा है जब मनुष्य आवेग के घोड़े पर सवार होता है तो अज्ञान, असत्य, काम और क्रोध का आवरण उस पर चढ़ जाता है, परन्तु स्वाभाविक अवस्था में आते ही वह अहिंसक हो जाता है क्योंकि यह हमारी आत्मा का अनिवार्य गुण है।

इस प्रकार प्रत्येक मानव आत्मा जो कि ईश्वर का अंश है एक आध्यात्मिक एकता के सूत्र में जुड़ी है। जब कोई व्यक्ति हिंसा करता है तो वह उस समय विशेष में एकता के सूत्र से अलग हो जाता है। परन्तु यदि हिंसक व्यक्ति की हिंसा का जवाब धैयपूर्वक, पीड़ा को सहते हुए, अगाध प्रेम एवं सद्भावना से दिया जाए तो हिंसक व्यक्ति का हृदय परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार अहिंसा अजेय है।

अहिंसा नैतिक एवं व्यावहारिक रूप से हिंसा की तुलना में दृढ़ एवं प्रभावशाली है। घृणा से घृणा, क्रोध से क्रोध और हिंसा से हिंसा को ही बढ़ाया जा सकता है, परंतु अहिंसा के द्वारा घृणा को प्रेम, क्रोध को शांति तथा हिंसा को अहिंसा में परिवर्तित किया जा सकता है। गाँधी जी ने कहा है कि यदि कभी हिंसा की तात्कालिक जीत हो भी जाती है तो उसे स्थाई जीत नहीं माना जा सकता है क्योंकि हिंसा के द्वारा विरोधी को परास्त किया जा सकता है जीता नहीं जा सकता है। इसके विपरीत अहिंसा ऐसा अमोध अस्त्र है जिसके द्वारा विरोधी को मन, वचन, कर्म एवं मस्तिष्क से जीता जा सकता है।

अहिंसा सदैव अपना निवास हृदय में बनाती है। इसकी जड़े गहरी होती है, इसलिए इसके द्वारा मात्र भौतिक बल पर विजय नहीं पाई जाती है, बल्कि व्यक्ति प्रेम एवं करूणा से वशीभूत होकर स्वयं को समर्पित कर देता है। अहिंसा के द्वारा बिना किसी भौतिक बल के दृढ़ इच्छा शक्ति, तथा ईश्वर में आस्था के आधार पर व्यक्ति अन्याय और अत्याचार का मुकाबला कर सकता है।

इस प्रकार अहिंसा प्रभावकारी अस्त्र है जिसकी सफलता सुनिश्चित है।

7.11 सारांश

आधुनिक काल में गाँधी जी ने अपने व्यापक दृष्टिकोण से अहिंसा को परिभाषित किया। अहिंसा को उन्होंने समस्त सृष्टि में व्याप्त एक सक्रिय एवं आध्यात्मिक शक्ति माना है, जिसका अर्थ मन, वचन और कर्म से किसी को कष्ट न देना है। अहिंसक व्यक्ति प्रेम, दया, करूणा की साक्षात मूर्ति होता है। स्वयं अपने प्रयोगों द्वारा गाँधी जी ने अहिंसा की अनिवार्यता एवं उसकी शक्ति को प्रतिपादित किया है। भारत के प्रसंग में शक्तिशाली बिट्रिश साम्राज्य का अहिंसात्मक रूप से सफल विरोध कर अहिंसा की शक्ति एवं महत्व को प्रकट किया है। न केवल राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी सामाजिक-राजनैतिक मुद्दे हो या साम्राज्यवादी प्रवृत्ति, आर्थिक शोषण, शस्त्रों की दौड़ से मुक्ति का प्रश्न हो। हर विवाद का हल अंहिसात्मक रूप से निकाला जा सकता है। इस प्रकार अहिंसा मानव की आत्मा का ऐसा गुण है, जो चिरंजीवी है। जिसकी सहायता से शत्रु को भी मित्र बनाया जा सकता है। अहिंसा के द्वारा ही व्यक्ति सत्य स्वरूप ईश्वर तक पहुँच सकता है तथा जीव मात्र से प्रेम दया एवं करूणा का सम्बन्ध बना सकता है क्योंकि अहिंसा जहाँ एक ओर सत्य का साधन है तो दूसरी ओर प्रेम की पराकाष्ठा।

7.12 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधीजी की अहिंसा की धारणा की व्याख्या करते हुए अहिंसा की प्रयुक्ति के विभिन्न आयामों को स्पष्ट कीजिये।
2. गाँधीजी का अहिंसा से क्या अभिप्राय है आज के सन्दर्भ में अहिंसा के महत्व एवं शक्ति को प्रतिपादित कीजिए।

7.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक - डॉ. मधुकर श्यमा चतुर्वेदी
2. भारतीय राजनीतिक विचारक - डॉ. श्रीराम वर्मा
3. कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी- सूचना एवं जन संचार विभाग द्वारा प्रकाशित
4. सत्य के मेरे प्रयोग - महात्मा गाँधी
5. हरिजन - महात्म गाँधी

इकाई-8

संघर्ष का समाधान और सत्याग्रह की भूमिका

इकाई की रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 सत्याग्रह- अर्थ एवं प्रकृति

8.4 सत्याग्रह एवं निष्क्रिय प्रतिरोध

8.4.1- दार्शनिक आधार में अन्तर

8.4.2- सत्य एवं अहिंसा के प्रति निष्ठा में अतंर

8.4.3- प्रेम के तत्व की दृष्टि से अंतर

8.4.4- आतंरिक शुचिता की दृष्टि के अतंर

8.4.5- राजनीति के प्रति दृष्टिकोण अतंर

8.4.6- एक बहादुरों का और दूसरा निर्बलो का अतंर

8.5 संघर्ष के समाधान में सत्याग्रह की भूमिका

8.5.1- हड़ताल

8.5.2- सामाजिक बहिष्कार

8.5.3- आर्थिक बहिष्कार

8.5.4- धरना

8.5.5- सविनय अवज्ञा

8.5.6- हिजरत

8.5.7- उपवास

8.5.8- पंद्रह सूत्री विस्तार कार्यक्रम

8.5.9- विदेशी आक्रमण और युद्ध के विरूद्ध

8.6. सारांश

8.7 अभ्यास प्रश्न

8.8 संदर्भ ग्रन्थ

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य सत्याग्रह के द्वारा संघर्ष के समाधान को समझना है। सत्याग्रह अंहिसक संघर्ष में सबसे शक्तिशाली हथियार है संघर्ष का समाधान संघर्ष के शान्तिपूर्ण तरीके से हल किये जाने के तरीको

और प्रक्रियाओं की अवधारणा है आज जब चहुं ओर युद्ध, असमानता, भेदभाव, अराजकता फैली हुई है तब सत्याग्रह की अवधारणा जो कि सत्य प्रेम एवं अहिंसा पर आधारित है कि समाज में आवश्यकता को हम इस इकाई में समझेंगें।

8.2 प्रस्तावना

शांति की खोज मानव की एक शाश्वत खोज है मनुष्य केवल शांति की स्थिति में मानवीय बन सकता है एक तरफ जहां समाज में अशांति, युद्ध, भेदभाव जैसे लक्षण लगातार विकसित हो रहे है वहीं समय समय पर कई महापुरूषों ने अपने अथक प्रयासो एवं जीवन दर्शन से संसार के पथ को आलोकित किया है।

सत्याग्रह की अवधारणा भी महात्मा गांधी के जीवन दर्शन एवं दृष्टिकोण का विकसित रूप है। उनके अनुसार सभी जीव ब्रहमाण्ड के द्वारा नियंत्रित है और ब्रहमाण्ड का एक ही नियम एवं कानून है प्रेम व अहिंसा। सत्याग्रह में प्रेम, अहिंसा, अपरिग्रह, शुद्धता आदि कई बातें शामिल है। एक और यह आजादी की लड़ाई में विरोध करने का तरीका तथा अब जन कल्याण की मांगो की पूर्ति का एक हथियार बन गया है।

8.3. सत्याग्रह अर्थ एवं प्रकृति

गांधीजी का सत्याग्रह दर्शन सत्य के सर्वोच्च आदर्श से उत्पन्न हुआ है। प्रचलित भाषा में सत्याग्रह का अर्थ अहिंसात्मक प्रतिरोध से लिया जाता है। लेकिन सत्याग्रह केवल अहिंसक प्रतिरोध के विभिन्न रूपों-असहयोग, सविनय अवज्ञा, उपवास, धरना, आदि तक ही सीमित नहीं है। सत्याग्रह अहिंसात्मक प्रतिरोध से कहीं अधिक व्यापक है। इसका शाब्दिक अर्थ है- सत्य को मानकर किसी वस्तु के लिए आग्रह करना, अथवा सत्य और अहिंसा से उत्पन्न होने वाला बल। सब प्रकार के अन्याय, उत्पीड़न और शोषण के विरूद्ध शुद्धतम आत्मबल का प्रयोग ही सत्याग्रह है। कष्ट सहन तथा विश्वास आत्मबल के गुण है। अहिंसात्मक प्रतिरोध का हृदय पर तत्काल प्रभाव पड़ता है। जिसमें विरोधी को जोखिम में डाले बिना उसे अपनी निर्दोषिता की प्रचण्ड शक्ति से अभिभूत किया जाता है। सत्याग्रह अथवा हृदय परिवर्तन के विस्मयकारी तरीके सरकार तथा सामाजिक अत्याचारियों एवं परम्परावाद के नेताओं सभी के विरूद्ध प्रयोग किये जा सकते है। सत्याग्रह का अर्थ सत्य के लिए आग्रह करना है। गांधी दर्शन में सत्याग्रह की अनेक परिभाषा मिलती है-

(1) ‘‘ विरोधी को पीड़ा देकर नहीं, अपितु स्वयं को पीड़ा (कष्ट) में जलकर सत्य की रक्षा करना सत्याग्रह है। यह अन्य कुछ नहीं सत्य के लिए तपस्या है।’’ गाँधीजी।

(2) ‘‘सत्याग्रह तो बल प्रयोग के सर्वथा विपरीत होता है। हिंसा के सम्पूर्ण त्याग में ही सत्याग्रह की कल्पना की गयी है।’’ गाँधीजी।

(3) ‘‘मेरे लिए सत्याग्रह का नियम प्रेम का नियम है जो एक शाश्वत नियम है।’’ गाँधीजी।

सत्याग्रह की उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि गाँधीजी ने सत्याग्रह को सत्य, अहिंसा एवं प्रेम के बल पर आधारित अवधारणा माना है। सत्याग्रह अपनी प्रकृति से आत्मा के बल का विस्तार है, गाँधीजी ने इसे आत्मबल भी कहा है।

गाँधीजी ने सत्याग्रह को मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार कहा है जो सत्य के लिए तपस्या है। इस अर्थ में सत्याग्रह संवैधानिक पद्धतियों का भी निराकरण प्रस्तुत करता है। सत्याग्रह एक आदर्श है जो कर्मयोग का व्यावहारिक दर्शन है और एक क्रियाशील अवधारणा है जिसकी परीक्षा कुछ क्षेत्रों में की जा चुकी है जो सफल सिद्ध हुई है। सब प्रकार के शोषण, अन्याय, और उत्पीड़न के विरूद्ध आत्मबल का प्रयोग ही सत्याग्रह है। यह पवित्र अधिकार ही नही हैं। अपितु कर्त्तव्य भी हैं। यदि सरकार जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती और बेईमानी तथा आतंकवाद का समर्थन करती है तो उसकी अवज्ञा करना आवश्यक हो जाता है इस प्रकार जहाँ कहीं अन्याय और असत्य का सामना करना पड़े वहीं सत्याग्रह का प्रयोग कर किया जा सकता है। सत्याग्रह हर परिस्थिति में अहिंसात्मक होता है, इसमें शुद्धतम आत्म बल का ही प्रयोग किया जाता है। गाँधीजी कहा करते थे कि, '' अहिंसा की वर्णमाला परिवार की पाठशाला में सीखी जाती है। और फिर उसका प्रयोग राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर भी किया जा सकता है।''

गाँधीजी मानते थे कि सत्याग्रह एकमात्र अस्त्र है। जिससे बुराई और अन्याय का प्रतिरोध संभव है। यह एक साफ सुथरा, अहानिकारक और फिर भी अत्यधिक प्रभाव शाली अस्त्र है। यह न केवल अन्याय और बुराई के प्रतिकार का अस्त्र है। बल्कि एक जीवन पद्वति भी है। व्यक्तिगत जीवन के साथ सामाजिक जीवन में भी सत्याग्रह की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसलिए सामाजिक कुरीतियों के निराकरण में भी सत्याग्रह सर्वाधिक प्रभावशाली अस्त्र है।

सत्याग्रह एक आध्यात्मिक तरीका है। जिसमें अपने अत्याचारियों के विरूद्ध कोई द्वेष भाव न रखते हुए अपनी अन्तर्रात्मा की आवाज का अनुसरण किया जाता है और किसी भी परिस्थिति में सत्य के प्रतिपादन से पीछे नहीं हटा जाता। यदि सत्याग्रही की संघर्ष में मृत्यु भी हो जाए तो भी उसका अन्त नहीं होता बल्कि विरोधी को सत्य के दर्शन कराने के लिए कभी कभी सत्याग्रही का मरना आवश्यक हो जाता है। गाँधीजी का कहना है कि सत्याग्रही विचार और व्यवहार के विभेद से बचते हुए आत्मानुशासन और लोकानुशासन से बंधे रहता है। जनता-जर्नादन की सेवा का आजीवन व्रत लेना सत्याग्रही का श्रेष्ठ संकल्प है। सत्याग्रह का उद्देश्य है विरोध का अन्त करना है न कि विरोधी का। इस आदर्श की पूर्ति तभी संभव है। जब व्यक्ति पूर्ण अंहिसा के मार्ग पर चले। यदि व्यक्तिगत जीवन में वह सत्याग्रहवादी और अहिंसावादी नहीं है तो सार्वजनिक विषयों में वह अहिंसावादी नहीं बन सकता। सत्याग्रह के सार्वजनिक प्रयोग से पहले आवश्यक है कि व्यक्ति अपने हृदय को टटोल कर देखले और उस पर विजय प्राप्त कर ले। आन्तरिक चरित्र के अभाव में सत्याग्रही प्रभावहीन रहेगा।

सत्याग्रह स्वचालित है। इसका प्रयोग करने से पूर्व विरोधी की अनुमति आवश्यक नहीं होती। वस्तुत: जब विरोधी प्रतिरोध करता है तो यह बहुत अधिक प्रकाशमान होता है। सत्याग्रही अपने विरोधी के सम्मुख अपना आध्यात्मिक व्यक्तित्व स्थापित करता है। और उसके हृदय में यह भावना जगा देता है कि अपने व्यक्तित्व को हानि पहुँचाए बिना उसे हानि नहीं पहुंचायी जा सकती। इस प्रकार सत्याग्रह के कार्य का अंतिम विश्लेषण आत्मानुभूति और संयोग के द्वारा आगे बढ़ना है।

8.4. सत्याग्रह एवं निष्क्रिय प्रतिरोध

सत्याग्रह को अच्छी तरह समझने के लिए निष्क्रिय प्रतिरोध से उसका अन्तर समझना आवश्यक है अत: इन दोनो को सामाजिक व राजनीतिक परिवर्तन की दो भिन्न पद्धतियां माना जाता है।

8.4.1 दार्शनिक आधार में अन्तर-सत्याग्रह का आधार सृष्टि की आध्यात्मिक एकता का दर्शन है किन्तु निष्क्रिय प्रतिरोध का आधार शक्तिवादी भौतिक दर्शन है। सत्याग्रह दर्शन सत्य के सर्वोच्च आदर्श से उत्पन्न हुआ है। यदि सत्य ही परम तत्व है तो व्यक्ति को सत्य की कसौटी तथा उसके आधारो की रक्षा करनी चाहिए।

8.4.2 सत्य एवं अहिंसा के प्रति निष्ठा में अन्तर सत्याग्रह के अन्तर्गत सत्य एवं अहिंसा पालन एक धर्म के रूप में किया जाता है और किसी भी विपरीत स्थिति में इनको त्यागा नहीं जाता है। किन्तु निष्क्रिय प्रतिरोध के अनुयाइयों की सत्य एवं अहिंसा में कोई वास्तविक एवं अंतिम निष्ठा नहीं होती है वे सत्य व अहिंसा को केवल नीति के साधन के रूप में ही महत्व देते है।

8.4.3 प्रेम के तत्व की दृष्टि से अंतर-सत्याग्रह शाश्वत प्रेम पर आधारित होता है। सत्याग्रही अपने विरोधी के प्रति पूर्ण प्रेम की भावना रखता है। और अपने विरोधी के नैतिक उत्थान के लिए स्वयं कष्ट उठाने में आनन्द का अनुभव करता है। इसके विपरीत निष्क्रिय प्रतिरोध की पद्धति में विरोधी के प्रति घृणा, द्वेष एवं प्रतिद्वन्द्विता की भावना को स्वीकारा जाता है और विरोधी के पतन की कामना की जाती है।

8.4.4. आन्तरिक शुचिता की दृष्टि से अन्तर- सत्याग्रह का सिद्धान्त मूलत: आत्मबल पर आधारित है अत: सत्याग्रही अन्त: करण की पवित्रता को विशेष महत्व देता है और इस उद्देश्य से सभी नैतिक उपायो को अपनाता है किंतु निष्क्रिय प्रतिरोध का सिद्धान्त भौतिक बल पर आधारित है और इसलिए इसके अनुयायी के लिए अन्त: करण की पवित्रता का कोई स्पष्ट एवं आधार भूत महत्व नहीं है।

8.4.5 राजनीति के प्रति दृष्टिकोण में अन्तर- सत्याग्रह का सिद्धान्त राजनीति के आध्यात्मीकरण में विश्वास रखता है और यह राजनीति के क्षेत्र में साध्य के साथ ही साधन की पवित्रता पर बल देता है किन्तु निष्क्रिय प्रतिरोध का सिद्धान्त अपने भौतिक दृष्टिकोण के कारण राजनीतिक सत्ता को संघर्ष मानता है और इसलिए राजनीति के आध्यात्मीकरण या साधनों की पवित्रता के विचारों को अपने राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति में बाधक समझता है।

8.4.6 एक बहादुरों का और दुसरा निर्बलों का शस्त्र है। गाँधीजी ने सत्याग्रह को बहादुरो का तथा निष्क्रिय प्रतिरोध को निर्बलों का शस्त्र बताया है। सत्याग्रह आध्यात्मिक बल पर आधारित है और इसलिए सत्याग्रही विरोधी के बड़े से बड़े भौतिक बल से भयभीत नहीं होता। निष्क्रिय प्रतिरोध भौतिक बल में विश्वास करता है और इसलिए जब इसका अनुयायी अपने विरोधी के पास भौतिक बल की प्रबलता देखता है तो वह भी भौतिक बल का प्रयोग करता है।

8.4.7 दोनों की प्रकृति एवं क्षेत्र में अन्तर- सत्याग्रह अपनी प्रकृति से एक रचनात्मक आन्दोंलन है और निर्माण की शक्ति रखता है। इसका क्षेत्र भी अत्यन्त व्यापक है जो पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनीतिक सभी क्षेत्रों में किया जा सकता है निष्क्रिय प्रतिरोध अपनी प्रकृति से एक नकारात्मक आंदोलन है तथा इसका क्षेत्र भी बहुत सीमित होता है।

इस प्रकार सत्याग्रह व निष्क्रिय प्रतिरोध में आधारभूत अन्तर है गाँधीजी ने इन दोनों के बीच अन्तर करते हुए कहा है,''सत्याग्रह से निष्क्रिय प्रतिरोध उतना ही भिन्न है जितना उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव।''

8.5 संघर्ष के समाधान में सत्याग्रह की भूमिका

सत्याग्रह की विभिन्न प्रणालियों है इसकी तकनीक बहुमुखी है सबसे पहले समस्या की रोकथाम के लिए समस्या का विवेचन किया जाता है अर्थात सावधानीपूर्वक बिना किसी पूर्वाग्रह के शिकायत का अध्ययन करता है तथा यह भी देखा जाता है शिकायत करने वाला स्वयं इस शिकायत को दूर करने के लिए आतुर है या नहीं है। सत्याग्रही अपना संघर्ष अर्थात सत्याग्रह आरम्भ करने से पूर्व सभी उपायों पर गंभीरतापूर्वक विचार कर लेता है।

सत्याग्रह के द्वारा संघर्ष करने वाला व्यक्ति पहले अन्यायी को समझना चाहिए। समझाने बुझाने के सारे प्रयासों में असफल हो जाने के बाद वह जिस अन्याय के विरूद्ध मोर्चा लेना चाहता है उसका आवश्यक प्रचार प्रारंभ करे। प्रचार के साथ साथ उसे उन सभी तत्वों का ध्यान रखना चाहिए जिसमें अन्याय प्रारंभ हुआ है।

सत्याग्रह के द्वारा संघर्ष के समाधान की दृढ़ता तभी हो सकती है जब आंदोलन में किसी प्रकार का दुराव छिपाव न रहे। सत्याग्रही विरोधी का आदर करते हुए चलता है। उसका उद्देश्य विरोधी को नीचा दिखाना नहीं होता क्योकि उसे नीचा दिखाकर कभी भी उसमें चेतना को जागृत नहीं किया जा सकता है। क्योकि सत्याग्रह के सिद्धान्तो पर संघर्ष करने वाला व्यक्ति बुराई का विरोध करता है। व्यक्ति का नहीं।

आत्म पीड़न सत्याग्रह का प्रमुख नियम है इसके माध्यम से संघर्ष करते हुए वह विरोधी पर विजय प्राप्त करता है। सत्याग्रह के द्वारा संचालित संघर्ष में अन्तर्रात्मा की आवाज का विशेष महत्व है। सत्याग्रह के द्वारा संघर्ष करते समय व्यक्ति को नैतिक युद्ध की सारी चालों की जानकारी होना चाहिए। तथा उसमें इतना दृढ़ आत्म विश्वास होना चाहिए कि उसकी आशाएं और आकाँक्षाएँ कभी हार न मानें।

महात्मा गाँधी ने प्रतिरोध और संघर्ष के संकल्प के एक साधन के रूप में सत्याग्रह के अस्त्रागार को कई अस्त्रों से सुसज्जित किया। इसमें उसका प्रमुख अस्त्र असहयोग था। यह असहयोग हड़ताल, सामाजिक एवं आर्थिक बहिष्कार, धरना, नागरिक अवज्ञा, हिजरत, उपवास आदि साधनों के माध्यम से किया जाता है।

8.5.1 हड़ताल- इसका अर्थ है कि अस्थाई समय के लिए अपना निजी धन्धा बंद करके अन्याय के विरूद्ध अपने प्रतीकात्मक प्रतिरोध को प्रदर्शित करना। हड़ताल के अन्तर्गत न केवल निजी कार्य, नौकरी, व्यवसाय आदि बंद करना शामिल है अपितु स्कूल और कॉलेज न जाना भी इसमें

सम्मिलित है। हड़ताल एक प्रतीक का कार्य करती है। इसके माध्यम से सबका ध्यान एकदम आकषित किया जाता है। इसका उद्देश्य कार्य को बंद करके जनता, सरकार और सम्बन्धित संस्था को प्रभावित करना है। हड़ताल के प्रभाव को बरकरार रखने के लिए इसे जल्दी-जल्दी नहीं करना चाहिए। संघर्ष का समाधान तभी व्यापक एवं सत्याग्रह के अनुसार होता है जब हड़ताल स्वेच्छापूर्वक प्रेमपूर्ण, व्यवहार, और अंहिसात्मक प्रचार के द्वारा की जाये।

8.5.2- सामाजिक बहिष्कार- इनका अभिप्राय समाज के उन अन्यायी लोगों का बहिष्कार करना है जो जनमत की अवहेलना करते है और जनमत का सहयोग नहीं करते, पर इसका आशय यह नहीं है कि ऐसे व्यक्तियों को आवश्यक समाज सेवाओं से वंचित कर दिया जाए या अनादर और अपशब्दों से उनके जीवन को असहाय बना दिया जाए। सामाजिक बहिष्कार का उग्र रूप से प्रयोग नहीं करना चाहिए। क्योकि गांधी के अनुसार अंहिसात्मक समाज जिसे आदर्श राज्य के नाम से जाना जाता है, में जनता को आतंकित और उत्पीड़ित नहीं किया जाता बल्कि राज्य की सारी संस्थाएं समाज की सेवा करने के लिए होती है कई बार प्रशासन के किसी नियम, किसी संस्था के आदेश आदि का भी सामूहिक रूप से बहिष्कार किया जाता है परन्तु यह संघर्ष पूरी तरह अहिंसात्मक होना चाहिए।

8.5.3-आर्थिक बहिष्कार- इसका मौलिक स्वरूप गांधीजी द्वारा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का सिद्धान्त है आर्थिक बहिष्कार के अन्तर्गत औघोगीकरण के विरूद्ध संघर्ष, कुटीर उद्योग धन्धों का समर्थन , वर्ग सहयोग की अवधारणा आदि है औघोगीकरण कई बार बेकारी को जन्म देता है मशीनों के आर्थिक प्रयोग से कई कारखानों में मजदूर बेकार हो जाते है तब संघर्ष के द्वारा औघौगीकरण का विरोध दर्ज करवाया जाता है।

8.5.4 धरना-गांधीजी ने जिसे धरना कहा है वह अहिसंक धरना है इसके अन्तर्गत किसी के रास्ते को दबाव डालकर नहीं रोका जाता है। अहिंसक धरना देने वालो का कर्त्तव्य है कि वह जनमत को जागृत करे, उपयुक्त वातावरण बनाए, सामने वाले व्यक्ति को चेतावनी दे और उसके हृदय परिवर्तन के द्वारा वस्तु स्थिति को समझाए। धरने में व्यक्तियो का समूह किसी विषय के विरूद्ध संघर्ष के समाधान के लिए अपना पक्ष रखते है।

8.5.5- सविनय अवज्ञा- सविनय अथवा नागरिक अवज्ञा को गाँधीजी ने सबसे अधिक प्रभावशाली अस्त्र बताया जिसका उद्देश्य अनैतिक नियमों को तोड़ना है। गाँधीजी के शब्दों में ‘‘ सविनय अवज्ञा आन्दोलन सशस्त्र क्रांति का एक पूर्ण प्रभावशाली एवं रक्तहीन विकल्प है’’। यह असहयोग के द्वारा संघर्ष करने का सबसे बड़ा अस्त्र है। सविनय अवज्ञा आन्दोलन का दर्शन इस मान्यता पर आधारित है सत्याग्रही को सदैव ही ऐसे कानूनो का पालन करना चाहिए जो नैतिक हो और ईश्वर के शाश्वत नियमों के अनुरूप हो किन्तु उसे इन गुणों से विपरीत अप्राकृतिक कानूनों को विनयपूर्वक एवं अहिंसात्मक तरीके से मानने से इंकार कर देना चाहिए। गाँधीजी ने ब्रिटिश राज द्वारा बनाये गए नमक कानून को अनैतिक मानते हुए उसके विरूद्ध संघर्ष किया तथा उस कानून का उल्लघंन करते हुए सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाया।

8.5.6 हिजरत- हिजरत का अर्थ है स्थायी व परम्परागत निवास स्थान को स्वेच्छा से छोड़कर अन्य किसी इलाके में जाकर बस जाना। सत्याग्रह के अन्तर्गत इसका अर्थ है दमन के स्थान को दमन को विरोध स्वरूप छोड़कर चले जाना। यह संघर्ष उन लोगों के लिए है जो अपने मूल निवास स्थान में आत्म सम्मानपूर्ण ढ़ग से रहने में असमर्थ हो तथा दुखी हो। ऐसे व्यक्ति जो अन्याय के विरोध में न तो सत्याग्रह करने का नैतिक बल रखते हो और न हिंसात्मक विरोध की ही शक्ति रखते हो। अतीत में उग्र अत्याचार से पीड़ित इजराइल के निवासियों ने हिजरत का प्रयोग किया था तथा वे अन्यत्र बस गये थे। गाँधीजी ने आत्म सम्मान की रक्षा के लिए 1928 में बारदोली के सत्याग्रही को एवं जूनागढ़ की जनता को हिजरत के साधन का अपनाने की सलाह दी थी।

8.5.7 उपवास- यह सत्याग्रह का कठिनतम प्रभावशाली एवं आध्यात्मिक अस्त्र है त्याग की भावना से प्रेरित होकर आत्म शुद्धि के उद्देश्य से किया गया उपवास कभी भी किसी को अपमानित करने या दबाने की इच्छा से प्रेरित नहीं होता। उपवास पीड़ित आत्मा की ऐसी करूण पुकार होती है जो सामान्य जन समूह के साथ ही अन्यायी की आत्मा को भी द्रवित कर देती है और उसका हृदय परिवर्तन कर देती है गाँधीजी ने उपवास को वैयक्तिक साधन से सामाजिक संघर्ष का साधन बना दिया और यह बताया कि उपवास से सामूहिक आत्म शक्ति में वृद्धि होती है यह अन्याय का अहिंसात्मक प्रतिरोध करने की क्षमता देता है और विपथगामी लोगो में सद्भावना का संचार करता है। उपवास से विपक्षी को कष्ट न देकर स्वयं को कष्ट दिया जाता है यह आत्म पीड़न विपक्षी के हृदय में न्याय और सत्य को जगाता है किन्तु जब उपवास के साधन का प्रयोग ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि के आवेगों के साथ किया जाता है तो वह असफल रहता है। यह संघर्ष उपवास नहीं भूख हड़ताल कहलाता है। उपवास सत्याग्रह है तो भूख हड़ताल दुराग्रह। अत: संघर्ष का समाधान तभी शांतिपूर्वक होता है जब उसे उपवास से जोड़ा जाए, न कि भूख हड़ताल से।

8.5.8 पन्द्रह सूत्री विस्तार कार्यक्रम- महात्मा गांधी ने निर्माणकारी कार्यक्रमों को सत्याग्रह का एक अभिन्न अंग बताया। क्योकिं संघर्ष तभी सफल हो सकता है जब विरोध या विघ्वंस के साथ निर्माण भी किया जाए। गाँधीजी ने पन्द्रह सूत्री निर्माणकारी कार्यक्रम बनाया। वह साराशत: इस प्रकार है खादी का प्रचार प्रसार, ग्रामोघोगो को प्रोत्साहन, ग्राम स्वच्छता, स्वास्थ्य बुनियादी शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा , नारी उद्धार, समग्र ग्राम सेवा, राष्ट्र भाषा प्रचार, आर्थिक समानता को प्रोत्साहन साम्प्रदायिक एकता, नशाबन्दी आदि जैसे कार्यक्रम जिससे संघर्ष एक ओर निरोधात्मक होगा वहीं दूसरी ओर निर्देशात्मक और निर्णयात्मक भी।

8.5.9- विदेशी आक्रमण और युद्ध संघर्ष- महात्मा गांधी ने अन्तराष्ट्रीय क्षेत्र में भी सत्याग्रह के प्रति पूर्ण आस्था दिखाई है। उनका मत था कि विदेशी आक्रमण और युद्ध के विरूद्ध सत्याग्रह के अस्त्र का प्रयोग किया जाना चाहिए क्योंकि युद्ध किसी समस्या का समाधान नहीं है विश्व में शांति एवं व्यवस्था अहिसक साधनों के द्वारा ही आ सकती है सत्याग्रह न केवल युद्ध के समान प्रबल प्रभावशाली साधन है बल्कि उससे निश्चिय ही श्रेष्ठ है युद्ध में भौतिक शक्ति का प्रयोग

विनाश है। दूसरी ओर सत्याग्रह में नैतिक शक्ति का प्रयोग किया जाता है इसलिए सत्याग्रह के द्वारा किया गया संघर्ष स्थायी प्रभाव छोड़ता है।

8.6 सारांश

इस प्रकार सत्याग्रह असीम प्रेम और करूणा से प्रेरित होता है। इसमें पापी का नही पाप का, बुरे व्यक्ति का नहीं बुराई का विरोध किया जाता है। इसमें सत्य ही भगवान है। आज दुनिया के कई विचाराक संघर्ष की दृढ़ता एवं समाधान के लिए महात्मा गांधी के जीवन एवं तरीको से प्रेरित है। कई देशो में स्वतंत्रता, न्याय, भाईचारे एवं समानता के लिए गांधीजी के विचारो से प्रेरणा ली गई है मार्टिन ल्यूथर किंग जूनियर और नेल्सन मड़ेला ने इक्कीसवीं सदी में संघर्ष के समाधान के लिए सत्याग्रह को प्रयोग में लिया। वर्तमान में सभी औद्योयोगिक प्रतिष्ठानों और बड़े पैमाने पर रोजगार के अन्य स्थानों से लेकर राजनीतिक हलचलो तक सत्याग्रह विवादों और संघर्षो के शांतिपूर्ण समाधान के लिए एक व्यावहारिक विकल्प है।

8.7 अभ्यास प्रश्न

1 संघर्ष के समाधान में सत्याग्रह की भूमिका समझायें ?

2 सत्याग्रह का अर्थ प्रकृति एवं प्रकार बताइये ?

8.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय राजनीतिक विचारक - डॉ श्रीराम वर्मा
2. आधुनिक भारतीय सामाजिक- डॉ अमरेश्वर एवं डॉ राजकुमार अवस्थी राजनैतिक चिन्तन

इकाई - 9

शांति शिक्षा

इकाई की रूपरेखा

9.1 उद्देश्य
9.2 प्रस्तावना
9.3 शांति का अर्थ
9.4 आधुनिक शांति शिक्षा की अभिधारणा
9.5 बीसवीं शताब्दी में शांति शिक्षा
9.6 शांति शिक्षा के विभिन्न उपाय
9.7 पर्यावरण शिक्षा
9.8 संघर्ष समाधान शिक्षा
9.9 विकास शिक्षा
9.10 सारांश
9.11 अभ्यास प्रश्न

9.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप शांति शिक्षा के सदंर्भ में महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त करेगें -

- शांति शिक्षा का अर्थ समझ सकेगें।
- आधुनिक शांति शिक्षा की अभिधारण को समझ सकेगें।
- शांति शिक्षा के विभिन्न उपायों को समझ सकेगें। शांति शिक्षा की प्रकृति को समझ पायेगें।

9.2 प्रस्तावना

शांति शिक्षा कोई नवीन या कोई प्राचीन शब्द नहीं है। इसमें 1970 के दशक के मध्य में अत्यधिक प्रगति हुई है। जबकि 1970 के दशक के प्रारम्भ में अन्वेषणात्मक योजना थी, जो शांति शिक्षा की अन्तनिर्हित प्रकृति की रूपरेखा तैयार करती है और टिप्पणी करती है कि बहुत कुछ होना बाकी है। 1980 के दशक के मध्य में यह बहस भिन्न स्तर पर पहुंच गई और व्यवहार में बहुत कुछ किया गया। सामान्यता 'शांति अध्ययन' 'शांति शोध' एवं 'शांति शिक्षा' में कोई अन्तर नहीं करता है। इनमें परस्पर संबंधितपरन्तु विभिन्न आयामों के मध्य स्पष्ट विभेद करना आवश्यक है। शांति शोध एवं शांति अध्ययन में स्पष्ट विभेद करने के पश्चात् ही यह समझा जा सकता है कि कैसे और क्यों समय काल और संबंधित

सरोकारों में परस्पर संबंधितहै। शांतिशोध युद्ध के कारण एवं शांति की शर्तो की वृहद् परिभाषा के ज्ञान के विकास एवं आविष्कार से संबंधितहै। जब यथेष्ट ज्ञान एकत्रित हो जाता है तब प्रश्न उठता है इसका क्या किया जाये? कुछ ने निर्णय लेने में सफलता के लिए इसे नीति निर्धारण प्रक्रिया में प्रयुक्त करना चाहा। कुछ अन्य सुधारकों ने इसे साबित कर उसे वृहद् समाज में प्रसारित करना चाहा जिससे यह संबंधितहै, जिससे समाज में शांति को बेहतर तरीके से और संघर्ष को उसके विभिन्न स्वरूपों में समझा सकता है। सामान्य शब्दावली में 'शांति अध्ययन' इस बाद वाले क्षेत्र में अवस्थित है। अत: इस सीमा तक, शिक्षा की प्रक्रिया से स्पष्ट सम्बन्ध है क्योंकि वह शिक्षा ही है जो ज्ञान के प्रसार मूल्यों की समझ इत्यादि के लिए उत्तरदायी है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि 'शांतिशोध' ज्ञान के विकास एवं संकलन से संबंधितहै, 'शांति शिक्षा' शांति के विषय में शिक्षा की प्रक्रिया के विकास से संबंधितहै, जबकि शांति अध्ययन विचार का ऐसा क्षेत्र है जो शांति के ज्ञान के प्रसार की प्रक्रिया के उद्देश्यों और उसमें आने वाली समस्याओं के वास्तविक मुद्दों से संबंधितहै।

चैक शिक्षाविद् उन प्रथम यूरोपियों में से एक था जिसने शांति शिक्षा के पक्ष में लिखित समर्थन दिया। उसने 17वीं शताब्दी में ही देख लिया था कि शांति का पथ सार्वभौमिक ज्ञान को परस्पर बॉटने में मिलता है। शांति का यह उपागम यह मानता है कि शांति ही शिक्षा की चाबी है। उदाहरणार्थ दूसरों को समझना तथा उनके गुणों का आदान-प्रदान करने से उस शत्रुतापूर्ण व्यवहारों पर विजय प्राप्त करना संभव होगा। जो शांति की ओर ले जाते है। 'कान्ट'ने अपनी पुस्तक ' परपेचुअल पीस'में यह उदाहरण प्रतिपादित की कि मनुष्य नागरिक हिंसा में ऐसी विधि समस्त व्यवस्था द्वारा कभी कर सकता है जिससे न्यायालयों, कानूनी कार्यवाही तथा जेलों पर आधारित नियंत्रण एवं संतुलन कायम रहे। शांति का यह उपागम न्याय द्वारा संगठित प्राप्ति के रूप में जाना जाता है तथा इस विचार पर आधारित है कि मनुष्यों में विवेकशील दिमाग है जो ऐसे कानून बना सकता है जिससे सभी मनुष्यों के प्रति उचित व सम व्यवहार संभव हो।

9.3 शांति का अर्थ

प्राचीन भारतीय समाज एवं भारतीय परिप्रेक्ष्य में शांति शिक्षा को व्यापक रूप से वर्णित किया गया है। शांति शिक्षा को अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञान एवं शिक्षा के साथ संबंधित किया गया है। समाज में शिक्षा का अर्थ ज्ञानपरक था, उसमें लौकिक एवं पारलौकिक जीवन के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी और इस शिक्षा के साथ ज्ञान, एवं शांति की शिक्षा को सम्मिलित रूप से शांति अध्ययन की श्रेणी में माना गया। जब तक समाज में उचित ज्ञान की प्राप्ति नहीं होगी तब तक मानव समाज में शांति की प्रक्रिया सम्भव नहीं है। ज्ञान के बिना जीवन अंधकारमय है। ज्ञान व्यक्ति को अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाता है। जिससे की शांतिपूर्ण समाज का निर्णाण होता है। शांति को कभी भी एक निश्चित अर्थ के रूप में नहीं समझा गया और न ही यह आवश्यक था कि शांति की एक सर्वमान्य परिभाषा दी जायें, क्योंकि शांति का अर्थ संदर्भगत् होता है, अर्थात् जगह ,समय एवं परिस्थिति के अनुसार शांति के विभिन्न मायने है, आधुनिकता ने भी शांति के पुराने व नये अर्थ में भेद किया है। प्राचीनकाल में शांति को मनुष्य की प्रकृति का एक गुण माना जाता था, शांति मनुष्य को एक ईश्वरीय देन है , अर्थात् शांति एक

विश्वास का विषय है, लेकिन आधुनिकता के पश्चात् शांति की नये रूपों में व्याख्या की गई है और यह माना गया कि शांति से मनुष्य का सीधा सम्बन्ध है, अर्थात् जिस तरह से मनुष्य शांति को भंग कर सकता है तो फिर मनुष्य ही शांति को बना सकता है अर्थात् शांति मानव आधारित है। एक अवधारणा के रूप में यह मान्यता विकसित हुई कि शांति के भी निश्चित 'मूल नियम' होते है तथा शांति को एक विज्ञान के रूप में समझा जाने लगा, अर्थात् जिस तरह से विज्ञान में निश्चित नियम होते है, एक कार्य कारण सम्बन्ध पाया जाता है, उसी तरह से शांति के भी निश्चित नियम होते है। यदि नियमों की खोज हो जाये तो शांति को खोजना संभव होगा।

शांति के विभिन्न अथोर् या धारणाओं को समझे तो कुछ के लिए शांति अहिंसा की एक अवस्था, विद्वेष की अनुपस्थिति हो सकती है। वृहद् शब्दावली में इसे हिंसक अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष की समाप्ति कहा जा सकता है, इस अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ में शांति युद्ध का विपरीत है। इसे विभिन्न दलों के मध्य ऐसे सम्बन्धों के रूप में भी समझा जा सकता है जिनकी विशेषता है सम्मान, न्याय और शुभेच्छा। सामान्य शब्दों में समझें तो शांति एक व्यक्ति के लिए पर्यावरण से संबंधित भी हो सकती है क्योंकि शांतिपूर्ण का अर्थ हो सकता है शांत। शांति की यह व्याख्या एक व्यक्ति के स्वयं के ज्ञान के विषय में भी उपयुक्त हो सकती है क्योंकि स्वयं के साथ शांति से होना भी एक व्यक्ति के अन्र्तमन में उसी शांति और सन्तुलन को परिलक्षित करता है। वर्तमान समय में शांति का वृहद् रूप से पहचाना जाने वाला प्रतीक चिन्ह परमाणु निशस्त्रीकरण के लिए अभियान है। यदि शांति की पुरानी पारम्परिक राजनीतिक परिभाषा और इस शब्द विशेष पर जाये तो पायेगें कि इसकी उत्पत्ति प्राचीन रोम में हुई, जिन्होनें शांति को युद्ध की अनुपस्थिति के रूप में परिभाषित किया था। वर्तमान समय में शांति का अर्थ मृत्यु भी है। यह एक ऐसे आदर्शवादी विश्व को भी निरूपति करती है जो प्रकृति व मनुष्य के साथ सामंजस्य में रहता है। शांति की अवधारणा लोगों की उनके भौगोलिक, राजनैतिक अस्तित्व में प्रजा की स्थिति पर भी लागू होती है, क्योंकि गृह युद्ध, राज्य द्वारा प्रायोजित जाति संहार, आतंकवाद और अन्य प्रकार की हिंसा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति के लिए धमकी है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद राज्यों के मध्य युद्ध कम हो गये है, जबकि आन्तरिक हिंसक संघर्ष अधिक केन्द्रीय चिन्ता का विषय बन गये है।

हिंसा की प्रत्यक्ष अनुपस्थिति के रूप में शांति की अवधारणा को कुछ लोगों द्वारा अपूर्ण मान कर चुनौती दी गई है। जॉन गाल्तुंग शांति की अवधारण को नकारात्मक शांति कहते है। वह सुझाव देते है कि वास्तविक शांति के अस्तित्व के लिये संघर्ष के आधारभूत बिन्दुओं का सुलझना आवश्यक है।

शांति को न्याय से जोड़ते हुए महात्मा गॉंधी ने विचार रखा कि यदि किसी दमनात्मक समाज में हिंसा की अनुपस्थिति है तो भी वह समाज शांतिपूर्ण नहीं है क्योंकि वहा दमन का अन्याय उपस्थित है। गॉंधी ने शांति का ऐसा दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जिससे न्याय एक आवश्यक और अन्तर्निहित पहलू है।

शांति अनुसंधानकर्ता जानते है कि सकारात्मक शांति हेतु हिंसा को समाप्त करने का प्रयास पर्याप्त नहीं है। शांतिप्रद संसार बनाने के लिए मनुष्य को सकारात्मक शांति हेतु प्रयास करने होगें,वह स्थिति जो न्याय के प्रतिमानों की स्थापना द्वारा मानव अधिकारों तथा समुदायों में सतत् विकास के नियामक प्रतिष्ठान स्थगित करके किया जा सकता है। शिक्षा का एक लक्ष्य शांति स्थापित करने योग्य वातावरण का सृजन करना भी है अर्थात् एक ऐसा समाज जहॉं नागरिक अपने सरोकारों चिन्ताओं को स्वतंत्र रूप से बॉंट

सके, रचनात्मक बने, समय का रचनात्मक उपयोग करे, मानवाधिकारों का भोग करें तथा संघर्षो का समाधान बिना हिंसा के प्रयोग से करें। सभ्यता की संपूर्ण आवधारणा शांतिरूपी धुरी के चारों और घूमती है। शांति शिक्षा प्रबोधक अहिंसा के प्रतिबद्वता को प्रोत्साहित करते हैं जिसके पीछे यह विचार है कि यदि बच्चे इन गुणों को सीखते है तो वयस्क होकर वे एक सभ्य तथा शांतिप्रिय समाज की रचना में योगदान दें सकेगें। शांति शिक्षा की रणनीति यह मानती है कि संधर्ष व्यक्तियों द्वारा घटित होते है न कि सामाजिक, आर्थिक शक्तियों द्वारा। विगत शताब्दी के हिसां के भयानक स्वरूपों तथा पर्यावरण संहार, जाति संघर्ष आधुनिक युद्ध राष्ट्रवादी घृणा, रंगभेद, लिंगभेद, यौन अपराध,घरेलू हिंसा व सामाजिक सरोकारों के प्रति चेतना जागृत हुई है साथ ही साथ शांति शिक्षा के क्षेत्र में भी अभिवृद्धि हुई है।

9.4 आधुनिक शांति शिक्षा की अभिधारणा

शांति शिक्षा में नवीन शैक्षणिक सुधारों की जड़ो का विश्लेषण किया जाता अभिप्रेत है, जो विद्यालय तथा विद्यालय के बाहर हिंसा के विभिन्न स्वरूपों से सम्बद्व है। इस महत्वपूर्ण विषय में विद्यालय की उपलब्धियों में गुणात्मक सुधार करने की प्रबल क्षमता है। शांति शिक्षा में वे शिक्षक अभिप्रेत है जो शांति की शिक्षा देते है - शांति क्या है, इसका अस्तित्व क्यों नहीं है , इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत शांति प्राप्ति में चुनौतियों का सामना करना, अहिंसक कौशल विकसित करना,तथा शांतिप्रद व्यवहार, दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करना आदि सम्मिलित है। शांति शिक्षा के पॉच आधार तत्व है -

- यह हिंसा के मूल की व्याख्या करती है
- यह हिंसा के विकल्पों की शिक्षा प्रदान करती है।
- यह हिंसा के विभिन्न स्वरूपों में समन्वयक कर लेती है।
- शांति स्वयं में ही एक प्रक्रिया है जो संदर्भ के अनुरूप परिवर्तित होती है।
- संघर्ष सर्वव्यापक है।

प्रथम अभिधारणा की भूमिका चेतावनी का बिगुल बजाकर हिंसा के खतरों के प्रति सचेत करता है। इस अभिधारणा के अन्तर्गत शांति शिक्षा की कक्षा का छात्र अन्य के बारे में जान पाता है जिससे कि शत्रु छवि की धारणा विखंडित हो। द्वितीय अभिधारणा शांति की विभिन्न रणनीतियों का निरूपण करती है, जिससे हिंसा की उन समस्याओं को संबोधित किया जा सके। जो प्रथम अभिधारणा में निरूपित की गई। तृतीय अभिधारण शांति शिक्षा की गतिशील प्रकृति की व्याख्या करती है। जिस प्रकार वह अपना महत्व, बल हिंसा के उन अनेकानेक बदलते प्रकारों के अनुरूप परिवर्तित करती है , जिनसे वह संबंधित है। चतुर्थ अभिधारणा में शांति शिक्षा के सिद्धान्त एवं व्यवहार विशिष्ट सांस्कृतिक प्रतिमानों के अनुरूप स्थित है। पंचम अभिधारणा यह प्रतिपादित करती है कि शांति शिक्षक संघर्ष को समाप्त तो नहीं कर सकते किन्तु वे छात्रों को ऐसे मूल्यवान कला कौशल उपलब्ध करवा सकते है। जिनसे वे संघर्ष को नियंत्रित कर सकें।

प्रथम व द्वितीय अभिधारणायें शांति शिक्षा हेतु एकीकृत मिशन निर्मित करती है। जबकि तृतीय एवं चतुर्थ अभिधारणायें शांति शिक्षा की मूल अभिधारणाओं को विविधता प्रदान करती है। उदाहरणार्थ -

संयुक्त राज्य शांति शिक्षा शिक्षकों ने अपने बीसवें केन्द्र को प्रारम्भ करते समय आधनिक युद्धों के खतरों को अपनी कक्षाओं में दिग्दर्शित किया तथा इस विनाश को टालने हेतु लीग आफ नेशन्स जैसी समराष्ट्रीय संस्थाओं का गठन करने के पक्ष में तर्क प्रस्तुत किये। बीसवीं सदी के अन्त में शांति शिक्षक हिंसा को रोकने के पाठ पढ़ा रहे थे जिससे बाल नशीले पदार्थो का सेवन, लैंगिंग, उत्पीड़न तथा घरेलू एवं नागरिक हिंसा जैसे खतरों से बचने में सहायता प्राप्त हो सकें। इन प्रयासों के साथ-साथ शिक्षक ऐसे शांतिमय विश्व की परिकल्पना प्रस्तुत करते है। जो बालकों को सकारात्मक सोच के साथ ऐसा संसार प्राप्त करने की अभिप्रेरणा दें।

शांति शिक्षा की कक्षाओं में विषय वस्तु हिंसा के विभिन्न स्वरूपों के अनुरूप विविधता पूर्ण होती है जो उन कक्षाओं में संबोधित किये जाते है। शांति के विभिन्न संस्कृतियों में विभिन्न अर्थ अभिप्रेत है तथा अलग - अलग आशय वहॉ होते है जहॉ ये शांति प्रक्रियायें प्रयुक्त होती है। उदाहरणार्थ आतंरिक शांति तथा बाहय शांति में भेद है। आन्तरिक शांति का संबंधऐसी अवस्था से है जब व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के बारे में सोचता है , उनमें श्रद्धा व सम्मान बनाये रखता है। जबकि बाह्य शांति प्रक्रिया प्राकृतिक पर्यावरण सांस्कृतिक अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, नागरिक समुदाय, परिवार एवं व्यक्ति विशेष के संदर्भ में मानी जाती है। इनमें से भी प्रत्येक क्षेत्र में शांति के अलग अलग अर्थ हो सकते है। अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में इसका तात्पर्य अक्सर शक्ति संतुलन से लिया जाता है। समाज शास्त्रीय सांस्कृतिक शांति का अध्ययन कर सकते है, जो अंहिसा को वैधानिकता प्रदान करता है तथा हिंसा का तिरस्कार करता है। अन्तर सांस्कृतिक शांति का निहितार्थ धर्म विरोधी तथा पारस्परिक आस्था का संवाद बहुसांस्कृतिक संप्रेषण व शिक्षा आदि हो सकता है। नागरिक समाजों में शांति रहने से पूर्ण रोजगार , समृद्ध सुलभता, शीघ्र स्वास्थ्य प्राप्ति गुणात्मक शिक्षा जैसे अवसरों को बढ़ावा मिलेगा। मनोवैज्ञानिक जो व्यक्तियों को पारस्परिक संघर्षो से आशांकित है, उन्हें सकारात्मक परस्पर संवाद के विषय में शिक्षित करेगें जिससे उनके मतभेद दूर हो सके। पर्यावरणविद् ऐसे प्रासंगिक टिकाउ व्यवहारों तथा रीतियों की ओर इंगित करेगें जो हजारों वर्षो से वहॉ के मूल निवासियों द्वारा व्यवदूत होती रही है।

पंचम अभिधारणा हमारे जीवन की जटिल भूमिका संबंधी कुण्ठाओं का स्मरण कराती है। ये कुण्ठायें व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनों ही स्तरों पर पायी जाती है। वस्तुत: समाजशास्त्रियों ने यह संकेत दिया है कि सामाजिक परिवर्तन हेतु संघर्ष एक आवश्यक उपकरण है। कुछ समाज सिद्धान्तवादी जैसे यह मानते है कि संघर्षो से उबरना एक मिथकीय परिकल्पना है क्योंकि सामाजिक संघर्ष किसी भी सामाजिक संगठन एवं संरचना की प्रकृति में ही अन्तनिर्हित होते है। शांति शिक्षक इस संघर्ष के गुणों तथा खतरों दोनों से ही अवगत कराते हैं।

9.5 बीसवीं शताब्दी में शांति शिक्षा

सदी के प्रारम्भ में ही शांति शिक्षा के शिक्षकों ने आधुनिक विश्व के विध्वंसात्मक स्वरूप के खतरों के प्रति सचेत कर दिया गया था। शताब्दी के अन्त तक उन्होनें नागरिक तथा घरेलू हिंसा के प्रति ध्यान आकर्षित करना प्रारम्भ कर दिया था। अमरीका तथा यूरोपवासियों ने 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में ही

शांति समितियों का गठन प्रारंभ कर दिया। 1912 में स्कूल शांति लीग के चेप्टर शाखा लगभग प्रत्यक राज्य में थी जो स्कूल के माध्यम से न्याय एवं मातृत्व के अन्तर्राष्ट्रीय हितों को बढ़ावा दे रहे थे।
प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्धों के विनाशकारी काल में सामाजिक ज्ञान के शिक्षकों ने अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का पढ़ाना प्रारंभ किया जिससे कि उनके छात्र विदेशियों के विरूद्ध युद्ध करने की कामना नहीं करें। अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययनों का उपयोग एक सहकारी सहयोगी विश्व बनाने में योगदान करने हेतु किया।
इसी काल में मारिया मौन्टेरसी यूरोप का भ्रमण करती हुई, शिक्षको से पुरानी सत्तात्मक शिक्षा प्रणालियों का परित्याग संचालित करने का आग्रह करने तथा उनके स्थान पर नये गतिमान पाठ्यचर्या संचालित करने का आग्रह करना चाहिये ताकि छात्र उसमें एक यह चुनाव कर सकें कि उन्हें क्या पढ़ना है। उन्होनें देखा कि शांति की स्थापना ऐसी शिक्षा पर निर्भर करती है कि जो बच्चों की आत्मा को स्वतंत्र करें दूसरे के प्रति प्रेम को बढ़ावा दे तथा अनिवार्य मुक्तिबंधों का वातावरण दूर करें। इटली से अपेक्षा थी कि वे अपने प्रेम की सामथ्र्य क्षमता का प्रयोग करें जिससे अत्यधिक गरीबी के बीच छात्रों को सम्पन्न होने के अवसर मिल सके। अन्य शांति शिक्षकों के विपरीत जो इस बात पर बल देते थे कि शांति कक्षाओं में क्या पढ़ाया जावें, डा0 मोन्टेरसी का जोर शिक्षकों द्वारा ऐसी शिक्षा की प्रणाली प्रयुक्त करने पर था जो शांतिप्रद संसार के निर्माण में सहायक सिद्ध हो।
महाविद्यालय स्तर पर शांति शिक्षा का प्रथम आकादमिक प्रयोग 1948 में इंडियाना के उत्तरी मैनचेस्टर में मैनचेस्ट कॉलेज में प्रारंभ हुआ। वियतनाम युद्ध ने और अधिक विश्वविद्यालय एवं कॉलेज कार्यक्रम लागू करने हेतु उत्प्रेरित किया जो विशेषत: उपनिवेशवाद पर केन्द्रित थे। 1980 के दशक में आण्विक युद्ध की धमकियों ने संपूर्ण विश्व के शिक्षाविदों को निकट ही मंडराते विनाश के प्रति चेतावनी देने हेतु प्रेरित किया। आण्विक विनाश से उत्पन्न चिन्ताओं ने शांति अध्ययन पाठ्यचर्या कॉलेजो में भी संचालित करने तथा संपूर्ण औद्योगिक स्तर में, प्राइमरी व सैकेण्डरी स्तर तक ऐसी पाठ्यसामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराने का मार्ग प्रशस्त किया जो शांतिप्रदत तरीकों से संघर्ष समाधान कौशलों व तकनीकी की शिक्षा देने के प्रति समर्पित था। साथ ही साथ दक्षिण के अविकसित देशों के प्रति चिन्ता ने भी विविध प्रकार की शांति शिक्षा प्रदान करने की दिशा दिखाई जिसमें अधिक ध्यान वहॉ के संरचनात्मक तत्वों पर था जो मानवाधिकारों की सुरक्षा को संपूर्ण आर्थिक विकास को बाधित करते है।
शांति पर गंभीरता पूर्वक बौद्धिक जॉच एवं विश्लेषण द्वारा शोध कार्य 1960 के दशकों में नार्वे में जो कि अन्तर्राष्ट्रीय शोध संगठन के प्रणेताओं में से एक थे के नेतृत्व में प्रारम्भ हुआ निषेधात्मक नकारात्मक शांति सकारात्मका विधायक शांति के बीच एक महत्वपूर्ण विभेद किया। गल्तुंग ने संकेत दिया है कि किस प्रकार संरचनात्मक हिंसा संसाधनों का समान बंटवारा नहीं करना हिंसा का कारण बन जाता है। उसने शांति शिक्षा के क्षेत्र को अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का अध्ययन से भी आगे निस्त्रीकरण मानवधिकार एवं विकासात्मक विस्तृत कर दिया।
1974 में सामुदायिक संघर्ष पर क्वेकर प्रोटेक्ट न्यूयार्क में 'द फ्रेण्डली क्लास फार ए स्माज प्लेनेट' छोटे बच्चों को पढ़ाने वाले शिक्षकों के लिए पाठ्यक्रम प्रकाशित किया जो अपने छात्रों में वह सामर्थ्य देना चाहते थे जिससे उनमें वह स्व-योग्यता की भावना,समुदाय निर्माण तथा संघर्ष निवारण हेतु संरचनात्मक कौशल विकसित हो सके। तब से इस पाठ्यचर्या के संस्करण प्रकाशित हो चुके है एवं साथ ही अलग-

अलग भाषाओं में अनुवादित हो चुकी है। इसके पश्चात् संस्करण व प्राक्कथन में इसके दर्शन का सार तथा प्राईमरी स्कूलों में अनेक आधुनिक शांति शिक्षा कार्यक्रमों के लक्ष्य बनाये गये है। इसमें कक्षा में प्रयुक्त किये जा सकने वाले तीन प्रमुख लक्ष्य है।

1. ऐसे प्रगतिशील समुदायों का संवर्धन करना जहॉ बच्चे खुले संप्रेषण के इच्छुक तथा सामथ्र्यवान हो।
2. बालकों में मानवीय संवेदनाओं के प्रति अर्न्तदृष्टि प्राप्त करने तथा अपनी भावनाओं को आदान-प्रदान करने में सहायक होना।
3. बालकों के साथ विशिष्ट व्यक्तिगत उपायो की खोज करना जिससे वे समस्याओं के प्रति अनुक्रिया कर सके तथा संघर्षो को रोक सके।

पाठ्यक्रम संघर्षो की जड़ों में जानकर जैसा कि वे किशोर बालकों के मन में थी, आपसी सहयोग की शिक्षा देने का प्रयत्न करेगा। यह अनेक पाठ्यक्रमों से मिलता है जिनकी रूपरेखा शांति शिक्षाविदों द्वारा इस प्रकार बनाई गई है कि वह बच्चों में सहिष्णुता की अभिवृत्ति उत्पन्न करने में सहायक हो। यह उन असामाजिक ताकतों के विषय में गंभीर अध्ययन की उपेक्षा करती है जो हिंसा के कारण बनते है।

1980 के दशक में तीन पुस्तकें प्रकाशित हुई जो उस काल का प्रतिनिधित्व करती है। जो आण्विक विनाश के विषय में अत्याधिक जागरूक थे। वे है - एज्यूकेशन फॉर पीस नर्वि के रचयिता ब्राकेउकने Brocke utne एवं कॉम्प्रीहेन्सिव पीस एजुकेशन रचयिता रडंन (Rerdon) तथा पीस एजुकेशन रचयिता Harrls हेरिस दोनों की संयुक्त राज्य के नागरिक ने सैनिकवाद युद्ध तथा पुरूषों द्वारा स्त्रियों पर कार्यरत हिंसा की ओर संकेत इंगित किया। रडंन Rerdon ने तर्क दिया कि विद्यालयों के सारभूत मूल्य संरक्षण रखना चिन्तन करना तथा प्रतिबद्वता होना चाहिये तथा शांति शिक्षा की मूल अवधारणा भूमंडलीय प्रबन्धन वैश्विक नागरिकता तथा मानवीय संबंध होने चाहिए। उनका कहना था कि शांति शिक्षा का सामान्य उद्देश्य प्रामणिक भू-मंडलीय चेतना का विकास उपलब्ध करवाना है। जो हमें वैश्विक नागरिक के रूप कार्य करने में करने के लिए समर्थ बना सके। नव सहस्त्रविद् के प्रारंभ में संघर्ष समाधान शिक्षा पश्चिम के सर्वाधिक तेजी से बढ़ती हुई सुधारवादी स्कूली शिक्षा है। संघर्ष समाधान शिक्षक उत्तर आधुनिक विश्व में अस्तित्व को बनाये रखने हेतु आवश्यक मूल्य संचार एवं संवाद दक्षता सिखायें इसकी एवज में उन्होनें शिक्षको, बच्चों को सभ्य आचरण के कुछ और परिष्कृत पहलू बताये। नारी स्वतंत्रता वादियों ने शांतिप्रद उपागमों को विद्यालयों तक विस्तारित करने में योगदान किया है। जिससे विद्यालयों का अपनी पाठ्यचर्या का फोकस प्रतिस्पर्धात्मक से हटाकर संरक्षणात्मक करने पर जोर दिया जो घरेलू कौशल पर बल देता है।

बीसवीं सदी के अन्त में संयुक्त राष्ट्र के नेतृत्व में विद्यालयों में हिंसा के विकल्पों को पढ़ाने हेतु अनेक अपीले जारी की गई। यूनेस्को को 28वां सामान्य सम्मेलन जो नवम्बर 1995 में हुआ, 186 राज्यों द्वारा यह वक्तव्य दिया गया कि बीसवीं सदी के अन्त में प्रमुख चुनौती युद्ध व हिंसा की संस्कृति से शांति की संस्कृति की ओर से संक्रमण करना है। संयुक्त राज्य महासभा के नवम्बर 1998 में शांति का प्रस्ताव स्वीकृति किया गया एक अन्य प्रस्ताव में वर्ष 2000 को शांति की संस्कृति को अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष घोषित किया गया और 2001-2010 के वर्षो को विश्व के बच्चों के लिए शांति एवं अहिंसा की संस्कृति का

अन्तर्राष्ट्रीय दशक घोषित किया गया। उस अध्यादेश के आधार पर यूनेस्को ने आठ कार्यक्षेत्रों का विकास किया है जो युद्ध की संस्कृति से शांति की संस्कृति की और संक्रमण करने हेतु आवश्यक है। इनमें से प्रथम है शिक्षा द्वारा शांति नोबेल शांति पुरस्कार विजेताओं द्वारा लिखित एक घोषणा पत्र (Lemonde) में जुलाई के प्रकाशन में कहा गया कि अहिंसा द्वारा हिंसा से लड़ने का एकमात्र तरीका शिक्षा ही है।

9.6 शांति शिक्षा के विभिन्न उपाय

वर्तमान समय वैश्विक स्तर पर, सामाजिक स्तर पर और वैयक्तिक स्तर पर विभिन्न तनाव और संघर्ष से गुजर रहा है। आवश्यकता है कि लोगों को हिंसा की जड़ों को समझने का तथा हिंसा के विकल्पों को अपनाने का प्रशिक्षण दिया जाये। शांति शिक्षा के माध्यम से विषय सामग्री तथा शिक्षण पद्धति को विकसित किया और इन्हें विभिन्न तरीकों से प्रस्तुत किया मानवाधिकार शिक्षा व्यापक अर्थो में वह शिक्षा है जो समस्त मनुष्यों की अस्मिता का समान करती है। अत: शांति शिक्षा के इस पहलू के विभिन्न समूहों के बीच व्याप्त शत्रुता को कम करने के उद्देश्य से बहु सांस्कृतिक समय विकसिक करने के पहलू को शामिल करना होगा। इस परम्परा के अन्तर्गत आने वाले शांति शिक्षक मानवाधिकारों के सार्वभौमिक घोषण पत्र निदेर्शित होते है जो उन मूल्यों का कथन करना है। जिन्हें आर्थिक , सामाजिक व राजनैतिक न्याय प्राप्ति हेतु प्राप्त करना है। मानवाधिकार के अन्य वक्तव्य प्राकृतिक न्याय के उच्च मूल्य को सार्वभौमिक रूप से प्रयुक्त होते है। वह सरकारी कानूनों के ऊपर की संकल्पना से लिये गये है। मानवाधिकार संस्थानों ने लिंग विकलांगता तथा सैक्स संबंधी अवस्थितियों की ओर ध्यान देना प्रारंभ कर दिया है।

9.7 पर्यावरण शिक्षा

पर्यावरण संकट के प्रति भी राष्ट्र का ध्यान आकर्षित हुआ है। वैश्विक गर्मी तीव्र गति से प्रजातियों का विलोपन तथा प्रदूषण के विपरीत प्रभाव के कारण वे अब यह महसूस करने लगे है कि केवल सैनिक सुरक्षा जैसे कि विदेशी खतरों से देश की रक्षा करने की बाते करना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि परिस्थितिक की सुरक्षा पर आधारित सुरक्षा की अवधारण को भी बढ़ावा देना होगा। हालांकि राष्ट्रीय सुरक्षा की परम्परागत अवधारणा की राष्ट्रीय स्तर पर विशिष्ठ चिन्ताएं है फिर भी पृथ्वी की सुरक्षा सम्पूर्ण प्रणाली की सरंचना पर निर्भर करती है। पृथ्वी पर शांति पारिस्थितिकीय संतुलन के बिना प्राप्त नहीं हो सकती है। शांति शिक्षक सचेत करते है कि अनेक तकनीकी प्रगति उन्नति के दावे प्राकृतिक संसार के लिए घातक है। शांति शिक्षक जो पर्यावरण विनाश के प्रति जागरूक व चिन्तित है समुचित तकनीकी तथा वंदनीय प्रमाणिक विकास के विषय सिखाते है। पर्यावरण विद्यार्थियों में प्राकृतिक संसार के कल्याण व स्वास्थ्य के प्रति प्रेम व ध्यान रखने की भावनायें विकसित हो। पर्यावरण का अध्ययन एक समग्र चिन्तन की ओर ले जाता है कि किस प्रकार प्राकृतिक तथा मानवीय परिस्थिति की विश्व दृष्टि बनाने में योगदान करना

चाहिये। जिसमें पर्यावरण संबंधी मूल बाते निहित हो तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण संबंधी गतिशील अनुभव प्रदान कर सकें।

अन्तराष्ट्रीय अन्तर्राज्यीय व्यवस्था को समझना जो कि अक्सर भू-भाग संबंधी युद्धों में बदल जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में शांति को शक्तियों के सन्तुलन के रूप में देखा जाता है जो परिवर्तन को राज्य स्तर पर अहिंसक रूप से निपटाना संभव बनाता है। इससे शांति संस्कृति को बल मिलना चाहिए। यह द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के काल के लिए विशेषतया सत्य है जिसके बाद संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हुई और अन्तराष्ट्रीय सरकारी संगठनों, गैर सरकारी संगठनों व बहुराष्ट्रीय एवं पराराष्ट्रीय विस्तार हुआ। वैश्विक शांति प्रबोधक ऐसी समझ प्रदान करते है कि किस प्रकार राष्ट्र अपने राज्यों नागरिकों की सुरक्षा हेतु निर्मित करते है। छात्रों की वैश्विकरण के विधायक एवं निषेधात्मक पहलू को भी जानकारी समझ बढ़ाने में सहायक होती है।

अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षण एक विभाग क्षेत्र है। इस क्षेत्र के अनुसंधानकर्ता एक ऐसे विश्व राज्य की ओर नजरे जमाये है जिससे कानून एवं न्यायालय राष्ट्रों के मध्य होने वाले संघर्षो पर अधिनिर्णय दे सके। बाकि अपनी असहमितियों का निबटारा करने के लिए वे युद्धों का सहारा नहीं ले सके। विश्व शांति अध्ययन में प्रयासरत शांति प्रबोधको वैश्विक संस्थाओं की स्थापना की ओर नजर रखे हुए है जो सामूहिक सुरक्षा प्रदान कर सकें। 1975 का यूनेस्कों का विश्वव्यापी उद्देश्यों हेतु शिक्षा नीति की घोषणा में कहा है कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय आयाम समस्त व्यक्तियों, उनकी संस्कृतियों तथा राष्ट्रों की संस्कृतियों के परे सम्प्रेषण की योग्यता तथा अंतिम किन्तु कम नहीं, व्यक्ति द्वारा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की समालोचनात्मक समझने व जान सकने का समर्थन प्रदान करना।

9.8 संघर्ष समाधान शिक्षा

यद्यपि नागरिक हिंसा के उत्तरोत्तर बढ़ते स्तरों के प्रति उभरती चिन्ता ने विविध शांति शिक्षा अध्ययन को प्रेरित किया है। जिसको संघर्ष सामाधन कहा जाता है, जो प्रत्येक नागरिक की गतिशीलता को जानने व समझने में सहायक बनकर उन्हें ऐसे सम्प्रेषण कौशलों से सशक्त करती है जिससे वे शांति संबंध बनाकर व कायम कर सके। यहॉ पर अधिक फोकस आपसी संबंधोंतथा व्यवस्थाओं पर होता है। संघर्ष समाधान शिक्षक बच्चों को मानव संबंधकौशल सिखाते है जैसे प्रबन्धन आवेगों पर नियंत्रण, भावुकता, संचेतना, स्वाग्रही होना, तथा समस्या समाधान होना आदि।

संघर्ष समाधान प्रबोधक विवादों के निबटारे की वैकल्पिक विधियॉ सिखाते है जो छात्रों को कुशलतापूर्वक व अहिंसा पूर्वक निबटाने में समर्थ बनाने हेतु सहयोगी हो। शांति शिक्षा का उपागम को एक अन्य भिन्न स्वरूप जो हाल ही में देखा जा रहा है, हिंसा विरोधी शिक्षा या निवारक शिक्षा में रूचि रखने वाले शांति प्रबोधक अपने छात्रों को यह समझाने का प्रयास करते है कि क्रोध एक सामान्य भावना है और इसे सकारात्मक रूप से नियंत्रित किया जा सकता है। संघर्ष समाधान शिक्षा बच्चों को शांतिकारक कला कौशल प्रदान करती है जिनका उपयोग वे आपसी वैयक्तिक झगड़ों विवादों को काबू प्रबंधन कर सकें। यह शिक्षा बल सुरक्षित स्कूलों के निर्माण पर बल देती है, इसका ध्यान उन हिंसक

पहलूओं पर है जिनके विषय में स्कूल कर्मी यह मानते है कि वे उनके नियंत्रण में है यानि कि उनके छात्रों का व्यवहार समाधान प्रबोधक स्कूल से बारह घटित होने वाली विविध प्रकार की हिंसा को संबोधित नहीं करते।

9.9 विकास शिक्षा

शांति शिक्षा प्रबोधक विकास शिक्षा का प्रयोग अपने छात्रों के संरचनात्मक ढॉचे के विविध पहलूओं को देखने की गहन दृष्टि प्रदान करते है। जिसमें सामाजिक संस्थाओं पर प्रभुत्व तथा उत्पीड़न हेतु उनकी क्रमबद्धता रूझान की प्रवृतियों पर फोकस किया जाता है। इस दिशा के छात्र गरीबों, असहायों की दुर्दशा के विषय में जानकारी प्राप्त करते है तथा विकास की रीति-नीतियों का निर्माण संरचनात्मक हिंसा को संबोधित करने हेतु करते है। इसका उद्देश्य ऐसे शांतिपूर्वक समुदायों का गठन करने को बढ़ावा देना है जो सक्रिय प्रजातांत्रिक नागरिको के हो, जो विश्व संसाधनों के समान बंटवारे में रूचि रखते है। इस प्रकार की शांति निर्माण की रणनीति बनाना सिखाती है जो शांति का प्रयोग मानव समुदायों के सुधार हेतु करें।

9.10 सारांश

शांति का अर्थ केवल प्रत्यक्ष हिंसा की अनुपस्थित ही नहीं है। यह समान अवसरों, शांति और संसाधनो को सुस्पष्ट समान संरक्षण और कानून के निष्पक्ष प्रवर्तन के माध्यम से सामाजिक न्याय की मौजूदगी है। शिक्षा शांति का वातावरण सृजन करें अर्थात् एक ऐसा समाज जहॉ नागरिक अपने सरोकारों चिन्ताओं को स्वतंत्र रूप से बॉट सके,रचनात्मक बने, समय का रचनात्मक उपयोग करें, मानवाधिकारों का भोग करें तथा संघर्षो का समाधान बिना हिंसा के प्रयोग से करें। शांति शिक्षक ऐसी शांति शिक्षण पद्धति को प्रोत्साहित करते है जो शांतिप्रद जनतांत्रिक कक्षा व्यवहारों का मॉडल आधारित हो। वे इस तरह प्रयास करते है कि शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति कुछ ऐसे विचार व व्यवहार विकसित कर सकता है जो शांति पूर्ण व्यवहार की ओर ले जावेगें। इस व्यवहार के सारभूत पहलूओं में दयालुता, साहिष्णुता तथा सहयोगी भावना सन्निहित है इन गुणों का विकास करना शांति शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग है।

9.11 अभ्यास प्रश्न

1. शांति शिक्षा से आप क्या समझते है ?
2. वे कौन से तरीके है जिनके द्वारा वैश्विक स्तर पर शांति को सुदृढ़ किया जा सकता है ?
3. वर्तमान समय में शांति शिक्षा की क्या भूमिका है?
4. शांति शिक्षा के विभिन्न उपायो का समालोचनात्मक मूल्यांकन करें?
5. वैश्विक स्तर पर शांति स्थापना हेतु सुझाव दीजिए?

इकाई-10

अमेरिका में शांति आंदोलन

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 अमेरिकी क्रान्ति
10.3 अमेरिका में गृह युद्ध
10.4 प्रथम विश्व युद्ध
10.5 द्वितीय विश्व युद्ध
10.6 संयुक्त राष्ट्र संघ
10.7 सारांश
10.8 अभ्यास प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगें -

- अमेरिकी क्रांति एवं गृह युद्ध के बारे में जानकारी
- प्रथम विश्व युद्ध में अमेरिका की भूमिका के संबंधमें
- द्वितीय विश्व युद्ध एवं उससे संबंधितअन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के संबंधमें
- संयुक्त राष्ट्र संघकी भूमिका के बारे में।

10.1 प्रस्तावना

सोवियत समाजवादी गणराज्यों के संघ (USSR) के विघटन (1991) के पश्चात् संयुक्त राज्य अमेरिका, अब विश्व की प्रमुख महाशक्ति है। उत्तरी अमेरिका महाद्वीप में स्थित 50 राज्यों का समूह जो एक संघीय गणतंत्र है, संयुक्त राज्य अमेरिका कहलाता है। यू.एस.ए. को प्राय: यू.एस. तथा आम बोलचाल में बहुधा ''स्टेट्स'' कह दिया जाता है। अठारहवीं सदी के प्रसिद्ध व्यापारी सेमुअल विल्सन का ''निकनेम'' अंकल सैम था, जिस पर काफी कार्टून भी बनते है। यही कार्टून अब संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार हेतु भी प्रयुक्त होते है। वैसे यू.एस. का अर्थ अंकल सैम तथा यूनाइटेड स्टेट्स दोनों ही है। संयुक्त राज्य अमेरिका में 49 राज्य मुख्य भूमि पर तथा एक राज्य ''हवाई द्वीप'' पृथक से स्थित है। सन् 1492 में भारत की खोज में निकले इटली के कोलम्बस ने अज्ञानतावश नई दुनिया अर्थात् अमेरिका की खोज की। कालान्तर में अमेरिका ब्रिटिश शासन के अधीन हो गया। सन् 1776 में ब्रिटिश साम्राज्य की दमनकारी

नीतियों तथा अत्यधिक करों के विरोध में पूर्वी अमेरिका के निवासियों ने विद्रोह कर दिया तथा स्वाधीनता के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर कर संयुक्त राज्य अमेरिका की शुरूआत की। लम्बी अवधि तक आपसी संघर्ष के पश्चात् अमेरिकावासियों की विजय हुई तथा स्वतन्त्र अमेरिका के जॉर्ज वाशिंगटन (1789) प्रथम राष्ट्रपति बने। सदियों पुरानी गुलामी प्रथा के विरोध में सन् 1861 में उत्तरी राज्यों में संघर्ष भी शुरू हुआ तथा 1865 में यह प्रथा समाप्त हुई। प्रथम तथा द्वितीय विश्व युद्धों के समय अमेरिका की शक्ति का विश्व स्तर पर लोहा माना गया तथा वर्तमान में पूँजीवादी विचारधारा का समर्थक यह देश विश्व की एक ही महाशक्ति है।

10.2 अमेरिकी क्रान्ति

अमेरिकी क्रान्ति का सूत्रपात कब हुआ, इस संबंधमें निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। फिर भी यह स्पष्ट है कि क्रान्ति 1775 में ही हुई थी। जॉन एड्मस के अनुसार, ''मूल क्रान्ति जब वास्तव में समाप्त हो गयी तब क्रान्तिकारी युद्ध प्रारम्भ हुआ। अमेरिकी क्रान्ति केवल क्रान्ति ही नहीं, वरन् स्वतन्त्रता संग्राम थी। इस स्वतन्त्रता संग्राम का संक्षेप में क्रमानुसार निम्न प्रकार अध्ययन किया जा सकता है -

क्रान्ति के प्रारम्भ में अमेरिकी उपनिवेशों के पास पर्याप्त व्यापारी पनडुब्बियों तथा नाविकों का एक बड़ा समूह था। प्रारम्भ में कांग्रेस ने एक नौ सेना बनाने का आदेश दिया, जिसमें लगभग 56 जलपोत हो, इनके अतिरिक्त 11 उपनिवेशों ने बन्दरगाहों की रक्षा के लिए छोटे युद्धपोत बनाए। अनेक सरकारी व्यापारिक जलपोतों को एक अधिकार पत्र दिया गया ताकि वे शत्रु के व्यापारी जहाजों पर आक्रमण कर सकें। इनमें से अनेक में उपयोगी रण सामग्री भरी हुई थी, जिसका उपयोग उपनिवेशों ने अपने लाभ के लिए किया। 1776 में इंग्लैण्ड ने न्यूयार्क पर उत्तर व दक्षिण दोनों दिशाओं से आक्रमण करने की योजना बनाई ताकि उपनिवेशों की शक्ति को विभाजित किया जा सके। अमेरिकी कांग्रेस ने भी वांशिगटन को सैनिक भर्तियां करने के लिए विशेष अधिकार दिए। अपनी सैनिक कुशलता से उसने प्रिन्सटन पर विजय प्राप्त की। इसी प्रकार 1777 की अपनी सैनिक कार्यवाही में साराटोगा में अमेरिका को विजय प्राप्त हुई, जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार समझौते के लिए तैयार हुई। ब्रिटिश संसद के अनेक बड़े नेताओं ने युद्ध जारी रखने की अपेक्षा स्वतन्त्रता देना अधिक उपयुक्त समझा एवं मार्च 1778 में संसद ने दमनकारी कार्यों को छोड़ने की निर्णय लिया। 6 फरवरी, 1778 को फ्रांस व संयुक्त राज्य अमेरिका ने एक सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर किए, जिसमें यह निर्णय लिया गया कि कोई भी पक्ष ग्रेट ब्रिटेन से अलग से सन्धि नहीं करेगा और न ही उस समय तक हथियार डालेगा, जब तक अमेरिका स्वतन्त्र न हो जाए। 1779 में स्पेन तथा 1780 में हॉलैण्ड भी युद्ध में शामिल हो गए। सन् 1778-1782 में उत्तर में युद्ध प्रारम्भ हुआ, किन्तु उत्तर को जीतने में असमर्थ रहने पर अंग्रेजों की सेनाएं दक्षिण की ओर मुड़ी। 1779 व 1780 के बीच दक्षिण में ब्रिटेन की विजय, धन प्राप्त करने की सरकार की असमर्थता तथा इन सब के अतिरिक्त नई भर्तियों की आवश्यकता आदि से देशभक्त थोड़े निराश थे, किन्तु लम्बे संघर्ष के उपरान्त 1782 में अंग्रेजों ने दक्षिण के सभी बन्दरगाहों को छोड़ दिया और शाही फौजों ने न्यूयार्क शहर में सैनिक स्थानों पर बिगुल बजाने के अतिरिक्त अन्य किसी अधिकार का प्रयोग नहीं किया। 1782 के प्रारम्भ में कांग्रेस ने शान्ति वार्ता के लिए एक आयोग पेरिस भेजा तथा 3 सितम्बर, 1783 को सामान्य सन्धि पर हस्ताक्षर किए गए। इस

सन्धि की शर्तों द्वारा अमेरिका की उत्तरी सीमाएं बहुत कुछ वे ही निर्धारित की गयी, जो इस समय है। इस प्रकार अमेरिकी स्वयं अपने भाग्य के विधाता बन गए और एक नया राष्ट्र उदित हुआ, जो नए सिद्धान्तों पर आधारित था। तत्कालीन यूरोप की सर्वोच्च शक्ति और विशाल साम्राज्य के स्वामी इंग्लैण्ड को उपनिवेशों ने पराजित कर दिया, यह विश्व के लिए आश्चर्य की बात थी। इंग्लैण्ड विशाल सैनिक शक्ति का स्वामी था, उसकी जल-सेना अजेय थी, सेना सुप्रशिक्षित और आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित थी। इंग्लैण्ड के मुकाबले उपनिवेशियों की सैनिक शक्ति बहुत कमजोर थी, जल-सेना का अभाव था, स्थाई संना नहीं थी, कांग्रेस के सदसयों में एकता का अभाव था और आर्थिक साधन बहुत सीमित थे। किन्तु इन विपरीत परिस्थितियों में भी उपनिवेशों ने विजय प्राप्त की, जो कि दृढ़ इच्छा शक्ति का परिचायक है।

गृह युद्ध :-

सन् 1860 तक उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका के बीच मनमुटाव इतना बढ़ चुका था कि समझौते की संभावनाएं धूमिल पड़ गयी, राजनैतिक सूझ-बूझ असफल हो गयी, दक्षिण ने संघ से अपने संबंध तोड़ लिए और 1861 में संयुक्त राज्य अमेरिका को ऐसे गृहयुद्ध में उलझना पड़ा, जिसे विश्व इतिहास का महानतम् गृहयुद्ध माना जाता है। अन्त में दक्षिण की हार हुई और सेना के जोर से उसे उन शर्तों को मानने के लिए बाध्य किया गया, जिनसे बचने के लिए उसने संघ छोड़ा था। अमेरिकी गृह युद्ध की व्यापकता का अनुमान अमेरिकी क्रान्ति से इसकी तुलना करके लगाया जा सकता है। 1862 में मैक्लेलन तथा 1865 से ग्रान्ट की सेना जॉर्ज वाशिंगटन की सेना से सात गुनी थी। गृह युद्ध में जन और धन की अतुलित क्षति हुई। दक्षिण के अनेक भाग वीरान बन बए। शिनान्डोआ की घाटी पूर्णत: उजाड़ दी गयी। कोलम्बिया, रिचमण्ड तथा अटलान्टा जैसे शहर आग लगाकर नष्ट कर दिए गए। पुरानी श्रम-प्रणाली तथा भौतिक सम्पत्ति नष्ट होने से दक्षिण की आर्थिक हत्या हो गयी जबकि गृह युद्ध उत्तर के लिए वरदान सिद्ध हुआ। विजयों का वैभव तथा सम्पदा का, अपूर्व आत्मविश्वासों का और राष्ट्रीय एकता के नेतृत्व का उपहार लाया। नि"क"र रूप में प्रो. एलसन का यह कथन उल्लेखनीय है कि, ''युद्ध एक शल्य चिकित्सा था। यह दु:खदायी होते हुए भी संयुक्त राज्य के लिए अनकहा आशीर्वाद बन गया।''

10.3 प्रथम विश्व युद्ध

प्रथम विश्व युद्ध यूरोपीय राज्यों की आर्थिक तथा राजनैतिक अव्यवस्थाओं और असन्तोषों का परिणाम था। यद्यपि सभी प्रमुख यूरोपीय राज्यों में युद्ध समर्थक समुदाय थे, किन्तु किसी एक राज्य को इसके नियोजन के लिए उत्तरदायी नहीं माना जा सकता। प्रो. पार्किस का कहना है कि ''युद्ध का मुख्य कारण विश्व का स्वतन्त्र संप्रभु राज्यों में विभाजन और उनके मध्य राष्ट्रीय तथा साम्राज्यवादी विरोध का विकास होना था।'' इसका तात्कालिक कारण यह था कि 28 जून 1914 को एक स्लॉव राष्ट्रीय द्वारा आस्ट्रिया-हंगरी साम्राज्य के उत्तराधिकारी (Arch Duke Franz Ferdlnand) की हत्या कर दी गयी। आस्ट्रिया सरकार का विश्वास था कि यह हत्या वल्कान राजधानी सर्बिया के षड़यन्त्र का फल है। अत: उसने विरोध पत्र के साथ सर्बिया के आन्तरिक मामलों पर नियन्त्रण रखने की मांग की और उसके अस्वीकृत होने पर 28 जुलाई, 1914 को यृद्ध की घोषणा कर दी। बल्कान में आस्ट्रिया की शक्ति बढ़ने

पर सकल यूरोप का सन्तुलन बिगड़ गया और संधियों में बंधा होने के कारण एक के बाद दूसरा देश विवाद में उलझता गया। दो बराबर के युद्धमान पक्ष बन गए-

(क) मित्र तथा संयुक्त राष्ट्र जैसे - इंग्लैण्ड , फ्रांस, रूस, सर्बिया, पूर्तगाल, जापान, इटली, यूनान, चीन, क्यूबा, पनामा, ब्राजील आदि।

(ख) केन्द्रीय शक्तियां जैसे- जर्मनी, बल्गारिया, आस्ट्रिया, हंगरी तथा टर्की।

प्रथम विश्व युद्ध तथा अमेरिका यूरोपीय झगड़ों से दूर रहा। 1913 में डेमोक्रेट दल के नेता वुडरो विल्सन अमेरिका के राष्ट्रपति बने। उनकी नीति के आधार विश्व में लोकन्त्र का विकास, चिरस्थायी शान्ति, मानव समुदाय की समृद्धि, संवैधानिक राज्यों का आदर, तानाशाही व विशेष स्वार्थी का विरोध व पारस्परिक लाभ के लिए व्यापार आदि थे। प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व यूरोप में बिगड़ी हुई स्थिति के समय विल्सन ने अपने निजी सचिव कर्नल हाउस को यूरोपीय समस्या के शांतिपूर्ण निपटारे के लिए वहां भेजा, किन्तु उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। 4 अगस्त 1914 को युद्ध छिड़ गया तथा अमेरिका ने महायुद्ध से अलग रहना निश्चित किया, इसके निम्न कारण थे:-

(1) **प्रारम्भ में अमेरिकी दृष्टिकोण**:- 1914 में प्रथम विश्व युद्ध छिड़ने पर अधिकांश अमेरिकी उससे अलग रहना चाहते थे, क्योंकि वाशिंगटन ओर मुनरो की परम्परा के अनुसार यूरोप तथा अमेरिका राजनीतिक दृष्टि से दो पृथक संसार थे। भूतपूर्व राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने भी तटस्थता का समर्थन किया। इस युद्ध के संबंध में विल्सन के स्पष्टत: दो दृष्टिकोण थे- (1) दोनों पक्षों के कार्यों का औचित्य तथा अनौचित्य है, अत: अमेरिका को निष्पक्ष बने रहकर मध्यस्थता का कार्य करना चाहिए। (2) मित्र राष्ट्र जर्मनी की अपेक्षा अधिक सही थे। मित्र राष्ट्रों की ओर झुकाव हेते हुए भी अमेरिका तटस्थ बना रहा।

(2) **संयुक्तराज्य की तटस्थता**:- कुछ अमेरिकी लगातार विल्सन पर युद्ध में शामिल होने के लिए दबाव डाल रहे थे, किन्तु मुनरो सिद्धान्त के कारण, युद्ध के लिए पूरी तैयारी न होने के कारण तथा अमेरिका के राष्ट्रीय हित में न होने के कारण विल्सन तथा देश का बहुमत तटस्थ रहना चाहता था। बाद में जब जर्मनी की अन्तर्राष्ट्रीय कानून-विरोधी गतिविधियां बढ़ी तो तटस्थता को जर्मनी के पक्ष का समर्थन माना जाने लगा। 6 अप्रैल, 1917 तक अमेरिका तटस्थ नीति का पालन करता रहा।

1914 से 1917 के बीच कई घटनाएं घटी, जिनके फलस्वरूप अमेरिका ने तटस्थ नीति का परित्याग कर युद्ध में मित्रराष्ट्रों के पक्ष में लड़ना स्वीकार किया। 6 अप्रैल, 1917 को अमेरिका के निम्न सदन प्रतिनिधि सभा 50 के विरूद्ध 373 मत और उच्च सदन सीनेट ने 6 के विरूद्ध 82 मत से जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी गयी। इस प्रकार अमेरिका के इतिहास में यह प्रथम अवसर था, जबकि राष्ट्रीय स्वार्थ हेतु बाध्य होकर अमेरिका मुनरो सिद्धान्त की उपेक्षा कर प्रथम महायुद्ध में लिप्त हो गया। राष्ट्रपति विल्सन के उत्तेजनात्मक नारों 'युद्ध/युद्ध के अन्त के लिए युद्ध, युद्ध प्रजातन्त्र के लिए' ने एवं अमेरिकन हस्तक्षेप ने एक नैतिक युद्ध को मोड़ दे दिया। उन्होंने कहा कि हम प्रजातन्त्र की रक्षा के लिए युद्ध कर रहे है। अमेरिकी सेनाओं की

सहायता से मित्र-राष्ट्रों के भाग्य का पासा पलट गया। 11 नवम्बर, 1918 को युद्ध विराम हो गया। अमेरिकी आगमन के 19 महीने बाद ही यूरोप का यह दीर्घकालीन, विध्वंसक संघर्ष मित्र राष्ट्रों की पूर्ण विजय के साथ समाप्त हो गया।

पेरिस शांति सम्मेलन

8 जनवरी, 1918 को विल्सन ने शान्ति सन्धि के उद्देश्यों को चौदह शर्तों के रूप में संक्षिप्त किया। इनमें कुछ प्रादेशिक परिवर्तनों के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के आदर्शों का भी उल्लेख किया गया था। उदाहरण के लिए सन्धियां खुले रूप में की जाएं, महासमुद्रों की स्वतन्त्रता रहें, राष्ट्रों के बीच आर्थिक रूकावटें न रहें, शस्त्रों में कटौती की जाए, उपनिवेश के दावों का नि"पक्ष समझौता हो तथा राष्ट्रों की एक सामान्य संस्था बनायी जाए। विल्सन की उक्त चौदह शर्तों को जर्मनी ने स्वीकार कर लिया। युद्ध विराम (11 नवम्बर 1918) की शर्तों ने जर्मनी को बुरी तरह कुचल दिया।

जनवरी, 1919 में पेरिस में शान्ति सम्मेलन बुलाया गया। इसमें अमेरिका का प्रतिनिधित्व अकेले विल्सन ने किया। इस शांति सम्मेलन को तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है-

(I) **12 जनवरी से** 14 **फरवरी** 1919 **तक :-** राष्ट्रसंघीय कमीशन के अध्यक्ष राष्ट्रपति विल्सन बने और उनकी अध्यक्षता में ही राष्ट्रसंघ के विषय में विचार-विमर्श हुआ।

(II) **15 फरवरी से** 13 **मार्च :-** विल्सन अमेरिका और प्रधानमंत्री लायड जार्ज ब्रिटेन चले गए और फ्रांस के प्रधानमंत्री क्लीमेंशों को गोली से आहत होना पड़ा। इस समय विभिन्न आयोगों ने आर्थिक व भूमि संबंधीप्रारूप को प्रस्तुत किया।

(III) **14 मार्च से** 28 **जून :-** इस चरण में ठोस निर्णय लिए गए।

जून, 1919 में शान्ति सन्धि पर हस्ताक्षर हुए और जुलाई 1919 में इसे अमेरिकी सीनेट के सम्मुख रखा गया। किन्तु सीनेट ने उसे विचाराधीन रखा। नवम्बर, 1919 में विदेश सम्बन्धों की समिति ने सन्धि की 14 परिवर्तनों के साथ स्वीकार करने की सिफारिश की किन्तु विल्सन उसे यथावत् स्वीकार करने पर जोर देते रहे। परिणाम सन्धि की असफलता के रूप में प्राप्त हुआ। पार्किस के अनुसार, ''अंत में सन्धि की पराजय केवल इसके विरोधियों की राजनीतिक कुशलता का नहीं, वरन् इसके समर्थकों के अड़ियलपन का परिणाम थीं।''

अमेरिका की पृथकतावादी नीति:- प्रथम विश्व युद्ध में संयुक्त राज्य में सक्रिय सहयोग द्वारा ही मित्र राष्ट्रों को विजय श्री प्राप्त हो सकी, किन्तु इसके बाद वह पुन: अपनी परम्परागत पृथकतावादी नीति की ओर मुड़ गया, इसके मूल में निहित कारणों में से कुछ निम्न थे -

(I) पेरिस की शान्ति सन्धि एवं विल्सन के दृष्टिकोण के प्रति अमेरिकी जनता में तीव्र असन्तोष था। अधिकांश व्यक्ति इसे जर्मनी के लिए कठोर और ग्रेट ब्रिटेन की हित-साधक मानते थे।

(II) संयुक्त राज्य की परम्परागत नीति वाशिंगटन तथा मुनरों के पद चिन्हों पर पृथक्तावादी मार्ग अपनाती रही थीं परिस्थितियों द्वारा बाध्य किए जाने पर ही अमेरिका विश्व युद्ध में उलझा था।

(III) अमेरिकावासी युद्ध में शामिल होने के विल्सन के आदर्शवादी तर्कों की निरर्थकता समझ चुके थे। उन्हें यूरोप की शांति और अमेरिकी स्वार्थ के बीच स्पष्टत: कोई सम्बन्ध दिखाई नहीं दिया।

(Iv) युद्धकाल में विल्सन सरकार ने अनेक ऐसे कानून पारित कराए, जिनसे जनता में असन्तोष पैदा हुआ और इसके परिणामस्वरूप 1918 के चुनावों में कांग्रेस रिपब्लिकन दल को विजय प्राप्त हुई। युद्ध से उत्पन्न मँहगाई, मुद्रा-स्फीति, व्यापक हड़ताले और जन-मानस की हलचल विल्सन विरोधी वातावरण बना रही थी।

(v) पेरिस के शांति सम्मेलन के लिए केवल डेमोक्रेटिक पार्टी से ही प्रतिनिधि लिए गए और अनेक प्रभावशाली नेताओं को छोड़ दिया गया। ये नेता शान्ति सन्धि के प्रस्तावों को ठुकराने के लिए कटिबद्ध हो गए।

(vI) किसी अन्य राष्ट्र के मामलों में असंलग्नता अर्थात् किसी अन्य राष्ट्र से बाध्यतामूलक संधि का अभाव और राष्ट्रसंघ जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का सदस्य बन सामूहिक सुरक्षा प्रबनध में भाग न लेना।

(vII) पृथकतावादी नीति में संयुक्त राज्य अमेरिका को आत्म संतोष था। उन्होंने इसे नैतिक श्रेष्ठता का बाना पहनाकर कहा कि, ''हम सर्वश्रेष्ठ है ओर हमें किसी अन्य राष्ट्र से शिक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है तथा संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व का पथ-प्रदर्शन कर सकता है।''

असंलग्न सहयोग (1920-32):-

सीनेट द्वारा राष्ट्रसंघ और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय दोनों की सदस्यता को ठुकरा दिया गया और विल्सन द्वारा विदेशों में सहयोग के जो वायदे किए गए थे, उन्हें रद्द कर दिया गया। दूसरे देशों से पृथक् रहने के लिए आब्रजन कानून (Imm Igration Act) पारित किया गया।

किन्तु पूर्ण पृथकतावाद की यह नीति अधिक समय तक नहीं चल सकी। विश्व की बदलती हुई राजनीति, अमेरिका के राष्ट्रीय स्वार्थ, विश्व राजनीति की बदलती हुई स्थितियों आदि ने अमेरिका को गैर अमेरिकन मामलों में रूचि लेने के लिए विवश कर दिया।

(I) राष्ट्रसंघ और संयुक्त राज्य**:-** सीनेट द्वारा राष्ट्रसंघ की सदस्यता को ठुकराने के बाद भी अमेरिका ने कुछ समय बाद इसकी बैठकों में अपना प्रेक्षक भेजना प्रारम्भ किया। राष्ट्र संघ के विभिन्न महत्वपूर्ण सम्मेलनों तथा योजनाओं में अमेरिका ने उल्लेखनीय योगदान किया। 1931 की समाप्ति तक अमेरिका राष्ट्रसंघ के संरक्षण में किए गए 13 समझौतों से संलग्न था और जेनेवा में इसके पाँच स्थायी अधिकारी थे। 1934 में यह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन का सदस्य बन गया।

(II) नि:शस्त्रीकरण**,** क्षतिपूर्ति तथा युद्ध ऋणों की समस्या**:-** नि:शस्त्रीकरण और सुदूर पूर्व की समस्याओं पर विचार करने के लिए 12 नवम्बर, 1921 को वाशिंगटन सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें पाँच महा-शक्तियों ने एक नौ-सैनिक सन्धि पर हस्ताक्षर किए। इसमें अमेरिका, ब्रिटेन, जापान, फ्रांस ओर इटली के बड़े युद्ध-पोतों का अनुपात निर्धारित किया गया। 1932 में राष्ट्रसंघ जेनेवा में आयोजित विश्व नि:शस्त्रीकरण सम्मेलन में अमेरिका ने सक्रिय

भाग लिया। अमेरिकी वित्त विशेषज्ञों ने क्षतिपूर्ति और युद्धऋणों की समस्या हल करने में उल्लेखनीय योगदान दिया।

कैलांग ब्रियाँ सन्धि:- अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के शान्तिपूर्ण समाधान और पंच निर्णय के क्षेत्र में अमेरिका का महत्वपूर्ण योगदान रहा। 29 अगस्त, 1928 को संयुक्त राज्य ने फ्रांस के साथ कैलांग-ब्रियाँ सन्धि करके युद्ध को अवैधानिक घोषित कर दिया। इस सन्धि का उद्देश्य दुनिया के राष्ट्रों को राष्ट्रीय नीति के साधन के रूप में युद्ध का परित्याग करने और अपने विवादों को शान्तिपूर्ण साधनों से सुलझाने के लिए वचनबद्ध करना था। इस समझौते ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में अमेरिका की सहयोग-नीति को पुन: जीवित कर दिया।

पार्थक्यवाद से अन्तर्राष्ट्रीयवाद की ओर**:-**

एफ.डी. रूजवेल्ट के 1933 में अमेरिका के राष्ट्रपति बनने के बाद अमेरिकी विदेश नीति पार्थक्य से धीरे-धीरे अन्तर्राष्ट्रीयवाद की ओर उन्मुख होने लगी। रूजवेल्ट ने अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से पृथक रहने के लिए अनेक तटस्थता कानून (Neutrallty Laws) बनवाऐ।

प्रथम तटस्थता कानून 31 अगस्त, 1935 को पारित किया गया। इस कानून द्वारा किसी भी युद्धरत राष्ट्र को शस्त्रों और युद्ध-सामग्री के निर्यात पर रोक लगा दी गयी।

दूसरा तटस्थता कानून 1937 में पारित हुआ, जिसमें प्रसिद्ध ''नगद दाम दो ओर माल ले जाओ'' (Cash and Carry) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया और यह व्यवस्था की गयी कि युद्ध राष्ट्रों को युद्ध सामग्री के अतिरिक्त अन्य सामग्री का निर्यात भी केवल तभी हो सकता है, जब वे नकद मूल्य अदा करें तथा उस सामग्री को गैर-अमेरिकी जहाजों में ले जाएं।

तीसरा और अन्तिम तटस्थता कानून नवम्बर, 1939 में पास किया गया, जिसके द्वारा तटस्थता व्यवस्थाओं में कुछ रियायत दी गयी। युद्धरत राष्ट्रों को शस्त्रास्त्र बेचने का प्रतिबन्ध हटाकर ''नगद दाम दो और ले जाओ'' की नीति लागू कर दी गयी।

यूरोप में हिटलर की आक्रामक गतिविधियों ने, स्पेनिश गृहयुद्ध में हिटलर और मुसोलिनी के खुले हस्तक्षेप ने तथा चीन पर जापान के आक्रमण के कारण रूजवेल्ट तटस्थता नीति से दूर हटने लगा। 29 सितम्बर, 1928 को ''म्यूनिख पैक्ट'' हुआ, जिसके द्वारा जर्मन फौजों को 1 अक्टूबर, 1938 को 'सूडेटन प्रदेश' पर अधिकार करने की आज्ञा प्राप्त हो गयी। म्यूनिख पैक्ट की अमेरिका में भीषण प्रतिक्रिया हुई और रूजवेल्ट ने राजनीतिक नीति में परिवर्तन कर दिया, जिसका उद्देश्य आन्तरिक सुधारों की अपेक्षा संसार में सामूहिक सुरक्षा की नीति पर अधिक बल देना था। इस प्रकार फ्रेंकलिन रूजवेल्ट की नई नीति के द्वारा बदलाव आया। इसके अनुसार-

(i) केवल तटस्थता व पृथकवाद अमेरिका की सुरक्षा के लिए पर्याप्त नहीं है।

(ii) शांतिप्रिय राष्ट्रों का सम्मिलित व प्रत्यक्ष प्रयत्न आवश्यक है व

(iii) अनुचित कार्यवाहियों के फलस्वरूप आक्रामकता को पृथक किया जाना चाहिए।

10.5 द्वितीय विश्व युद्ध

1 सितम्बर, 1939 को जर्मनी ने पौलेण्ड पर आक्रमण कर दिया। यह द्वितीय विश्व युद्ध का श्री गणेश था। 3 सितम्बर को ब्रिटेन व फ्रांस ने भी युद्ध की घोषणा कर दी। जर्मनी व इटली में सर्वाधिकारवादी तानाशाही के विकास ने अब अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को अधिक बढ़ा दिया था। नाजीवाद और फासीवाद ने प्रजातन्त्र और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के पुराने विचारों को गम्भीर चुनौती थी। संयुक्त राज्य इस चुनौती का सामना करने के लिए द्वितीय विश्व युद्ध में तब शामिल हुआ, जबकि 7 दिसम्बर, 1941 को जापान ने पर्ल हार्बर पर आक्रमण करके अमेरिका की लगभग आधी सामुद्रिक शक्ति को नष्ट कर दिया। पर्ल हार्बर पर आक्रमण के साथ-साथ जापान ने शंघाई, हांग-कांग, मलाया और सिंगापुर पर भी बम बरसाए। इस प्रकार अब युद्ध यूरोप और अफ्रीका तक सीमित न रहकर एशिया और प्रशान्त महासागर में भी व्याप्त हो गया। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने 9 दिसम्बर, 1941 को आकाशवाणी पर देश का आह्वान करते हुए कहा, 'अब हम युद्ध में है। हम सभी अन्त तक इसमें रहेंगे। अमेरिकी इतिहास के इस महती कार्य में यहां का प्रत्येक पुरूष, स्त्री व बालक भागीदार बनेगा।

युद्धकाल की सम्पूर्ण राजनीति संयुक्त राज्य ने ग्रेट ब्रिटेन के निकट सहयोग से बनाई थी। यूरोप तथा प्रशान्त महासागर के मंचों पर आंग्ल-अमेरिकी सेनाओं ने एक नेतृत्व के अधीन लड़ाइयां लड़ी। जनरल मार्शल के कथनानुसार ''यह दो मित्र राष्ट्रों द्वारा सैनिक प्रयास में किया गया महत्वपूर्ण एकीकरण था। युद्ध के नियोजन और उत्पादन के सम्बन्ध में समन्वय स्थापित करने के लिए संयुक्त मण्डल बनाए गए और युद्ध के विभिन्न मोर्चों पर कभी ब्रिटिश और कभी अमेरिकी सेनापति को सेना का नेतृत्व सौंपा गया। मित्र राष्ट्रों के युद्ध का लक्ष्य शत्रु सेनाओं का बिना शर्त आत्मसमर्पण भी बहुत कुछ राष्ट्रपति रूजवेल्ट की पहल पर निर्धारित किया गया था।

अमेरिकी रणकौशल का प्रथम निशाना हिटलर था। जून, 1942 में डी.डी. आइजनहावर को इन सेनाओं का नेतृत्व सौंपा गया। मित्र राष्ट्रों की सफलता से मुसोलिनी का पतन हो गया और नई सरकार ने 8 सितम्बर 1943 को युद्ध विराम समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए। आइजन हावर को पश्चिमी यूरोप के आक्रमण का नेतृत्व करने के लिए ब्रिटेन भेज दिया गया। मित्र राष्ट्रों की सेनाएं जर्मनी में सभी दिशाओं से अन्दर तक प्रवि"ट हो गयी। अप्रैल के अन्त में एडाल्फ हिटलर ने बर्लिन के खण्डहरों में आत्महत्या कर ली। 7 मई, 1945 को रीन्स में युद्ध-विराम की शर्तों पर हस्ताक्षर हुए और 8 मई को युद्ध अधिकृत रूप से समाप्त हो गया।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन:- द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अनेक महत्वपूर्ण सम्मेलन हुए, जिन्होंने न केवल युद्धकालीन गतिविधियों को वरन युद्धोत्तर विश्व को भी प्रभावित किया। संयुक्त राज्य अमेरिका से सम्बन्धित सम्मेलन निम्न थे-

(1) अटलाण्टिक चार्टर **(14 अगस्त, 1941):-** अमेरिकी राष्ट्रपति और ब्रिटिश प्रधानमंत्री अगस्त, 1941 में अटलाण्टिक महासागर में एक युद्धपोत पर मिले, जहां उन्होंने मित्र राष्ट्रों के युद्ध के उद्देश्यों का घोषणा-पत्र तैयार किया। इसे अटलाण्टिक चार्टर के नाम से जाना जाता है। यह विल्सन की 14 शर्तों की घोषणा के सदृश्य था। इनमें आठ

सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया था। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने अपनी चार स्वतन्त्रताओं की सुप्रसिद्ध धारणा को इनमें शामिल किया।

(2) संयुक्त राष्ट्रों की घोषणा **(1 जनवरी, 1942):-** जर्मनी, इटली तथा जापान के विरूद्ध युद्ध करने वाले देशों ने अधिकाधिक सहयोग तथा सुदृढ़ संगठन की दृष्टि से 1 जनवरी, 1942 को यह घोषणा की। इसमें अमेरिका सहित 21 राष्ट्र थे। घोषणा द्वारा अटलाण्टिक चार्टर के सिद्धान्तों का समर्थन किया गया और धुरी राष्ट्रों के साथ कभी पृथक् सन्धि न करने की प्रतिज्ञा की गयी।

(3) कासाब्लॉका सम्मेलन **(14-24 जनवरी, 1943):-** मोरक्को के कासाब्लॉका नगर में 14 से 24 जनवरी, 1943 तक रूजवेल्ट, चर्चिल तथा जनरल दंगाल का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें यह घोषणा की गयी कि उत्तरी अफ्रीका पर आक्रमण करने से पूर्व इटली पर आक्रमण करके उसे परातिज कर दिया जाए।

(4) मास्को सम्मेलन **(19-30 अक्टूबर, 1943):-** इस सम्मेलन में संयुक्त राज्य, ग्रेट ब्रिटेन तथा रूस के विदेश मन्त्रियों - कार्डेल हल, एन्थोनी ईडन तथा मोलोटोव ने भाग लिया। इसमें फाँसीवाद को पूर्णत: समाप्त करने तथा लोकतन्त्र की स्थापना करने के निर्णय लिए गए। विश्व शांति की स्थापनार्थ एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनाने का निश्चय किया गया।

(5) काहिरा सम्मेलन **(22-25 नवम्बर, 1943):-** मिस्र की राजधानी काहिरा में रूजवेल्ट, चर्चिल तथा च्यांग काई शेक का एक सम्मेलन हुआ। इसमें चार दिन के विचारोपरान्त सुदूरपूर्व की समस्याओं के समाधानार्थ कुछ महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए।

(6) तेहरान सम्मेलन **(28 नवम्बर-1दिसम्बर, 1943):-** इस सम्मेलन में पहली बार रूजवेल्ट, चर्चिल तथा स्टालिन एक साथ मिले। इन तीनों मित्र देशों के सेनाध्यक्षों ने जर्मन सेनाओं के विनाश की योजनाएं तैयार की।

(7) ब्रेटन-वुड्स सम्मेलन **(21 जुलाई, 1944):-** संयुक्त राष्ट्रों का यह सम्मेलन ब्रेटन वुड्स में हुआ जिसमें 44 राज्यों के प्रतिनिधि शामिल हुए। इसमें पुनर्निर्माण एवं विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष स्थापित करने का निर्णय लिया गया था।

(8) डम्बर्टन-ओक्स सम्मेलन **(20 अगस्त-7 दिसम्बर, 1944):-** वाशिंगटन के निकट डम्बर्टन ओक्स नामक स्थान पर संयुक्त राज्य, सोवियत संघ, ग्रेट ब्रिटेन और चीन के प्रतिनिधियों ने सम्मेलन किया और अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की भावी रूपरेखा के सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया। इसके निर्णय अन्तिम न होते हुए भी संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के आधार बने।

(9) क्रीमिया सम्मेलन **(4 फरवरी-11 फरवरी, 1945):-** यह विश्व-युद्धकालीन अन्तिम महत्वपूर्ण सम्मेलन था, जो याल्टा (कृष्ण सागर के क्रीमिया प्रायद्वीप में) नामक स्थान

पर किया गया। इसमे रूजवेल्ट, चर्चिल, स्टालिन, ईडन, मोलोटोव, मार्शल, बुक, एन्टोनोव, हाफकिन्स, केडोगन, विशिन्सकी आदि प्रमुख राजनीतिज्ञ शामिल हुए। सम्मेलन में विचारित समस्याओं ने युद्धोत्तर काल की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर पर्याप्त प्रभाव डाला। इसने अन्तर्राष्ट्रीय समझौते की आधारशिला रखी और दूसरी ओर मित्र राष्ट्रों के आपसी मतभेदों को स्पष्ट किया, जो बाद में शीत युद्ध के रूप में परिणत हो गया। याल्टा सम्मेलन के कुछ निर्णय उस समय गुप्त रखे गए तथा पूरा विवरण 1955 में संयुक्त राज्य के विदेश मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित किया गया।

(10) सान-फ्राँसिस्को सम्मेलन **(25** अप्रेल **- 26** जून**, 1945):-** यह सम्मेलन संयुक्त राष्ट्र संघ की रचना के सम्बन्ध में आयोजित किया गया। इसके प्रारम्भ होने से तेरह दिन पूर्व ही राष्ट्रपति रूजवेल्ट का स्वर्गवास हो चुका था। उसके उत्तराधिकारी ट्रूमेन ने इस सम्मेलन के उद्घाटन भाषण में कहा कि, ''यह सम्मेलन अपनी सम्पूर्ण शक्ति शान्ति रक्षक संगठन की रचना में लगाएगा। हम युद्ध में अकेले नहीं थे, अत: शान्ति में भी अकेले नहीं रहेंगे। यदि हम युद्ध में एक साथ नहीं मरना चाहते, तो हमें शान्तिकाल में मिलकर रहना सीखना चाहिए।''

(11) पोट्सडाम (बर्लिन) सम्मेलन **(17** जुलाई**-2** अगस्त**, 1945):-** अमेरिका, ग्रेट-ब्रिटेन, चीन और सोवियत संघ के चार बड़े देशों का यह सम्मेलन इसलिए बुलाया गया था ताकि जर्मनी द्वारा बिना शर्त आत्मसमर्पण के बाद यूरोप के मानचित्र को तैयार किया जा सके और शत्रु राज्यों के साथ होने वाली शांति सन्धियों की रूपरेखा बनाई जा सके। सम्मेलन में अन्तिम स्थायी सन्धि होने तक जर्मनी के अधिकार और प्रशासन के सम्बन्ध में समझौता हुआ, अन्य धुरी राष्ट्रों के साथ सन्धियों की प्रारम्भिक तैयारी की गयी और जापान को यह चेतावनी दी गयी कि यदि उसने बिना शर्त आत्मसमर्पण नहीं किया, तो उसका पूर्ण विध्वंस कर दिया जाएगा।

उक्त सभी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन विश्व-राजनीति को प्रभावित करने तथा अमेरिकी इतिहास को एक नया मोड़ देने की दृष्टि से पर्याप्त दूरगामी प्रभाव वाले सिद्ध हुए।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्तराज्य अमेरिका:-

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राज्य की विदेश नीति के दो मुख्य लक्ष्य थे-

(1) चिरस्थाई विश्व शांति के लिए संयुक्त राष्ट्र का समर्थन और प्रोत्साहन।

(2) साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिए उसकी घेरेबन्दी तथा शीतयुद्ध।

सुरक्षा के लिए अनेक सैनिक सन्धियां की गयी और शान्ति के लिए विदेशों के साथ सहयोग किया गया। इस आधार पर 1950 तक की अमेरिकी विदेशनीति को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है:-

(1) मधुरात्रि का काल (मई**, 1945** से अगस्त**, 1946** तक**):-** द्वितीय विश्व युद्ध सभी मित्र राष्ट्रों के सहयोग से जीता गया था, अत: अमेरिका को आशा थी कि शान्तिकाल में

सभी सहयोग से रह सकेंगे तथा विवादग्रस्त मामले पारस्परिक समझौते तथा सद्भावाना के आधार पर क्रमश: हल हो जाएंगे। याल्टा सम्मेलन की कार्यवाही इस मैत्रीभाव से अनुप्राणित थी। बाद में सानफ्रांसिस्को सम्मेलन तथा पोट्सडाम सम्मेलन में भी सहयोग की भावना को बढ़ावा मिला। 28 अक्टूबर, 1945 को तत्कालीन राष्ट्रपति ट्रूमेन ने अमेरिकी विदेश-नीति के बारह-सूत्री उद्देश्यों की घोषणा की। ये सहयोग तथा अनुकूलन की भावना से प्रभावित थे। सहयोग और मैत्री के इस काल में संयुक्त राज्य ने अपनी सैनिक-शक्ति पर्याप्त घटा ली और राष्ट्रीय विकास के प्रश्नों पर ध्यान केन्द्रित किया।

(2) नवीन दिशान्वेषण का काल **(अगस्त, 1946 से जून, 1950):-** एशिया और अफ्रीका के नवोदित राज्यों को साम्यवादी आधिपत्य से बचाने के लिए राष्ट्रपति ट्रूमेन ने 20 जनवरी, 1949 को चार सूत्री कार्यक्रम की घोषणा करते हुए कहा कि आगामी वर्षों में शान्ति व स्वतन्त्रता के कार्यक्रम में चार बातों पर ध्यान दिया जाएगा -

(1) संयुक्त राष्ट्रसंघ का पूर्ण समर्थन,

(2) विश्व के आर्थिक पुनरूद्धार का कार्य करते रहना,

(3) आक्रमण के विरूद्ध स्वतन्त्रता प्रेमी राष्ट्रों को सुदृढ़ बनाना और

(4) अर्द्ध विकसित देशों के उत्थान के लिए प्राविधिक सहायता देना।

सैनिक स्तर पर साम्यवादी प्रसार को रोकने के लिए उत्तरी अटलाण्टिक सन्धि संगठन बनाया गया। 4 अप्रेल, 1949 को संयुक्त राज्य, कनाड़ा, इटली, आइसलैण्ड, नार्वे, डेनमार्क तथा पुर्तगाल के बीच यह सैनिक सन्धि की गयी।

(3) खुले संघर्ष का काल- **(जून 1950 से जुलाई, 1953):-** साम्यवाद का आतंक ज्यों-ज्यों बढ़ता जा रहा था, अमेरिकी प्रतिक्रिया भी उसी अनुपात में बढ़ रही थी। इसी के फलस्वरूप संयुक्त राज्य महत्वपूर्ण सैनिक सन्धियों एवं प्रतिरक्षा संगठनों की ओर झुका। जून, 1950 में दक्षिणी कोरिया पर उत्तरी कोरिया का आक्रमण होने पर अमेरिकी सेनाओं ने संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से युद्ध किया। तत्पश्चात् अमेरिकी विदेश नीति में सैनिक शक्ति व महत्व द्विगुणित हो गया। श्लाइशर के अनुसार, ''अमेरिका में सैनिक-शक्ति के लिए विनियोग तिगुने से भी अधिक हो गया। यूरोप को दिए जाने वाले सहयोग में सैनिक शक्ति पर जोर दिया जाने लगा।'' 27 जुलाई, 1953 को युद्ध विराम सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। इस प्रकार कोरिया का युद्ध विश्व-युद्ध में परिणत होनेसे टल गया, किन्तु समस्या का सन्तोषजनक समाधान न हो सका। कोरिया युद्ध छिड़ने के बाद संयुक्त राज्य ने पुन: शस्त्रीकरण कार्यक्रम को बढ़ावा दिया।

10.6 संयुक्तराष्ट्र संघ

द्वितीय विश्वयुद्ध में संयुक्त राज्य को मजबूर होकर शामिल होना पड़ा था। पर्ल हार्बर पर जापानी आक्रमण ने तटस्थता के सभी प्रयास विफल कर दिए थे। इस सन्दर्भ में यह विचार किया जाने लगा कि भविष्य में युद्ध का प्रतिकार केवल सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था द्वारा ही किया जा सकता है। राष्ट्रसंघ की कमियों को दूर करते हुए एक विश्व संगठन बना कर ही विश्व शान्ति स्थापित की जा सकती है। इस दिशा में अमेरिकी विदेश मंत्री हल तथा विदेश विभाग ने द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ होते ही प्रयास शुरू कर दिए थे। जनवरी, 1940 में मि. हल ने विदेश सम्बन्धों पर एक परामर्शदाता समिति नियुक्त की। इसमें विदेश विभाग के कर्मचारियों के साथ-साथ कांग्रेस के सदस्य तथा गैर सरकारी विशेषज्ञ भी थे।

अगस्त, 1941 में याल्टा सम्मेलन में उसने चर्चिल द्वारा प्रस्तावित अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की घोषणा को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि ऐसी घोषणा से अमेरिकी कांग्रेस और उसके बाहर स्थित पृथकतावादियों के दिल में संदेह की भावना जाग्रत हो जाती। 1943 के अन्त तक अमेरिका में विश्व संगठन के अनुकूल वातावरण बन गया। कांग्रेस के दोनों सदनों ने विश्व-शांति की स्थापना एवं आक्रमण को रोकने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में संयुक्त राज्य के योगदान को स्वीकार किया। 1944 में विदेशमन्त्री, सहायक विदेश मन्त्री तथा स्वयं राष्ट्रपति ने शान्ति की रक्षा के लिए युद्धोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना में अमेरिकी विदेश मन्त्रालय द्वारा किए गए प्रयासों से जनता को परिचित कराया। इस संगठन की मोटी रूपरेखा भी तैयार की गई। यह रूपरेखा राष्ट्रसंघ से मिलती हुई थी। इसमें राष्ट्रसंघ की त्रुटियों को दूर करने के दो प्रावधान थे -

(क) सभी महाशक्तियां इस संगठन की सदस्य बनें।

(ख) इसे कार्य करने की प्रभावशाली शक्ति दी जाए।

डम्बर्टन ओक्स सम्मेलन:-

अमेरिकी विदेशमन्त्री का स्पष्ट विचार था कि द्वितीय विश्वयुद्ध की विजय स्थाई शान्ति में तब तक नहीं बदल सकती जब तक कि संयुक्त राज्य, ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल, सोवियत संघ तथा चीन साथ-साथ काम करने के लिए सहमत न हो जाएं। 30 अक्टूबर, 1943 को मास्को में चार राष्ट्रों द्वारा की गयी घोषणा ऐसे सहयोग की पृष्ठभूमि थी। अगस्त, 1944 में संयुक्त राज्य ने शेष तीन महाशक्तियों को वाशिंगटन में आमन्त्रित किया ताकि स्थाई संयुक्त राष्ट्र संघ के लिए चार्टर तैयार किया जा सके। यह सम्मेलन डम्बर्टन ओक्स में 21 अगस्त से 7 अक्टूबर तक आयोजित हुआ।

इस सम्मेलन के प्रस्ताव 9 अक्टूबर, 1944 को प्रकाशित किए गए। इनमें से अधिकांश प्रस्ताव संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के भाग बने। इसमें यह कहा गया था कि एक संयुक्त राष्ट्र संघ बनाया जाए। इसकी सदस्यता सभी शान्तिप्रिय देशों के लिए खुली रहे और ऐसे राज्यों की सम्प्रभु समानता पर निर्भर रहे। संघ का उद्देश्य यह बतलाया गया कि सामूहिक प्रयासों द्वारा शान्ति और सुरक्षा की स्थापना की जाए, राज्यों के बीच मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित किए जाएं, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक तथा मानवीय

समस्याओं को सुलझाने के लिए सहयोग पैदा किया जाए, सामान्य उद्देश्य के लिए राष्ट्रों द्वारा किए गए कार्यो में सामंजस्य पैदा किया जाए।

डम्बर्टन ओक्स सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रमुख अंग महासभा, सुरक्षा परिषद, सचिवालय, आर्थिक और सामाजिक परिषद तथा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय नियत किए गए।

याल्टा सम्मेलन:-

कृष्ण सागर में क्रीमिया प्रायद्वीप के याल्टा नामक स्थान पर रूजवेल्ट, स्टालिन तथा चर्चिल ने अनेक उलझी हुई समस्याओं को सरलता से सुलझा लिया। यह 4 फरवरी से 11 फरवरी, 1945 तक चला। विश्व संगठन पर सम्मेलन का आयोजन दिनांक 25 अप्रेल, 1945 और स्थान सानफ्रांसिस्को नियत किया गया। इस सम्मेलन का महत्व इसलिये अधिक है, क्योंकि इसने युद्धोत्तषर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर गहरा प्रभाव डाला। याल्टा सम्मेलन के महत्वपूर्ण निर्णय ये थे -

1. 25 अप्रेल, 1945 को सानफ्रांसिस्को में जो सम्मेलन बुलाया जाए, उसमें उन सभी राज्यों को आमन्त्रित किया जाए, जो 1 मार्च, 1945 तक जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर चुके थे। यूक्रेन तथा श्वेत रूस को मित्र-राष्ट्रों द्वारा पृथक से आमन्त्रित किया जाए।
2. राष्ट्र संघ की मेण्डेंट व्यवस्था के स्थान पर प्रादेशिक ट्रस्टीशिप की व्यवस्था की गई।
3. एक व्यावहारिक आवश्यकता के रूप में महाशक्तियों के निषेधाधिकार की शक्ति को स्वीकार किया गया। इस प्रावधान ने सुरक्षा परिषद को ऐसे विवादों के सम्बन्ध में निष्क्रिय बना दिया, जो दो या अधिक महाशक्तियों के मध्य हों।

सान फ्रांसिस्को सम्मेलन:-

25 अप्रेल से 26 जून, 1945 तक 46 देशों के 850 प्रतिनिधियों ने सान फ्रांसिस्कों सम्मेलन में भाग लिया। इसके लिए अमेरिकी प्रतिनिधियों का चयन किया गया। इस प्रतिनिधि मण्डल की अध्यक्षता विदेश मन्त्री ई.आर. स्टैटिनियस द्वारा की गई। इस सम्मेलन में स्वीकृत चार्टर पर 50 राष्ट्रों के हस्ताक्षर हुए जिनको चार्टर सदस्य कहा गया। भविष्य में संगठन की सदस्यता सभी शान्तिप्रिय राज्यों के लिए खोल दी गयी, जो चार्टर में निहित दायित्वों को स्वीकार करें तथा उनको निभाने योग्य माने जा सके।

संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर**:-**

(1) भूमिका **-** संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका में आदर्शवादी शब्दावली का प्रयोग किया गया है, जैसे - मौलिक मानवीय अधिकार, स्त्री-पुरूषों के समान अधिकार, सामाजिक प्रगति एवं अच्छा जीवन स्तर आदि।

(2) महासभा का महत्वपूर्ण योगदान **-** सीनेटर वान्टेनबर्ग ने महासभा को विश्व की एक नगर सभा मानकर उसे वाद-विवाद की पूरी स्वतन्त्रता दी तथा किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय विषय पर सिफारिश करने की शक्ति दी। सीनेटर का मत था कि महासभा के माध्यम से विश्व जनमत को बदला या बनाया जा सकता है और इस प्रकार सुरक्षा परिषद की शक्ति को प्रतिबन्धित किया जा सकता है।

(3) सुरक्षा परिषद में निषेधाधिकार - सुरक्षा परिषद के निषेधाधिकार के सम्बन्ध में सभी सहमत थे, किन्तु सोवियत संघ का मत था कि बिना पांच स्थाई सदस्यों की स्वीकृति के कोई विषय सुरक्षा परिषद में विचार-विमर्श के लिए भी नहीं रखा जाना चाहिए।

(4) क्षेत्रीय संगठनों की कार्यवाही - अमेरिकी प्रतिनिधि मण्डल के सुझाव पर चार्टर की धारा 51 स्वीकार की गयी। इसके अनुसार संघ के सदस्य राज्य सुरक्षा परिषद द्वारा विश्व शान्ति एवं सुरक्षा के लिए उठाए गए कदमों से पहले स्वयं व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से प्रयास कर सकते हैं।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय - यह 1922 में स्थापित विश्व न्यायालय का परिवर्तित रूप न होकर पूर्णत: नवीन था। इसे संयुक्त राष्ट्र संघ का एक अनिवार्य भाग बनाया गया तथा लीग की भांति अलग नहीं रखा गया। संघ के सभी सदस्य स्वत: ही इसके सदस्य हो गए। लीग के विश्व न्यायालय का पुनर्गठन तब हो सकता था, जबकि इसके भी सदस्यों की स्वीकृति ली जाती, किन्तु यह असम्भव था, क्योंकि इनमें से कुछ देश शत्रु के खेमे में जा चुके थे। अत: विश्व न्यायालय को समाप्त कर नई संस्था का गठन ही उपयुक्त माना गया।

(6) आर्थिक और सामाजिक परिषद - इस परिषद को अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शिक्षणात्मक एवं मेडिकल क्षेत्रों में अध्ययन, सिफारिश तथा प्रारूप अभिसमय तैयार करने की पर्याप्त शक्तियां दी गयी है। यह मानव अधिकारों तथा सभी की मौलिक स्वतन्त्रताओं के सम्बन्ध में सिफारिशें करती है। साथ ही यह कुछ विशेष अभिकरणों के बीच समन्वयकर्ता निकाय का कार्य भी करती है।

(7) न्यास प्रबन्ध - संयुक्त राज्य अमेरिका की थल सेना और जल सेना ने जापान से मेण्डेट प्रदेशों को बड़े परिश्रम और बलिदान के बाद लिया था। अत: इनको न्यास व्यवस्था के अधीन रखने का उसने विरोध किया। धारा 82 व 83 के अनुसार अमेरिकी प्रतिनिधि मण्डल ने यह व्यवस्था कराई कि न्यास प्रदेश के किसी भी क्षेत्र को रणनीति क्षेत्र घोषित किया जा सके और इस क्षेत्र से सम्बन्धित संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्यवाही सुरक्षा परिषद के अधीन की जाए। यदि सुरक्षा परिषद के किसी कार्य से अमेरिकी प्रशासन में बाधा आए तो वह निषेधाधिकार का प्रयोग करके उसका निराकरण कर सकता है। स्पष्ट है कि संयुक्त राज्य अमेरिका ने संयुक्त राष्ट्र संघ की रचना में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना से कार्य किया है।

राष्ट्रसंघ की असफलता के कारण:- राष्ट्र संघ की स्थापना से विश्वशांति की स्थापना की आशा जाग्रत हुई थी, परन्तु राष्ट्रसंघ विश्वशांति की स्थापना करने में असफल रहा, यद्यपि प्रारम्भ में उसको आंशिक सफलता प्राप्त हुई थी, परन्तु राष्ट्रसंघ उस समय दृढ़नीति का पालन करने में असमर्थ रहा। राष्ट्रसंघ की असफलताओं के कई कारण थे, जिनमें प्रमुख कारण यह थे -

(1) विभिन्न राष्ट्रों के स्वार्थ - विभिन्न राष्ट्रों ने अपने निहित निजी स्वार्थो को सर्वोपरि स्थान प्रदान किया था और उनका परित्याग नहीं किया गया। वे प्रत्येक समय, जब भी उनको अवसर प्राप्त होता था, अपने स्वार्थो की सिद्धि में रत रहते थे। कुछ शक्तिशाली राष्ट्र इसी कारण राष्ट्रसंघ में

सम्मिलित नहीं हुए तथा कुछ ने विशिष्ट कारणों के उत्पन्न होने पर उसकी सदस्यता का परित्याग कर दिया।

(2) नि:शस्त्रीकरण की असफलता - राष्ट्रसंघ का प्रमुख उद्देश्य विश्व में शांति की स्थापना और भविष्य में विश्वयुद्ध का अन्त करना था। राष्ट्रसंघ तथा वर्साय की सन्धि द्वारा पराजित राज्यों का नि:शस्त्रीकरण कर दिया गया और अन्य राष्ट्रों से नि:शस्त्रीकरण कराने के लिए एक आयोग का आयोजन राष्ट्रसंघ की ओर से किया गया था। इस आयोग द्वारा नि:शस्त्रीकरण की योजना का निर्माण हुआ, किन्तु कोई भी राष्ट्र इस योजना को कार्यरूप में परिणत करने को तत्पर नहीं हुआ तथा उन्होंने अपनी सेवाओं में भी किसी प्रकार की कमी नहीं की।

(3) जर्मनी, जापान एवं इटली की साम्राज्यवादी नीति - युद्धोपरान्त इटली में फासिस्ट दल के तानाशाह, मुसोलिनी का, जापान में सैन्यवाद का तथा जर्मनी में नाजीदल व हिटलर का उदय हुआ। अत: जर्मनी, जापान और इटली के राजनीतिज्ञ साम्राज्यवादी भावना से ओत-प्रोत थे।

(4) अंतर्राष्ट्रीय सेना का अभाव - राष्ट्र संघ के पास अन्तर्राष्ट्रीय सेना का अभाव था, जिसके कारण वह उन राष्ट्रों पर किसी प्रकार का दबाव डालने या बाध्य करने में असमर्थ थी जो शांति भंग करने की ओर प्रयत्नशील होते थे, वह केवल अपना निर्णय दे सकती थी।

संयुक्त राज्य अमेरिका आरम्भ से ही संयुक्त राष्ट्र संघ को अपना समर्थन करता रहा है। इसकी सभी गतिविधियों में संयुक्त राज्य ने व्यापक रूप से भाग लिया है। अमेरिकी राष्ट्रपति केनेडी के कथनानुसार, ''इस युग में संयुक्त राष्ट्र संघ हमारी अन्तिम श्रेष्ठ आशा है, जबकि युद्ध के साधन शान्ति के साधनों की अपेक्षा पर्याप्त आगे बढ गए है।'' यह सच है कि संयुक्त राष्ट्र संघ शीत युद्ध का निराकरण नहीं कर सका है, किन्तु इसने इसे गर्म युद्ध बनने से कई बार रोका है। प्रो. प्राट के शब्दों में, ''एक मजबूत और प्रभावशाली संयुक्त राष्ट्र संघ संयुक्त राज्य की विदेशनीति का मौलिक सिद्धान्त रहेगा।''

10.7 सारांश

संयुक्त राज्य अमेरिका धरती पर स्वर्ग के समान है। उसकी भौतिक प्रगति और सम्पन्नता के कारण संसार के पर्यटकों के लिए यह आर्कषण का केन्द्र है। रामायण आदि भारतीय ग्रन्थों में पाताल लोक में असुरों का वास माना गया था, किन्तु इस प्रदेश में ज्ञान और विज्ञान ने जो प्रगति की है, वह देवताओं के लिए भी ई'र्या का विषय है। अनेक कारणों से इस अनोखे राज्य का इतिहास विद्वानों व सामान्यजनों के लिए पठनीय बन गया है। अमेरिकी इतिहास का प्रारम्भ ही साहसिक समुद्री यात्राओं से हुआ। इस नए प्रदेश की प्राकृतिक सम्पन्नताओं ने कल्पनाशील साहित्य को प्रेरणा प्रदान की। जनसामान्य के भाग्य में विश्वास के कारण यहां प्रजातन्त्रात्मक आन्दोलनों को प्रोत्साहन मिला और स्वतन्त्रता के लिए यहां क्रान्तियां की गयी। अठारहवीं शताब्दी के चतुर्थ चरण में यह इंग्लैण्ड से राजनीतिक सम्बन्ध विच्छेद करके अलग व स्वतन्त्र देश बन गया, परन्तु इसने पृथकता का सिद्धान्त अपनाया व शेष संसार से सम्बन्ध कम रखा तथाअपने राजनैतिक विषयों में किसी अन्य देश को हस्तक्षेप नहीं करने दिया। प्रथम विश्व युद्ध में अमेरिका ने मित्र-राष्ट्रों का साथ देकर जर्मनी को हराया, उसके बाद से ही अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में अमेरिका की रूचि बढ़ती ही गयी। द्वितीय विश्व युद्ध में भी अमेरिका तब शामिल हुआ जब

जापान ने पर्ल हार्बर पर आक्रमण किया। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना में अमेरिका का महती योगदान रहा है। वर्तमान में अमेरिका संसार का सबसे अधिक शक्तिशाली व विकसित देश बन गया है, अब ऐसा कोई अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न नहीं होता, जिसको उत्पन्न करने में, उलझाने में या हल करने में अमेरिका का हाथ न हो।

10.8 अभ्यास प्रश्न

1. अमेरिकी क्रान्ति पर प्रकाश डालिए।
2. प्रथम विश्व युद्ध में अमेरिका की भूमिका का सविस्तार वर्णन कीजिए।
3. द्वितीय विश्व युद्ध में अमेरिका से सम्बन्धित सम्मेलनों का वर्णन कीजिए।
4. संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना एवं उसकी असफलता के कारणों की व्याख्या कीजिए।

इकाई-11

अमेरिका में नागरिक अधिकार आंदोलन

इकाई की रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 अमेरिकी इतिहास

11.4 अमेरिकी क्रान्ति

11.5 परिसंघ

11.4.1 परिसंघ की असफलता

11.4.2 परिसंघ के दुष्परिणाम

11.6 फिलाडेल्फिया सम्मेलन

11.7 नए संविधान का निर्माण

11.8 संविधान के प्रमुख प्रावधान

11.9 नागरिक अधिकार पत्र

11.8.1नागरिक अधिकारों की विशेषताएँ

11.10 नागरिकों को गारण्टी किए गए अधिकार

11.11 सारांश

11.12 अभ्यास प्रश्न

11.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- अमेरिकी इतिहास एवं क्रान्ति की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- अमेरिकी संविधान के निर्माण की प्रक्रिया से अवगत हो सकेंगे।
- नागरिक अधिकारों का अवलोकन कर सकेंगे।
- नागरिकों को गारण्टी किए गए अधिकारों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

11.2. प्रस्तावना

संयुक्त राज्य अमेरिका, जो विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली और सम्पन्न राष्ट्र है, उत्तरी अमेरिका महाद्वीप के मध्य भाग में स्थित है। इसके पूर्व में अटलांटिक महासागर, पश्चिमी सीमा पर प्रशान्त महासागर, उत्तर में कनाडा और दक्षिण में मैक्सिकों राज्य व मैक्सिकों की खाड़ी है। इसकी भौगोलिक स्थिति इसे संसार

के अन्य देशों से पृथक करती है और यही कारण है कि विश्व-राजनीति में दीर्घकाल तक अमेरिका पृथकतावादी नीति पर सफलतापूर्वक चल सका। अपनी इसी भौगोलिक स्थिति के कारण अमेरिका बाह्य आक्रमणों तथा आन्तरिक अशान्ति से सदैव सुरक्षित रहा और इस तरह वहाँ प्रजातन्त्र को भली प्रकार फलने-फूलने का अवसर मिला। क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व के महानतम् देशों में से एक है। जिस समय इसकी स्थापना हुई थी, उस समय इसका क्षेत्रफल 315065 वर्गमील था और इसमें 13 राज्य थे। आज इसमें 50 राज्य है और इसका क्षेत्रफल 3615222 वर्गमील है।

संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान वर्तमान लिखित संविधानों में सबसे प्राचीन है। इसका जन्म उस समय हुआ था, जबकि फ्रांस में 'राजतन्त्र', रोम में 'पवित्र साम्राज्य', 'कुस्तुन्तुनिया में सुल्तान खलीफा, पीकिंग में 'स्वर्ग के आदेश' से विभूषित सम्राट और जापान में 'संत साम्राज्य' अस्तित्व में था, किन्तु ये सभी राज्य वर्षों पूर्व अतीत के गर्भ में विलीन हो गए, जबकि अमेरिका का संविधान सदियों के झंझावातों को झेलता हुआ आज भी सिर उठाए आदर्श प्रस्तुत कर रहा है। इस प्रकार विश्व के देशों में अमेरिका का अपना विशिष्ट स्थान है।

11.3. अमेरिकी इतिहास

अमेरिका का इतिहास विभिन्न कारणों से विश्व के इतिहास में अपना उल्लेखनीय स्थान रखता है। प्रो. एच.ई. डेविस के कथनानुसार - ''अमेरिका शब्द ही ऐतिहासिक महत्व से सम्पन्न है। शताब्दियों तक अमेरिका ने मानवता के लिए भविष्य की आशा का सन्देश दिया और मानवता कल्याण की सम्भावनाएँ प्रदान की। अमेरिका के इतिहास की रोचकता उसकी नदियों, जंगलों व पहाड़ों की खोज के कारण बढ़ जाती है। 17वीं व 18वीं शताब्दी के मानचित्रों ने इस नए भौगोलिक ज्ञान में क्रान्तिकारी परिवर्तन किए। भूमि के प्रयोग के साथ-साथ मानव शक्ति के प्रयोग की कहानी भी अमेरिका इतिहास को आकर्षक बनाने में उल्लेखनीय रही है। पशुओं व पौधों के उपयोग के साथ-साथ मानवीय तकनीकी के विकास ने यहाँ की सम्भ्यता को आगे बढ़ाया।

अमेरिकी इतिहास के चार प्रमुख तत्व रहे है। उनमें तीन सांस्कृतिक और एक भौगोलिक थे। सांस्कृतिक तत्वों में इण्डियन्स, ईसाई यूरोपीयन तथा नीग्रो थे। इनके अतिरिक्त भौगोलिक व प्राकृतिक परिवेश ने इन तीनों संस्कृतियों की रूप-रचना में काम किया। इस नए प्रदेश में यूरोपवासी साहसिक यात्री, मछली पकड़ने वाले, व्यापारी, सैनिक विजेता, धार्मिक शरणार्थी, ईसाई मिशनरी या किसान आदि के रूप में आए और यहाँ आधुनिक सभ्यता का विकास किया। इनके अतिरिक्त करोड़ों इण्डियन्स तथा अमेरिकी नीग्रो लोगों ने न केवल इस क्षेत्र की जनसंख्या को बढ़ाया वरन् यहाँ की तकनीकी, कृषि, भाषा, सामाजिक मान्यता, लोकगीत, संगीत, कविता व कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण योगदान किया। इन सभी के सांस्कृतिक समागम और क्रिया-प्रतिक्रिया ने एक ऐसी सभ्यता का विकास किया, जिसे अमेरिकी कहा जा सके। इस प्रकार एक नई सभ्यता और नई संस्कृति का जन्म हुआ।

11.4. अमेरिकी क्रान्ति

अमेरिकी क्रान्ति मानव इतिहास की एक महानतम् घटना है। अन्य कुछ क्रान्तियों में जन और धन का व्यय अधिक हुआ है, किन्तु राजनीतिक जीवन पर उनका प्रभाव इतना नहीं पड़ा। इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप इतिहास में पहली बार एक सफल संघात्मक सरकार बनी। यह पर्याप्त शक्ति और सम्पदा सम्पन्न राष्ट्र के रूप में परिणत हो गयी। यह क्रान्ति अमेरिकी उपनिवेशों तथा ग्रेट ब्रिटेन में विकसित होने वाले नए दृष्टिकोण का परिणाम थी। एक ओर अमेरिकन ब्रिटिश साम्राज्य में अधीनस्थ स्थिति स्वीकार करने के इच्छुक नहीं थे, दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार ने 1763 के बाद उपनिवेशों पर कठोर नियन्त्रण की नीतियाँ अपनाई। दोनों में संघर्ष पैदा हुआ, जो अन्त में शक्ति द्वारा ही सुलझाया जा सका।

विश्व के इतिहास में अमेरिका का स्वातन्त्रय संघर्ष अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसने दूरगामी अन्तर्राष्ट्रीय प्रभावों को जन्म दिया और अनेक आदर्शों और सिद्धान्तों की प्रतिस्थापना की। इस स्वातन्त्रय संघर्ष ने विश्व की औपनिवेशिक जनता को सन्देश दिया कि वे गुलामी के वस्त्रों को उतार फेंके। अमेरिका के स्वातन्त्रय संघर्ष ने जनतन्त्रतात्मक प्रथा को जन्म दिया जिसमें पहली बार आधुनिक ढंग से प्रजातन्त्र की स्थापना हुई। इस क्रान्ति ने 'वाणिज्य सिद्धान्त' के पतन का मार्ग प्रशस्त कर दिया और प्रजातन्त्रात्मक तथा उदार प्रवृत्तियों का मार्ग प्रशस्त किया। फ्रांसिसी क्रान्ति के मुख्य सिद्धान्तों स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व की जड़े भी अमेरिका के स्वातन्त्रय संघर्ष में ही निहित है। संघात्मक शासन पद्धति का प्रयोग भी इस संघर्ष की ही देन मानी जाती है। इस संघर्ष ने बुद्धिजीवियों को क्रान्तिकारी रूप में प्रभावित किया और उन्होंने मानव समाज में चिन्तन का नवीन युग ला दिया। अमेरिका मानवता की आशा और स्वतन्त्रता का आश्रय स्थल बन गया और ये दोनों विचार उत्तरोत्तर विश्व व्यापक बनते गए। इतिहासकार जे.सी. एपिल की मान्यता है कि अमेरिका के स्वातन्त्रय संघर्ष की सफलता ने विश्वव्यापी प्रभाव डाला और यह घटना विश्व की एक महान् घटना थी।

11.5 परिसंघ

1783 में पेरिस की संधि पर हस्ताक्षर होने से पूर्व उपनिवेश-वासियों ने अपने स्वतन्त्रता-संग्रराम को निर्बाध गति से चलाने के लिए एक ऐसी सम्मिलित सरकार बनाने की आवश्यकता समझी, जिसका आकार स्थायी हो और जिसको व्यापक अधिकार व शक्ति प्राप्त हो। इसी उद्देश्य से 12 जून, 1776 को, महाद्वीपीय कांग्रेस ने प्रत्येक उपनिवेश से एक-एक सदस्य लेकर एक समिति का निर्माण किया जिसका कार्य, एक ऐसे परिसंघ या संवर्ग (Confederation) के संविधान पर विचार करना था जिसके अन्तर्गत एक होकर सभी उपनिवेश स्वतन्त्रता संग्राम को चला सके और आंतरिक व्यवस्था बनाए रख सकें। नवम्बर, 1777 में महाद्वीपीय कांग्रेस ने (जो उस समय सभी उपनिवेशीय राज्यों की सम्मिलित संस्था थी और जिसके द्वारा उस समय सामान्य विषयों के प्रबन्ध का संचालन किया जाता था) स्थायी संघ की निर्माण संबंधी धाराओं को स्वीकार कर लिया। यह निश्चय किया गया कि समस्त राज्यों द्वारा पृथक-पृथक रूप से उनकी पुष्टि हो जाए, तो उसे कार्य-रूप दे दिया जाए। 1778 एवं 1779 की बीच केवल मेरीलैण्ड को छोड़कर सभी राज्यों ने संघ या संवर्ग की धाराओं (Art|cles of Confederation) को

स्वीकार कर लिया। पहली मार्च 1782 को मेरीलैण्ड ने भी अपनी स्वीकृति दे दी और उसी दिन से परिसंघ या संवर्ग के अनुच्छेद प्रभावित घोषित हो गये। ये अनुच्छेद (Art|cles of Confederation) ही संयुक्त राज्य अमेरिका के 'प्रथम संविधान' थे। यह उल्लेखनीय है कि नवम्बर, 1777 में महाद्वीपीय कांग्रेस ने अर्थात् समस्त उपनिवेशीय राज्यों की सम्मिलित संस्था ने जिस संघीय व्यवस्था को स्वीकार कर लिया था और जिसका सभी राज्यों द्वारा पुष्टीकरण 1781 से पहले नहीं हो पाया था, उसे स्थायी रूप से लागू 1777 में ही कर दिया गया था ताकि युद्ध में बाधा न पहुँचे।

1776 के संघीय संविधान की, जिसकी पुष्टि अब उपनिवेशीय राज्यों द्वारा 1781 में हो पाई, प्रस्तावना का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि, ''इसके अन्तर्गत उपनिवेशों ने अपनी उन समस्त आशाओं, आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति की है जिनसे प्रेरित होकर उन्होंने अपने को राजनीतिक दृष्टि से एक सूत्र में बांधकर अपने भविष्य को दृढ़ बनाने का प्रयत्न किया और उस भावना को जन्म दिया जिसने कुछ समय के बाद ही उन्हें राजनीतिक एकता में बांधकर एक प्रबल राष्ट्र होने के लिए अवसर प्रदान किया।''

इस संविधान के अन्तर्गत एक ऐसी केन्द्रीय सरकार की स्थापना की गई, जिसकी शक्ति व जिसके अधिकार निश्चित और सीमित थे। इस संविधान द्वारा निर्मित संवर्ग या परिसंघ (Confederation) को संयुक्त राज्यों को सुदृढ़ संघीय मित्रता कहकर पुकारा गया। संविधान की प्रथम धारा के अनुसार संघ का नाम 'संयुक्त राज्य अमेरिका' रखा गया, जो आज तक चला आ रहा है। इसकी एक धारा के अनुसार प्रत्येक राज्य की स्वतन्त्रता और सत्ता की रक्षा स्वीकृत की गई तथा यह स्पष्ट कर दिया गया कि प्रत्येक राज्य संघ की शक्ति के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में पूर्ण रूप से अपना स्वामी है। दूसरे शब्दों में, प्रभुता राज्यों में निहित रखी गई और केन्द्रीय सरकार की शक्ति व उसके अधिकार सीमित रखे गए। संघीय शक्तियों को कार्यान्वित करने के लिए अथवा सब संयुक्त राज्यों के सामान्य हितों की सुरक्षा व सुप्रबन्ध के लिए एक कांग्रेस की स्थापना की गई, जिसमें प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधि सम्मिलित किए गए। यह आवश्यक रखा गया कि प्रत्येक राज्य कम से कम 2 और अधिक से अधिक 7 प्रतिनिधि कांग्रेस में भेजे, किन्तु प्रत्येक राज्य को केवल एक मत देने का अधिकार (One State, One Vote) हो। इस तरह इस निर्णय में न तो इस बात को कोई महत्व दिया गया कि कोई राज्य छोटा होगा और कोई बड़ा, न किसी अन्य विचार को ही इस ओर आवश्यक समझा गया। यह व्यवस्था की गई कि किसी प्रस्ताव की स्वीकृति के लिए 13 राज्यों में से 9 का बहुमत आवश्यक होगा। कांग्रेस का रूप एक सदनीय (Un|cameral) रखा गया और शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त (Theory of Separation of Powers) का पालन उसके अन्तर्गत नहीं किया गया। महाद्वीपीय कांग्रेस की अपेक्षा इस संवर्ग की कांग्रेस की शक्तियाँ और उसके अधिकार निश्चित और स्पष्ट रखे गए जिनके आधार पर वह सभी राज्यों का सामान्य हित-साधन कर सकती थी। उदाहरणार्थ उसे युद्ध अथवा शान्ति की घोषणा करने का, दूसरे देशों के लिए राजदूत नियुक्त करने का, दूसरे राज्यों के राजदूतों का स्वागत करने का, सन्धियाँ करने का, मुद्रा जारी करने का, भारतीयों के साथ किए जाने वाले व्यापार पर नियन्त्रण रखने का, ऋण लेने का, समुद्री सेना बनाने का, डाकखाने की व्यवस्था करने का और संयुक्त राज्य अमेरिका की सशस्त्र सेना के संचालन के लिए उच्च अफसरों की नियुक्ति आदि का निश्चित अधिकार प्राप्त था।

11.5.1 परिसंघ की असफलता

अच्छी व्यवस्थाओं के बावजूद भी संवर्ग की व्यवस्था बहुत ही निर्बल थी और उसके पास वास्तविक शक्ति का सर्वथा अभाव था। कांग्रेस को कार्यपालिका संबंधी कोई अधिकार प्राप्त न थे। उसका कार्य केवल यह था कि वह विषयों पर विचार-विमर्श द्वारा बहुमत के आधार पर निर्णय करे। इस निर्णय को क्रियान्वित करने का कार्य राज्यों की सरकारों के अधिकार में था। इस बात की कोई व्यवस्था नहीं की गई थी कि यदि कोई राज्य केन्द्र के आदेशों का पालन न करे, अथवा केन्द्र द्वारा अन्य देशों के साथ हुई सन्धियों के दायित्वों का पालन न करे तो केन्द्र उसके साथ उचित कार्यवाही कर सकेगा। कांग्रेस अपना प्रेसीडेन्ट चुनती थी, परन्तु प्रेसीडेन्ट को कार्य संचालन संबंधी अधिकार प्राप्त न थे। संघ का कोई अलग कार्यकारी विभाग नहीं था। जो सेनाएं स्वतन्त्रता-संग्राम में थी वे परिसंघ की सेना नहीं थीं वरन् विभिन्न राज्यों की सेनाएं थीं। केन्द्रीय या संघीय सरकार को यह अधिकार भी नहीं दिया गया था कि वह कर लगा सके और विविध राज्यों के मध्य होने वाले व्यापार का नियन्त्रण कर सके।

उपयुक्त निर्बलताओं के कारण संवर्ग या संघ की व्यवस्था स्थायी सिद्ध न हो सकी। संवर्ग न केवल युद्ध के उपरान्त ही बल्कि युद्ध काल में ही शिथिल पड़ गया, यद्यपि युद्ध के कारण राज्यों में पारस्परिक सहयोग अवश्य विद्यमान रहा। युद्ध के उपरान्त जब राज्यों को इंग्लैण्ड का डर न रहा तो जो थोड़ा-बहुत पारस्परिक सहयोग था उसका भी अन्त हो गया और राज्य कांग्रेस के निर्णयों की उपेक्षा करने लगे। इस स्थिति का बड़ा सुन्दर चित्र खींचते हुए राष्ट्रपति विल्सन ने लिखा है कि-

''वस्तुत: इस संघ व्यवस्था में उपनिवेशीय राज्यों को कोई वास्तविक एकता प्राप्त नहीं थी। संविधान की नियमावली इस प्रकार की बनाई गई कि उससे राज्यों को वास्तविक रूप से संबंद्ध नहीं किया गया। प्रारम्भ में ही वह उस बालू की रस्सी के समान थी जो किसी को बाँध सकने में असमर्थ थी।'' मुनरो ने संघ-शासन की दुर्बलता को बताते हुए कहा है कि ''इस संघ की दुर्बलता यह थी कि इसके पास वे चार वस्तुएँ न थीं, जो प्रत्येक राष्ट्रीय सरकार के पास होनी चाहिए- अर्थात् कर इकट्ठा करने, ऋण लेने, व्यापार का नियन्त्रण करने तथा सेना एकत्र करके रक्षा की पूर्ण व्यवस्था करने की शक्ति। ये शक्तियाँ 1787 के नए संवविधान के द्वारा कांग्रेस को दी गई।''

11. 5.2 परिसंघ के दुष्परिणाम

वास्तव में संघ अथवा संवर्गीय व्यवस्था की दुर्बलता के दुष्परिणामों का शीघ्र ही इतना कुप्रभाव फैल गया कि परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा। 1776 की संघीय व्यवस्था का सबसे अधिक कुप्रभाव व्यवसायियों, जमींदारों, वित्त-स्वामियों, व्यापारियों और शिल्पियों पर पड़ा। आर्थिक व्यवस्था में दिन-प्रतिदिन बिगाड़ आता गया और जनता में असन्तोष बढ़ने लगा। राज्यों ने न केवल केन्द्र की उपेक्षा की, अपितु उनमें परस्पर भी प्रतिस्पर्धा होने लगी ओर उनका पारस्परिक वैमनस्य बढ़ने लगा। विनिमय की सामान्य व्यवस्था के न होने पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी ठप्प हो गया। बाह्य और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विषय में प्रत्येक राज्य अपने को एक अलग राष्ट्र समझने लगा और मनचाहे ढंग से अपने व्यापार को चलाने लगा। यद्यपि संविधान के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय संबंधोंका संचालन केन्द्र का कार्य था, परन्तु अनेक राज्यों ने बाहरी देशें से अलग से बातचीत करना प्रारम्भ कर दिया। 9 राज्यों ने

अलग से अपनी सेना बनाए रखीं और कुछ ने तो अपनी नौ सेना का भी गठन किया। अनेक प्रकार के सिक्के चलते रहे और विविध राज्यों में उन्हें विविध ढंग से मान्यता प्राप्त रही। यही नहीं, सामाजिक उथल-पुथल भी बहुत अधिक मात्रा में बढ़ गई। जिन लोगों ने युद्ध संचालन के लिए कांग्रेस को धन दिया था उन्हें विश्वास हो गया कि उनका धन डूब गया है। फलत: राज्यों में अशान्ति फैल गई और कई जगह विद्रोही भी हो गए। वस्तुत: स्थिति यह हो गई कि चारों तरफ असन्तोष, आर्थिक परेशानियों, पारस्परिक प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या और राष्ट्रीयता के स्थान पर प्रादेशिकता का बोलबाला हो गया। संवर्ग या संघ की कांग्रेस इस स्थिति का कोई भी उपचार करने में असमर्थ थी।

परिसंघ की दुर्बलता के कारण अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में भी अस्पष्टता और भ्रम का वातावरण छा गया। यूरोपीय राज्य इस असमंजस में पड़ गए कि वे किसी एक राज्य से सम्पर्क रखें अथवा तेरह से अलग-अलग। राष्ट्रीय स्तर पर तो राज्य आपस में झगडालू बच्चों की तरह लड़ने लगे। प्रदेशों के संबंध पेन्सिलवानियाँ और कनैक्टिकट, न्यूयार्क तथा न्यू हेम्पशायर आदि के बीच विवाद हुए। व्यापार के संबंध में न्यूयार्क ने न्यूजर्सी और कनैक्टिकट से विवाद किया।

प्रत्येक राज्य में अशान्ति और अव्यवस्था थी। वाशिंगटन ने लिखा है कि ''हर राज्य में विस्फोटक तत्व रहते हैं जो एक चिगारी से ही धधक सकते है।'' राज्यों का यह विद्रोह एक शक्तिशाली सरकार की स्थापना करके ही दबाया जा सकता था। अन्यथा यह डर था कि विद्रोही लोग अपना सर ऊँचा उठाएं और शासन की बागडोर छीन कर भीषण रक्तपात एवं एक से अधिक सरकारों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करें। अनेक कारणों से शक्तिशाली राष्ट्रीय सरकार की स्थापना का समर्थन किया जाने लगा। व्यापार, जहाजरानी एवं निर्मित माल की रक्षा, राज्यों के आपसी संघर्षो को रोकना, राष्ट्रीय सुरक्षा की स्थापना, सार्वजनिक ऋण एवं मुद्रा संबंधीप्रश्न उल्लेखनीय कारण थे।

11.6. फिलाडेल्फिया सम्मेलन

इन समस्त कठिनाइयों ने यह स्पष्ट कर दिया कि 1776 की संघ व्यवस्था उचित नहीं है और उसमें आवश्यक परिवर्तन शीघ्र किए जाने चाहिए। किन्तु संविधान की धाराओं में सुधार के जो भी प्रयत्न किए गए वे असफल हो गए और अन्तत: स्थिति ऐसी आ गई कि राज्यों में गृह-युद्ध छिड़ने का भय उत्पन्न हो गया। इसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि केन्द्र को शक्तिशाली बनाने के लिए और विधान में आवश्यक परिवर्तन करने के लिए समस्त देश में एक आन्दोलन सा उठ खड़ा हुआ और इस आन्दोलन अथवा जनता की इस आवाज को वाशिंगटन, हेमिल्टन व मेडिसन ने और ऊँचा उठाया। शनै: शनै: लोकमत इस पक्ष में बढ़ता गया कि केन्द्र को राज्यों से कम शक्तिशाली नहीं होना चाहिए। जार्ज वाशिंगटन ने कहा- ''एक राष्ट्र के रूप में हम अधिक दिनों तक तब तक जीवित नहीं रह सकते, जब तक किसी स्थान पर हम एक ऐसी सत्ता की स्थापना न करें, जो उतनी ही शक्ति के साथ सम्पूर्ण संघ में कार्य करे, जितनी शक्ति के साथ राज्य-सरकारें विविध राज्यों में कार्य करती हैं।''

जार्ज वाशिंगटन का मत धीरे-धीरे जनता का मत हो गया और यह निश्चित हुआ कि सब राज्यों के प्रतिनिधियों का सम्मेलन आयोजित हो, जो प्रचलित संघ संविधान की धाराओं को इस प्रकार संशोधित करे कि एक पूर्ण शक्तिशाली राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की जा सके। 1787 में कांग्रेस ने एक सम्मेलन

बुलाने का प्रस्ताव पारित किया जिसका उद्देश्य था कि ''संघ की नियमावली को संशोधित करके कांग्रेस और राज्यों की धारासभाओं को नवीन नियमावली से परिचित किया जाए और जब कांग्रेस एवं राज्यों द्वारा वह मान ली जाए तब उसे लागू कराया जाए ताकि संघ-शासन प्रशासकीय कार्यों को सफलतापूर्वक करता रहे और संघ भी दृढ़ बना रहे।''

उपर्युक्त निश्चय के फलस्वरूप 25 मई, 1987 को संविधान-निर्माण-सभा का प्रथम अधिवेशन फिलाडेल्फिया में बुलाया गया। इस महान् सम्मेलन में कानून, अर्थशास्त्र, प्रशासन और राजनीति के बड़े-बड़े विद्वान एकत्रित हुए। ये सब मिलाकर 12 राज्यों के 55 प्रतिनिधि थे। केवल रोडद्वीप (Rhode Island) ने अपना कोई प्रतिनिधि नहीं भेजा था। सम्मेलन में भाग लेने वाले लोगों की औसत आयु 42 वर्ष थी। इस सम्मेलन का सभापतित्व जार्ज वाशिंगटन ने किया। कार्य प्रणाली के विषय में यह निश्चित हुआ कि प्रस्तावों पर निर्णय मतदान द्वारा किए जाएँ, जिसमें प्रत्येक राज्य को एक मत देने का अधिकार हो और बहुमत द्वारा समर्पित प्रस्ताव विधिवत् पारित समझे जाएँ। साथ ही यह भी निश्चित किया गया कि सम्मेलन की कार्यवाही को गुप्त रखा जाएँ।

11.7. नव संविधान का निर्माण

फिलाडेल्फिया सम्मेलन में जो प्रतिनिधि उपस्थित हुए वे सब लोक-कार्य में अनुभवी व्यक्ति थे, इसलिए उन्होंने सारी समस्या को बड़े अच्छे ढ़ंग से, वस्तुस्थिति को देखते हुए सुलझाना आरम्भ किया।

फिलाडेल्फिया सम्मेलन में हुए विचार विनिमय से शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि 1776 के संघीय ढाँचे के सुधार मात्र से काम नहीं चलेगा, अत: एक पूर्णत: नवीन साँविधानिक ढाँचा तैयार किया जाना चाहिए जिसमें स्वशासित राज्यों की शक्ति और शक्तिशाली केन्द्र की शक्ति का उचित सामंजस्य हो। यह सम्मेलन लगभग 4 माह तक चला। अन्त में, अनेक उग्र समस्याओं को सुलझाने के पश्चात्, 17 सितम्बर, 1787 को 'सम्मेलन में भाग लेने वाले समस्त राज्यों की सर्वसम्मति से' एक प्रलेख (Document) पर हस्ताक्षर हुए जिसमें संयुक्तराज्य अमेरिका के लिए एक नूतन शासन विधान स्वीकार किया गया। परन्तु इस संघर्ष का एक तीव्र और निर्णायक निर्णय और शेष था जिससे कि अमेरिकन राज्यों का यह संघ अधिक निर्दोष और अधिक पूर्ण हो जाए। सम्मेलन द्वारा यह निश्चय किया गया कि नूतन संविधान को लागू किए जाने के लिए यह आवश्यक होगा कि 13 में से कम से कम 9 राज्यों के सम्मेलन उसे अलग-अलग स्वीकार करें। पर जिस उत्साह के साथ फिलाडेल्फिया सम्मेलन (The Philadelphia Convention) ने संविधान की रचना की थी, उस उत्साह से उसकी स्वीकृति अलग-अलग राज्यों द्वारा नहीं हुई। 1787 के अन्त तक केवल 3 राज्यों की स्वीकृति प्राप्त हुई। संविधान में की गई प्रशासनिक व्यवस्था को लेकर गम्भीर मतभेद व्याप्त हो गया और सम्पूर्ण देश दो दलों में विभक्त हो गया। एक दल उन व्यक्तियों का था, जो संघ के विरोधी (Anti Federalists) थे। ये लोग केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाने के पक्ष में नहीं थे और चाहते थे कि केन्द्रीय शासन स्वतन्त्र राज्यों का एक शिथिल संगठन मात्र बना रहे। दूसरा दल संघात्मक शासन के अथवा संघ के समर्थको (Federalists) का था। ये लोग केन्द्रीय सरकार को शक्ति सज्जित करना चाहते थे। इनका मत था कि ऐसा संघ होना चाहिए जिसमें यद्यपि राज्यों को स्वशासन का अधिकार हो, किन्तु जिसमें केन्द्र पर्याप्त रूप से शक्तिशाली हो। दोनों पक्षों का यह वाद-

विवाद समाचारपत्रों में भी चला, एवं विधान-मण्डलों और राज्य के सम्मेलनों (State Conventions) में भी दोनों ही पक्षों की ओर से तीव्र एवं उत्तेजक तर्क-वितर्क प्रस्तुत किए गए। नए संविधान का कतिपय लोगों द्वारा इस आधार पर भी विरोध किया गया कि उसमें अधिकार पत्र (Bill of Rights) की व्यवस्था नहीं की गई थी और इस कारण यह सम्भावना विद्यमान थी कि लोगों की स्वतन्त्रता सुरक्षित न रह सके। पैट्रिक हेनरी, रिचर्ड हैनरीली आदि देशभक्तों ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि अधिकार पत्र के अभाव में प्रस्तावित संविधान व्यक्तियों की स्वतन्त्रता के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है।

संघात्मक शासन के समर्थकों (Federalists) ने इस बात को स्वीकार कर लिया कि संविधान में अधिकार-पत्र (Bill of Rights) की व्यवस्था होना आवश्यक है। इसके लिए उन्होंने घोषणा की कि अधिकार-पत्र की व्यवस्था नए शासन की स्थापना के बाद तुरन्त कर दी जाएगी। अपनी इस घोषणा को उन्होंने, संविधान में प्रथम दस नए संशोधन करके क्रियान्वित भी कर दिया। इसका फल यह हुआ कि उन राज्यों ने भी संविधान को स्वीकार कर लिया जिन्होंने अब तक कोई निर्णय नहीं किया था। 21 जून, 1788 तक नए संविधान को राज्यों की आवश्यक संख्या द्वारा स्वीकृति दे दी गई और तब संवर्ग (Confederation) की कांग्रेस ने विधि द्वारा आज्ञा दी कि नए संविधान के अनुसार निर्वाचन होकर नई सरकार 4 मार्च, 1789 से देश का शासन-भार संभाल लेगी। परिणामस्वरूप निर्वाचन हुए, सीनेट के सभासद और नई कांग्रेस के लिए प्रतिनिधिगण चुने गए तथा जार्ज वाशिंगटन के राष्ट्रपतित्व में नए संविधान के अन्तर्गत नई सरकार ने कार्य-भार सम्भाला और पुराना संघ या (Confederation) संवर्ग समाप्त हो गया।

11.8. संविधान के मुख्य प्रावधान

अमेरिका संघीय सरकार ने संविधान का जो प्रारूप तैयार किया, उसकी कुछ प्रमुख विशेषताओं का निम्न प्रकार उल्लेख किया जा सकता है-

1- **सत्ता का विभाजन -** संविधान ने संघ और राज्यों के बीच सत्ता का विभाजन किया। संघ सरकार अपने कार्यक्षेत्र में सम्प्रभुता के समस्त अधिकारों का प्रयोग कर सकती थी। इसे लोगों के ऊपर प्रत्यक्ष बाध्यकारी शक्ति प्राप्त थी। संघीय कानून और सन्धियाँ राज्य के अधिकारियों और न्यायालय पर बाध्यकारी थे। संघीय सत्ता को लागू करने के लिए संघ सरकार द्वारा सेना बुलाई जा सकती थी। यदि कोई राज्य संघीय कानूनों का उल्लंघन करे तो इसके अधिकारियों को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता था। संघ को शक्तिशाली बनाने के लिए व्यक्तियों पर उसका प्रत्यक्ष नियन्त्रण रखा गया। इतने पर भी संघ सरकार के क्षेत्राधिकार की सीमाएँ स्पष्ट कर दी गई। राज्यों के पास भी अनेक सम्प्रभु-शक्तियाँ रखी गई।

2- **संघ सरकार की शक्तियाँ -** परिसंघ की भांति संघीय सरकार का विदेश नीति और राष्ट्रीय सुरक्षा पर नियन्त्रण रखा गया। इसे अनेक नई शक्तियाँ सौपी गई। इनमें सबसे महत्वपूर्ण शक्ति करारोपण एवं विदेश व्यापार के नियमन से संबंधित थी। यह अपनी शक्तियों को क्रियान्वित करने के लिए कोई भी कानून बना सकती थी।

3- **राज्यों की सीमाएँ -** राज्य सरकारों को उन अनेक कार्यों को सम्पन्न करने से मना कर दिया गया, जो संघीय सत्ता में हस्तक्षेप करते थे अथवा राष्ट्रीय एकता को खतरा पहुँचाते थे। राज्य कोई कागजी मुद्रा अथवा सिक्का नहीं चला सकते थे। ऐसा कोई कानून पास नहीं कर सकते जो संघ सरकार द्वारा किए गए समझौतों का बाधक बने।

4- **प्रतिनिधित्व की व्यवस्था -** सम्मेलन में बहुमत के शासन को सीमित करने के लिए सम्पत्ति को महत्व दिया गया। सीनेट में निर्वाचित होने के लिए सम्पत्ति संबंधीयोग्यताएँ निर्धारित कर दी गई। अन्त में, अप्रत्यक्ष निर्वाचन व्यवस्था पर विश्वास किया गया। दूसरी ओर, प्रतिनिधि सभा का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा दो वर्ष के लिए करके प्रजातन्त्र की स्थापना की गई। मतदाताओं की योग्यताओं का निर्धारण राज्यों के ऊपर छोड़ा गया। सीनेट को जनता के दबाव से बचाने के लिए उसके सदस्यों का निर्वाचन राज्यों की व्यवस्थापिकाओं द्वारा छ: वर्ष के लिए किया जाने लगा।

बहुमत के शासन के दोषों को कम करने के लिए राष्ट्रपति को भी जनता से दूर रखा गया। उसका निर्वाचन एक निर्वाचक मण्डल (Electoral College) द्वारा किया जाना था। यह आशा की गई थी कि प्रत्येक राज्य अपना उम्मीदवार प्रस्तुत करेगा। अत: निर्वाचन की एक जटिल प्रणाली आयोजित की गई। निर्वाचक मण्डल का प्रत्येक सदस्य दो उम्मीदवारों को मत देता था। इनमें कम से कम एक उम्मीदवार दूसरे राज्य का होना चाहिए। यदि किसी भी उम्मीदवार को बहुमत प्राप्त न हो तो प्रतिनिधि सभा राज्यों के मतदान के आधार पर अन्तिम निर्णय लेती थी। सर्वाधिक से कम मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को उपराष्ट्रपति बनाया जाता था। निर्वाचक मण्डल के सदस्य राज्यों की व्यवस्थापिकाओं द्वारा चुने जाते थे। राष्ट्रपति का कार्यकाल चार वर्ष रखा गया और पुनर्निर्वाचन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं रखा गया।

5- **शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त -** अमेरिकी संविधान में व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के बीच शक्ति-पृथक्करण का सिद्धांत अपनाया गया। इस पृथक्करण को पूर्ण नहीं कहा जा सकता क्योंकि राष्ट्रपति को व्यवथापन पर सीमित निषेधाधिकार प्रदान किया गया और सीनेट द्वारा राष्ट्रपतिकृत नियुक्तियों तथा संधियों पर स्वीकृति प्रदान करना आवश्यक बनाया गया। राजस्व पर कांग्रेस के नियन्त्रण द्वारा कार्यपालिका को प्रभाव में रखा गया। सरकार की इन दो शाखाओं के बीच संघर्ष छिड़ने पर उसे सुलझाने का कोई तरीका नहीं बताया गया। आम चुनाव के अतिरिक्त समय में जनता से अपील करने का कोई तरीका नहीं था। कांग्रेस और राष्ट्रपति के बीच उत्पन्न विवाद को सुलझाने का उचित तरीका न होने के कारण किसी कार्यक्रम को प्रभावशाली रूप से अपनाया जाना असम्भव बन गया।

6- **संविधान की समस्याएँ -** विधान की कुछ विशेषताओं ने योजना के अनुरूप कार्य नहीं किया। उदाहरणार्थ निर्वाचक मण्डल शीघ्र ही मतदाताओं के निर्णय को स्वीकार करने वाला यन्त्र मात्र बन कर रह गया। संविधान निर्माताओं की आशाओं तथा इच्छाओं के विपरीत राजनीतिज्ञ राष्ट्रीय दलों में विभाजित हो गए और राज्यों के अन्तरों का महत्व प्राय: समाप्त हो गया। 1796

तक निर्वाचक मण्डल के सदस्य स्वतन्त्र निर्णय का प्रयोग न करके अपने दल से बन्ध गए। इसके परिणामस्वरूप 1804 में संविधान का 12वां संशोधन आवश्यक बन गया। इसके द्वारा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए पृथक् मतदान होने लगा।

विदेश नीति के क्षेत्र में भी कुछ परिवर्तन आया। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को सीनेट के परामर्श और स्वीकृति पर संधि करने का अधिकार सौंपा गया था किन्तु जब वाशिंगटन राष्ट्रपति बने तो उन्हें सीनेट का प्रभावशाली सहयोग प्राप्त करना असम्भव प्रतीत हुआ। अत: संधियाँ करना विशुद्ध रूप से कार्यपालिका का कार्य बन गया। बाद में ये सीनेट की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत की जाती थीं।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सम्मेलन के सदस्य समय की आवश्यकता के अनुरूप संविधान की रचना करने में सफल हो गए। इसका कारण यह था कि उन्होंने अपने-आपको मूलभूत बातों से संबंधितरखा और परिवर्तन तथा विकास के लिए पर्याप्त स्थान छोड़ दिया।

11.9- अधिकार पत्र

> ''सभी व्यक्तियों को समान उत्पन्न किया गया है..... सृष्टिकर्त्ता ने उन्हें कुछ अहरणीय अधिकार प्रदान किये हैं। इनमें से कुछ हैं -जीवन, स्वतन्त्रता और सुख की खोज।..... इन अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए ही व्यक्तियों में सरकार की स्थापना की जाती है।''
>
> - स्वतन्त्रता की घोषणा

अमरीकी स्वतन्त्रता की उक्त घोषणा में व्यक्ति के प्राकृतिक और अहरणीय अधिकारों का उल्लेख मिलता है। परन्तु आश्चर्य है कि मूल संविधान में नागरिकों के अधिकार पत्र जैसी कोई चीज नहीं थी। अमेरिका में नागरिक अधिकारों को संविधान में प्रथम 10 संशोधनों एवं 13वें, 14वें, 15वें और 19वें संशोधनों द्वारा जोड़ा गया है।

11.10 नागरिक अधिकारों की विशेषतायें

1 जहां-तहां बिखरे हुए अधिकार - अमेरिकी नागरिकों के अधिकार संविधान में एक स्थान पर लिपिबद्ध नहीं किये गये। नागरिकों के कुछ अधिकारों का वर्णन मूल संविधान में, कुछ का अधिकार पत्र में

(प्रथम दस संशोधनों में) और कुछ का 13वें, 14वें, 15वें और 19वें संशोधनों में किया गया है। उदाहरणतः नागरिकों को बिल ऑफ अटेण्डर और कार्योत्तर कानूनों से सरंक्षण तथा बन्दी प्ररत्यक्षीकरण का अधिकार मूल संविधान के अनुच्छेद 1, खण्ड 9 से उपरांत हुए है, धर्म, भाषण, ।प्रेस, सभा और शिकायतों को दूर कराने के लिए आवेदन ।त्र की स्वतन्त्रतायें ।प्रथम संशोधन से हुई है। संशोधन 13 नागरिकों को दासता से मुक्ति प्रदान करता है, कानून की

उचित।प्रक्रिया कानून के समान संरक्षण का अधिकार और नागरिकता सम्बन्धी अधिकार 14वें संशोधन से हुए है

अधिकारों की गणना लोगों द्वारा सुरक्षित अधिकारों को समाप्त नहीं करती- अमेरिकी नागरिक केवल उन्हीं अधिकारों का उपयोग नहीं करते जिन्हें मूल संविधान अथवा संशोधनों में गिनाया गया है। वे उन अधिकारों का भी उपयोग करते हैं जिन्हें संविधान अथवा संशोधनों में गिनाया नहीं गया। 9वें संशोधन के अनुसार 'संविधान में कुछ अधिकारों की गणना का यह अर्थ नहीं कि लोगों द्वारा सुरक्षित अधिकारों को अस्वीकार किया जा सकता है अथवा उनकी उपेक्षा की जा सकती है।'

2 अधिकारों, विशेषाधिकारों एवं उन्मुक्तियों का उल्लेख - संविधान केवल अधिकारों का ही उल्लेख नहीं करता बल्कि विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों का भी उल्लेख करता है। इन सबको न्यायालय का संरक्षण प्राप्त है। इन्हें न्यायालय द्वारा लागू कराया जा सकता है। परन्तु अधिकारों और विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों में अन्तर किया गया है। जहां अधिकार सभी व्यक्तियों को प्राप्त हैं, वहाँ विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ केवल संयुक्त राज्य के नागरिकों को प्राप्त हैं। अमेरिकी नागरिक जिन विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों का उपयोग करते हैं वे हैं : (1) विदेशों एवं महासमुद्रों में सरकारी संरक्षण, (2) संघीय पदों के लिए निर्वाचन लड़ना एवं मतदान करना, (3) सन्धियों द्वारा सुनिश्चित किये गये अधिकारों एवं लाभों का उपयोग, (4) शान्तिपूर्ण ढंग से सभा करना, (5) शिकायतों को दूर कराने के लिए आवेदन पत्र देना आदि।

3 अधिकारों की सापेक्षता - अमरिकी नागरिकों को प्रदान किये गये अधिकार सापेक्ष है, निरपेक्ष नहीं। यद्यपि अमरिकी संविधान में कहीं-कहीं प्रयोग की गयी शब्दावली अधिकारों की निरपेक्षता का आभास देती है। उदाहरणत: प्रथम संशोधन की इस शब्दावली से कि ''कांग्रेस किसी ऐसे कानून का निर्माण नहीं करेगी जो धर्म या उसके स्वतन्त्र उपयोग, भाषण, प्रेस, सभा या आवेदन की स्वतन्त्रता को निषिद्ध करता हो'' अधिकारों की निरपेक्षता का आभास मिलता है परन्तु सरकार सार्वजनिक सुरक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, नैतिकता और सामान्य कल्याण के नाम पर सदैव व्यक्तिगत अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगा सकती है। न्यायालय ने अनेक निर्णयों में अवलोकित किया है कि ''कोई भी अधिकार निरपेक्ष अथवा अमर्यादित नहीं'', ''यदि व्यक्ति के व्यक्तिगत अधिकार मूल हैं तो सामान्य हित में लोगों के अधिकार भी उतने ही मूल हैं।''

4 सीमित सरकारें - नागरिक अधिकार संघीय और राज्य सरकारों को सीमित करते हैं। यद्यपि संविधान ने अथवा न्यायालय ने सीमित शब्द को कभी स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया फिर भी इसके संकेत संविधान में प्रयोग की गयी इस शब्दावली से मिलते हैं कि ''कांग्रेस अथवा राज्य सरकारें इस प्रकार के कानूनों का निर्माण नहीं करेंगी।'' इसके अतिरिक्त संविधान नागरिक अधिकारों को सरकारी हस्तक्षेप से संरक्षण प्रदान करता है और न्यायालय इसे लागू करती है।

5 न्यायालय का संरक्षण - न्यायालय नागरिक अधिकारों के संरक्षण के रूप में कार्य करती है और नागरिकों को कार्यपालिका, निरंकुशता और विधायी अत्याचार से छुटकारा दिलाती है।

अधिकारों के संरक्षण में न्यायालय की भूमिका नकारात्मक है सकारात्मक नहीं। वह तभी राहत पहुँचा सकती है जब उसके समक्ष मुकदमा पेश किया जाये।

6 अनिश्चितता एवं जटिलता - अमरिकी नागरिक अधिकारों में अनिश्चितता और जटिलता पाई जाती है। अनिश्चितता का कारण यह है कि अधिकारों की स्पष्ट सूची और उन पर स्पष्ट सीमाओं के अभाव के कारण वे न्यायालय की मनोदशा के पात्र बन गये हैं। यही कारण है कि अधिकारों के संरक्षण के लिए न्यायालय ने कभी ''स्पष्ट एवं वर्तमान संकट परीक्षण'' और कभी ''बुरी प्रवृत्ति परीक्षण'' का प्रयोग किया है। नागरिक अधिकारों की जटिलता का कारण यह है कि कुछ अधिकार केवल व्यक्तियों को और कुछ केवल नागरिकों को प्राप्त है, कुछ अधिकार संयुक्त राज्य के नागरिकों को और कुछ राज्यों के नागरिकों को प्राप्त हैं और कुछ केवल कृत्रिम व्यक्तियों (निगमों) को प्राप्त है, कुछ अधिकार राष्ट्रीय सरकार के विरूद्ध हैं और कुछ राज्य सरकारों के विरूद्ध और कुछ दोनों के विरूद्ध हैं।

7 राष्ट्रीयकरण - अमरिका में नागरिक अधिकारों का धीरे-धीरे राष्ट्रीयकरण किया गया है। उदाहरणत: गृह युद्ध (1861-65) से पूर्व नागरिक अधिकार केवल केन्द्रीय सरकार को ही प्रतिबन्धित करते थे और राज्य सरकारें नागरिकों पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए स्वतन्त्र थीं। परन्तु गृह-युद्ध के बाद जो संशोधन किये गये, विशेषकर संशोधन 13 और 14, उन्होंने राज्य सरकारों के अधिकारों को भी पर्याप्त मात्रा में छीन लिया। उदाहरणत: 14वें संशोधन में केवल नागरिकता को ही परिभाषित नहीं किया बल्कि यह भी व्यवस्था कर दी कि कानून की उचित प्रक्रिया के बिना राज्य सरकारें किसी व्यक्ति को उसके जीवन, स्वतन्त्रता और सम्पत्ति से वंचित नहीं कर सकतीं और न ही किसी व्यक्ति को कानून के समान संरक्षण से वंचित कर सकती है।

8 उदारवादी स्वरूप - अमेरिका में नागरिक अधिकारों का स्वरूप उदारवादी है, सोवियत संघ की भांति समाजवादी नहीं। यही कारण है कि अमेरिकी संविधान केन्द्रीय या राज्य सरकारों को कुछ कार्य करने से निषिद्ध करता है जबकि सोवियत संघ का संविधान सरकार से कुछ कार्य करने को कहता है। अमरिकी निवासियों की धारणा है कि राज्य व्यक्ति के लिए है, व्यक्ति राज्य के लिए नहीं। यहाँ की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अवधारणायें व्यक्ति के कार्यों में न्यूनतम हस्तक्षेप पर बल देती हैं।

9 अधिकारों का दोहरा आधार - सामान्यत: नागरिक अधिकारों का एक ही आधार होता है - संविधान अथवा अभिसमय। जहाँ भारत में नागरिक अधिकारों का आधार भारतीय संविधान है वहाँ ब्रिटेन में उनका आधार अभिसमय है। परन्तु अमरिका में नागरिक अधिकारों के दो आधार हैं - संघीय संविधान और राज्य संविधान।

10 अधिकारों को स्थगित करने की औपचारिक व्यवस्था का अभाव - जहाँ भारत में नागरिकों के अधिकारों को स्थगित करने की औपचारिक व्यवस्था है अर्थात् संकटकाल में भारतीय नागरिकों के अधिकारों को स्थगित किया जा सकता है वहाँ अमेरिका में नागरिक अधिकारों को

स्थगित करने की कोई औपचारिक व्यवस्था नहीं, यद्यपि युद्ध या अन्य गम्भीर आन्तरिक स्थिति में इन्हें स्थगित किया जाता रहा है।

11 कर्त्तव्यों का अभाव - सोवियत संघ अथवा भारत में नागरिक कर्त्तव्यों का उल्लेख संविधान में किया गया है। परन्तु अमेरिकी संविधान में नागरिकों के कर्त्तव्यों को गिनाया नहीं गया। अमेरिका में नागरिक कर्त्तव्यों को नागरिक अधिकारों में अन्तर्निहित समझा जाता है।

नागरिकों को गारण्टी किये गये अधिकार :-

अमेरिकी नागरिकों को मुख्यत: निम्न प्रकार के अधिकारों की गारण्टी दी गयी है:-

A सारवान् अधिकार - ये अमेरिका में प्रजातन्त्र की आधारशिलायें हैं। ये व्यक्ति के जीवन और स्वतन्त्रता के लिए महत्वपूर्ण है। इन्हें नागरिक स्वतन्त्रतायें भी कहा जाता है। इनके अन्तर्गत अमेरिकी नागरिक मुख्यत: निम्न अधिकारों का उपयोग करते हैं :-

1. धार्मिक स्वतन्त्रता - अमेरिकी संविधान का प्रथम संशोधन सभी व्यक्तियों को धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार देता है। इसके अनुसार ''कांग्रेस किसी ऐसे कानून का निर्माण नहीं करेगी जो धर्म को संस्थापित करता हो अथवा उसके स्वतन्त्र प्रयोग को निषिद्ध करता हो।'' इसी प्रकार चौदहवां संशोधन राज्य विधान सभाओं को इस प्रकार के कानून के निर्माण की मनाही करता है। ये दोनों संशोधन चर्च (धर्म) और राज्य को एक-दूसरे से पृथक करते हैं।

   धार्मिक स्वतन्त्रता का यह कदापि अर्थ नहीं कि सरकारें उन धार्मिक प्रथाओं पर प्रतिबन्ध नहीं लगा सकतीं जिन्हें समाज विरोधी अथवा पाश्विक समझा जाता है। वस्तुत: अमेरिका में धार्मिक स्वतन्त्रता पर व्यवहारिक प्रतिबन्ध है। उदाहरणत: कांग्रेस ने बहु विवाह प्रथा को गैर कानूनी घोषित किया है, यद्यपि मोरमोनस समुदाय इसे अपने धार्मिक विश्वासों के अनुरूप मानता है। सर्वोच्च न्यायालय ने रेनोल्डस बनाम संयुक्त राज्य के विवाद में बहु विवाह प्रथा पर प्रतिबन्ध को उचित माना है। धार्मिक स्वतन्त्रता की आड़ में कोई व्यक्ति दण्डनीय अपराध नहीं कर सकता और न ही आचरण कर सकता है जो सार्वजनिक व्यवस्था, सुरक्षा, शान्ति अथवा नैतिकता पर कुठाराघात करता हो।

2. भाषण और प्रेस की स्वतन्त्रता - संविधान सभी व्यक्तियों को भाषण और प्रेस की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। प्रथम संशोधन के अनुसार ''कांग्रेस किसी ऐसे कानून का निर्माण नहीं करेगी..... जो भाषण या प्रेस की स्वतन्त्रता को कम करता हो।'' इस उपबन्ध का उद्देश्य सार्वजनिक मामलों में अनियन्त्रित विचार-विमर्श को सुनिश्चित करना है। उदाहरणत: अशिष्टता, निन्दापूर्ण, मिथ्यावाचन अथवा सुव्यवस्था को भंग करने वाले अथवा क्रान्ति या विद्रोह को प्रोत्साहन देने वाले कार्यों को रोकने के लिए कांग्रेस कानूनों का निर्माण कर सकती है। उदाहरणत: 1798 का विदेशी राजद्रोही अधिनियम और 1917 का जासूसी अधिनियम स्वतन्त्रताओं पर प्रतिबन्ध लगाते हैं।

स्वतन्त्रताओं पर प्रतिबन्ध लगाने के सम्बन्ध में अमेरिका में दो प्रकार के विचार पाये जाते हैं। एक 'बुरी प्रवृत्ति' विचार और दूसरा ''स्पष्ट एवं वर्तमान खतरा'' विचार। पहले विचार के समर्थकों का कहना है कि जिन व्यक्तियों, संगठनों अथवा समाचार पत्रों की प्रवृत्ति ही बुरी है उन पर नियन्त्रण लगाया जाना चाहिए, जबकि दूसरे विचार के समर्थकों का कहना है कि स्पष्ट एवं वर्तमान खतरा उत्पन्न होने पर ही नियंत्रण लगाया जाना चाहिए। अमेरिका में सामान्यत: पूर्व नियंत्रण निषिद्ध है। फिर भी वहाँ ''बुरी प्रवृत्ति'' विचार को स्वीकार किया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय ने डेनिस बनाम संयुक्त राज्य के विवाद में अवलोकित किया था कि ''किसी प्रत्यक्ष कार्य के समर्थन से पूर्व भी जहाँ षड्यन्त्र में लीन लोगों का उद्देश्य अनुकूल अवसर उपस्थित होने पर हिंसक क्रान्ति को शुरू करता है वहाँ भाषण, प्रेस और सभा की स्वतन्त्रता को प्रतिबन्धित किया जा सकता है।''

3. सभा और आवेदन की स्वतन्त्रता - प्रथम संशोधन सभी व्यक्तियों को सभा करने और आवेदन देने की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। परन्तु सभा शान्तिपूर्वक ही हो सकती है और उसके उद्देश्य वैध और सार्वजनिक सुरक्षा के अनुरूप ही हो सकते हैं। अन्य स्वतन्त्रताओं की भांति सभा करने की स्वतन्त्रता भी अबाधित नहीं। यातायात की सुविधा, जन स्वास्थ्य, शान्ति और सुव्यवस्था के लिए इसे प्रतिबन्धित किया जा सकता है।

   संविधान सभी व्यक्तियों को सरकार को आवेदन देने की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। परन्तु आवेदन की स्वतन्त्रता व्यक्ति को कोई ऐसी शक्ति प्रदान नहीं करती कि वह अपने आवेदन पर विचार को बाध्य करा सके।

   संविधान भाषण, प्रेस और सभा की स्वतन्त्रताओं में विचरण की स्वतन्त्रता का स्पष्ट उल्लेख नहीं करता, परन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने इस स्वतन्त्रता को उक्त स्वतन्त्रताओं में अन्तर्निहित माना है।

4. दासता और अनैच्छिक पराधीनता से स्वतन्त्रता - संविधान सभी व्यक्तियों को दासता और अनैच्छिक पराधीनता से मुक्ति दिलाता है। तेरहवें संशोधन में इस बात को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया गया है कि ''संयुक्त राज्य अथवा उसके क्षेत्राधीन किसी स्थान पर न तो दासता और न अनैच्छिक पराधीनता विद्यमान रहेगी, सिवाय दण्ड के रूप में जहाँ अपराधी को विधिवत दोषी ठहराया गया हो।'' इस संशोधन का उद्देश्य नीग्रो जाति को दासता और अनैच्छिक पराधीनता से मुक्ति दिलाना था परन्तु यह गारन्टी सभी जातियों को उपलब्ध है। यह संशोधन व्यक्तियों को सभी प्रकार की दासता से मुक्ति दिलाता है। परन्तु सरकार नागरिकों को सेना मिलिशिया तथा जूरी में काम करने के लिए विवश कर सकती है।

5. कानून की उचित प्रक्रिया - संविधान कानून की उचित प्रक्रिया की गारण्टी देता है। यह गारण्टी केवल व्यक्तियों को ही नहीं अपितु कृत्रिम व्यक्तियों, जैसा कि निगमों को भी प्राप्त है। संशोधन इस बात की स्पष्ट व्यवस्था करता है कि ''कानून की उचित प्रक्रिया के बिना किसी व्यक्ति को उसके जीवन, स्वतन्त्रता और सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता।'' संशोधन XIV इसी प्रकार का प्रतिबन्ध राज्यों पर लगाता है।

कानून की उचित प्रक्रिया को परिभाषित करना कठिन है। इसका मूल कारण यह है कि इसके अर्थ निरन्तर विकसित होते रहते हैं। इसे मुख्यत: निम्न अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है:-

(i) जिस व्यक्ति या वस्तु में सरकार अथवा उसके निम्न अभिकरण हस्तक्षेप करना चाहते हैं उस पर उन्हें क्षेत्राधिकार होना चाहिए।

(ii) कानून अथवा आदेश को विधिवत् ढंग से निर्मित एवं प्रकाशित किया जाना चाहिए।

(iii) अपराधों को स्पष्ट रूप में परिभाषित किया जाना चाहिए।

(iv) अभियुक्त को आरोपों की सूचना मिलनी चाहिए।

(v) अभियुक्त को अपनी सफाई (बचाव) तथा वकील की सहायता लेने का अवसर मिलना चाहिए।

(vi) जिस न्यायाधिकरण के समक्ष मुकद्दमे की सुनवाई की जाए उसकी रचना इस प्रकार हो कि निष्पक्ष निर्णय सम्भव हो।

(vii) गवाहियाँ अभियुक्त के सामने ली जायें।

(viii) कानून युक्तियुक्त होना चाहिए। न्यायालय कानून की वैधता-अवैद्यता, औचित्य-अनौचित्य को निर्धारित कर सकती है।

6. **समान संरक्षण (Equal Protection) -** संविधान सभी को कानून के समान संरक्षण का आश्वासन देता है। **चौदहवां संशोधन** इस बात की स्पष्ट व्यवस्था करता है कि ''कोई राज्य अपने क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को कानून के समान संरक्षण से वंचित नहीं कर सकता।'' परन्तु समान संरक्षण की गारण्टी का यह अर्थ नहीं कि सभी व्यक्तियों और सभी निगमों के साथ यथार्थत: एक जैसा व्यवहार किया जाये। वस्तुत: **न्यायालयों ने युक्तियुक्त भेदभाव का समर्थन किया है,** परन्तु एक ही प्रकार के समूह अथवा वर्ग में सभी व्यक्तियों अथवा निगमों में भेदभाव नहीं किया जा सकता। उदाहरणत: महिलाओं के लिए न्यूनतम वेतन संबंधी कानून का निर्माण किया जा सकता है और पुरूषों व बच्चों को उससे अलग रखा जा सकता है, विदेशियों को चिकित्सा आदि व्यवसायों से निषिद्ध किया जाता है और निर्धन व्यक्तियों की तुलना में धनी व्यक्तियों पर कर की दरों में अन्तर हो सकता है। परन्तु समान स्तर वाले

व्यक्तियों में भेदभाव नहीं किया जा सकता। सरकार लोगों और व्यवसायों का वर्गीकरण कर सकती है परन्तु यह वर्गीकरण युक्तियुक्त और उपयुक्त होना चाहिए और वर्ग या समूह के भीतर प्रत्येक व्यक्ति के साथ समान व्यवहार होना चाहिए। यदि एक वर्ग या समूह को दूसरे वर्ग या समूह से भेदभाव करने के लिए कानून को लागू किया जाता है तो समान संरक्षण की व्यवस्था का उल्लंघना होता है।

अमरीकी समाज की विडम्बना यह है कि राजनीतिक और कानूनी दृष्टि से समान बनाये जाने पर भी नीग्रो जाति के साथ भेदभाव की नीति अपनायी जाती रही है और यह तथ्य वर्तमान में उतना ही सत्य है जितना कि पहले था। वस्तुत: कुछ समय पूर्व तक अमरीकी न्यायालयों ने ऐसे निर्णय दिये जिन्होंने नीग्रो जाति से भेदभाव को बढ़ावा दिया। उदाहरणत: जहां **प्लैसी बनाम फर्गूशन** विवाद में न्यायालय ने **'पृथक् परन्तु समान सिद्धान्त' (Seperate but equal doctr|ne)** को जन्म दिया वहां 1954-55 के **ब्राउन बनाम तोपेका शिक्षा बोर्ड** के विवाद में न्यायालय ने सार्वजनिक शिक्षा के क्षेत्र में पृथक् शैक्षणिक सुविधाओं को **'स्वाभाविक रूप से असमान'** की संज्ञा दी और उन्हें चौदहवें संशोधन की समान संरक्षण व्यवस्था के विपरीत स्वीकार किया।

7. **बन्दी प्रत्यक्षीकरण -** संविधान **बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख** का संरक्षण सभी नागरिकों को प्रदान करता है। इसे सार्वजनिक सुरक्षा की मांग पर केवल विद्रोह अथवा आक्रमण की स्थिति में ही स्थगित किया जा सकता है। **अनुच्छेद |, खण्ड 9(2)** में कहा गया है कि ''जब तक विद्रोह या आक्रमण के कारण सार्वजनिक सुरक्षा मांग न करे, बन्दी प्रत्यक्षीकरण के विशेषाधिकार को स्थगित नहीं किया जा सकता।'' इसे शान्ति काल में अथवा सार्वजनिक सुरक्षा की माँग न होने पर स्थगित नहीं किया जा सकता। न्यायालय इस बात की समीक्षा कर सकता है कि इसका स्थगन उचित है अथवा नहीं। यदि स्थगन अनुचित है तो न्यायालय उसे अवैध घोषित कर सकता है। उदाहरणत: न्यायालय ने 1945 में **डन्कन बनाम कोहानामोकू** के विवाद में हवाई राज्य में द्वितीय महायुद्ध के दौरान स्थगित किये गये बन्दी प्रत्यक्षीकरण को अवैध घोषित कर दिया था।

8. **बिल ऑफ अटेन्डर से संरक्षण -** बिल ऑफ अटेन्डर (B|ll of Atta|nder) ऐसी विधायी क्रिया है जो व्यक्ति को न्यायिक जाँच के बिना दण्ड प्रदान करती है अर्थात् कष्ट पहुँचाती है। यह क्रिया अभियुक्त को अपनी सफाई (बचाव) का अवसर नहीं देती तथा उसके विरूद्ध लगाये गये आरोपों को सिद्ध नहीं करती फिर भी वह उसे दण्डित करती है। अमरीकी संविधान सभी नागरिकों को बिल ऑफ अटेन्डर से संरक्षण प्रदान करता है। संविधान **अनुच्छेद |, खण्ड 9(3)** में केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों को बिल ऑफ अटेन्डर को पारित करने से मनाही करता है। इस तरह संविधान कांग्रेस और विधान सभाओं के अत्याचार से नागरिकों को संरक्षण प्रदान करता है।

9. **कार्योत्तर विधियों से संरक्षण -** कार्योत्तर विधि का शाब्दिक अर्थ है 'कार्य के बाद' अर्थात् ऐसी विधि जो उस कार्य के लिए दण्ड निश्चित करती है जो उसके निर्माण से पूर्व किया गया है। अमरीकी संविधान नागरिकों की कार्योत्तर विधियों से रक्षा ही नहीं करता बल्कि उनके निर्माण को भी निषिद्ध करता है। **अनुच्छेद I, खण्ड 9(3)** इस प्रकार की विधियों को निषिद्ध करता है। कांग्रेस और राज्य विधान सभायें किसी ऐसे कानून का निर्माण नहीं कर सकतीं जो पूर्व प्रभावी हो। परन्तु इस प्रकार का निषेध फौजदारी विवादों में ही लागू होता है दीवानी मामलों में नहीं।

10. **युक्तिहीन तलाशी और गिरफ्तारी से संरक्षण -** संविधान नागरिकों को युक्तिहीन (अनुचित) तलाशी और गिरफ्तारी से संरक्षण प्रदान करता है। यह संरक्षण इस मान्यता पर आधारित है कि **''व्यक्ति का घर उसका किला है और इसकी पवित्रता नष्ट नहीं होनी चाहिए।'' चौथा संशोधन** इस बात की स्पष्ट व्यवस्था करता है कि लोगों के इस अधिकार की उल्लंघना नहीं होनी चाहिए कि वे अपने शरीरों, घरों, कागजों (पत्रों) और समाज में अनुचित तलाशियों और गिरफ्तारियों से सुरक्षित रहें। कोई वारण्ट तब तक जारी नहीं किया जा सकता जब तक उसे शपथ अथवा प्रतिज्ञा द्वारा सम्भावित कारणों से पुष्ट न किया गया हो, वारण्ट में उस स्थान का जिसकी तलाशी ली जानी है और मन व्यक्तियों अथवा वस्तुओं का जिन्हें जब्त किया जाना है, विशेष रूप से वर्णन होना चाहिए। अवैध तलाशी और जब्ती द्वारा प्राप्त किये गये सबूत का प्रयोग व्यक्ति को दोषी ठहराने के लिए नहीं किया जा सकता है।

तीसरे संशोधन के अनुसार शान्तिकाल में मालिक की सहमति के बिना किसी सैनिक को किसी के घर में नहीं ठहराया जा सकता। युद्धकाल में कानून द्वारा निर्धारित पद्धति से ही ऐसा किया जा सकता है।

11. **शस्त्र को रखना एवं धारण करना -** संविधान नागरिकों को शस्त्र रखने एवं उन्हें धारण करने का अधिकार देता है। **संशोधन दो** के अनुसार ''एक स्वतन्त्र राज्य की सुरक्षा के लिए एक सुव्यवस्थित नियमित मिलिशिया की आवश्यकता होने के कारण लोगों के शस्त्र रखने और उन्हें धारण करने के अधिकार की उल्लंघना नहीं की जा सकती।'' इस संशोधन के बाद भी नागरिक लाइसेन्स प्राप्त करके विशेष प्रकार के शस्त्र रख सकते हैं।

12. **देशद्रोहिता -** अमरीकी संविधान देशद्रोहिता को परिभाषित करता है। यह उन परिस्थितियों का वर्णन करता है जिनमें किसी व्यक्ति को देशद्रोहिता का दोषी ठहराया जा सकता है। **अनुच्छेद III, खण्ड 3** में इस बात को स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है कि ''संयुक्त राज्यों के विरूद्ध युद्ध करना अथवा युद्ध स्थिति में उनके शत्रुओं का साथ देना अथवा उन्हें सहायता अथवा सुविधा देना देशद्रोहिता है।'' किसी व्यक्ति को तब तक देशद्रोहिता का दोषी नहीं ठहराया जा सकता ''जब तक दो गवाह उसके प्रत्यक्ष

कार्य के लिए न्यायालय में गवाही न दें अथवा वह स्वयं अपने अपराध को स्वीकार न कर ले।'' संविधान गुप्त रूप से अथवा उत्पीड़न द्वारा प्राप्त की गयी स्वीकृति को मान्यता नहीं देता। देशद्रोहिता के अपराध को खुली न्यायालय में ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

संविधान कांग्रेस को देशद्रोहिता के दण्ड को निर्धारित करने की शक्ति देता है परन्तु उसकी शक्ति असीमित नहीं। देशद्रोहिता के दोषी व्यक्ति को उसके जीवन काल तक दण्डित किया जा सकता है परन्तु उसके बच्चों अथवा उसकी सम्पति के उत्तराधिकारियों को उत्तराधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता।

B **प्रक्रिया संबंधी अधिकार -** ये अमरीका में कानून के शासन को स्थापित करते हैं और नागरिकों (अभियुक्तों) को इस बात का आश्वासन देते हैं कि उनके साथ युक्तियुक्त न्याय किया जायेगा और जिस प्रक्रिया को अपनाया जायेगा वह भी न्यायोचित होगी। ये अधिकार व्यक्ति (अभियुक्त) को निरंकुश अथवा स्वेच्छाचारी न्याय से संरक्षण प्रदान करते हैं। ये अधिकार मुख्यत: निम्न हैं-

1- **शीघ्र एवं खुली न्यायालय में सुनवाई - छठे संशोधन** के अनुसार सभी फौजदारी मामलों में अभियुक्त को शीघ्र एवं खुली न्यायालय में सुनवाई का अधिकार है। इस पर भी ''अमरीका में न्याय की गति धीमी है।''

2- **कानूनी सहायता - छठा संशोधन** इस बात की व्यवस्था करता है कि अभियुक्त अपनी रक्षा के लिए अधिवक्ता (वकील) की सहायता ले सकता है। यदि कोई अभियुक्त अधिवक्ता का व्यय सहन करने की क्षमता नहीं रखता तो उसे राज्य की ओर से सहायता प्रदान की जाती है। विरोधी गवाहों की गवाही अभियुक्त की उपस्थिति में ही हो सकती है। अभियुक्त अपने पक्ष के गवाहों की न्यायालय में उपस्थिति की माँग कर सकता है।

3- **स्वयं दोषारोपण के विरूद्ध संरक्षण -** संविधान प्रत्येक व्यक्ति को न्यायालय में अपना वक्तव्य देने अथवा न देने अर्थात् गवाही देने अथवा न देने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। **संशोधन** V में कहा गया है कि ''किसी व्यक्ति (अभियुक्त) को फौजदारी मुकदमें में अपने विरूद्ध गवाही देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।'' यह गारण्टी फौजदारी और दीवानी दोनों मामलों में उपलब्ध है। इस पर भी पुलिस व्यक्तियों से, विशेषकर साम्यवादी विचारधारा का समर्थन करने वाले व्यक्तियों से, उत्पीड़न द्वारा स्वीकारोक्ति प्राप्त कर लेती है। सन् 1954 के **अनिवार्य गवाही अधिनियम** के अनुसार तो महान्यायवादी अथवा कांग्रेस समिति के आवेदन पर एक जिला न्यायवादी किसी गवाह को गवाही देने के लिए बाध्य कर सकता है।

4- **जूरी द्वारा जाँच -** अमरीकी संविधान नागरिकों को (अभियुक्तों) को जूरी द्वारा शीघ्र और सार्वजनिक जाँच करवाने का अधिकार देता है। यह अधिकार जहाँ सभी फौजदारी

मामलों में उपलब्ध है वहां दीवानी मामलों में भी उपलब्ध है जहां मुकदमें की राशि 20 हजार डालर या इससे अधिक होती है। जूरी अथवा उससे संबंधित बातों की व्यवस्था संविधान के **अनुच्छेद III, खण्ड 2, संशोधन पाँच, छह और सात में की गयी है।**

5- **अत्यधिक जमानत और क्रूर दण्ड से संरक्षण -** संविधान प्रत्येक व्यक्ति को अत्यधिक जमानत और क्रूर एवं असाधारण दण्ड से संरक्षण प्रदान करता है। **आठवें संशोधन** में कहा गया है कि ''अत्यधिक जमानत की माँग नहीं की जायेगी, अत्यधिक जुर्माने आरोपित नहीं किये जायेंगे और क्रूर तथा असाधारण दण्ड नहीं दिये जायेंगे। **पांचवें संशोधन** के अनुसार ''किसी व्यक्ति को एक अपराध के लिए दो बार दण्डित नहीं किया जायेगा।

C सम्पत्ति का अधिकार - अमरीका में व्यक्तिगत सम्पत्ति को पवित्र समझा जाता है। अत: संविधान सभी व्यक्तियों को सम्पत्ति का अधिकार देता है। इस पर भी संविधान में कोई ऐसी धारा नहीं, जिस प्रकार भारत में 44 वें संशोधन से पूर्व धारा 19(f) थी, जो अमरीकी नागरिकों को सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन का अधिकार देती हो। अमरीकी संविधान का **पांचवा संशोधन** केवल इस बात की व्यवस्था करता है कि ''कानून की उचित प्रक्रिया के बिना किसी व्यक्ति को उसके जीवन, स्वतन्त्रता और सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा और न ही उचित मुआवजे के बिना सार्वजनिक उपयोग के लिए व्यक्तिगत सम्पत्ति को अभिग्रहण किया जा सकता है।'' **चौदहवां संशोधन** इसी प्रकार के प्रतिबन्ध राज्य सरकारों पर लगाता है। ये दोनों संशोधन संघ एवं राज्य सरकारों के सर्वोपरि अधिकार को स्वीकार करते हैं परन्तु ये उन पर प्रतिबन्ध भी लगाते हैं अर्थात् व्यक्तिगत सम्पत्ति को सार्वजनिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तथा कानून की उचित प्रक्रिया और उचित मुआवजे के आधार पर ही अभिग्रहण किया जा सकता है। संविधान उचित मुआवजे को परिभाषित नहीं करता। इसका निर्णय संबंधितपक्षों में बातचीत द्वारा अथवा असहमति होने पर उपयुक्त न्यायालय द्वारा किया जाता है।

प्रस्तावित संविधान के प्रति एक मुख्य विरोध यह था कि इसमें अधिकार-पत्र की व्यवस्था नहीं थी जो संघीय सत्ता के विरूद्ध जनता को नागरिक स्वतन्त्रताएँ प्रदान कर सके। संघवादियों ने संविधान में तदानुसार परिवर्तन करने का निर्णय लिया तो मैसाचूसेट्स तथा दूसरे राज्यों में उन्हें विजय प्राप्त हो सकी। 1791 में संविधान में दस संशोधन किए गए और यह अधिकार-पत्र संविधान के साथ संलग्न किया गया। यह प्रजातन्त्रात्मक विचारों वाले समूहों के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता था। सामाजिक समझौते के सिद्धान्त में विश्वास करते हुए इन लोगों ने इस बात पर जोर दिया कि सम्प्रभुता केवल जनता के पास रहती है और उसे छीना नहीं जा सकता। सरकार केवल उन्हीं शक्तियों का प्रयोग कर सकती है जो जनता द्वारा उन्हें सौंपी गई हैं। सरकार के कार्यों की सीमा बताना अनिवार्य था क्योंकि सरकार के दमनकारी बनने का खतरा सदैव रहता था।

अधिकार-पत्र अग्रेंजी और अमेरिकी अनुभवों पर आधारित था। इसकी महत्त्वपूर्ण धाराओं द्वारा कांग्रेस पर धर्म, भाषण और प्रेस की स्वतन्त्रता रोकने के लिए सीमा लगाई गई। यह घोषणा की गई कि किसी व्यक्ति को कानूनी प्रक्रिया के अतिरिक्त जीवन, सम्पत्ति और स्वतन्त्रता से वंचित नहीं किया जायगा।

भ्रष्टाचारी या स्वेच्छाचारी अधिकारियों के विरूद्ध जनता की रक्षा के लिए आवश्यक व्यवस्थाएँ की गयी। सरकार पर जनता का नियन्त्रण स्थापित करने के लिए ये स्वतन्त्रताएँ आवश्यक समझी गई।

अन्त में, संविधान को सफलता मिली। जब संविधान की स्वीकृति के बाद नई सरकार बनाई गई तो संघ-विरोधियों ने इसकी आलोचना करना छोड़ दिया। यह इसलिए हुआ क्योंकि संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति वाशिंगटन ने आत्मविश्वास की भावना को प्रेरित किया। उसने एक समर्थ प्रशासन प्रदान किया और सौभाग्य से इस समय सम्पन्नता की वृद्धि हो रही थी। अमेरिकियों की राजनीतिक परिपक्वता भी इस दृष्टि से महत्त्व रखती थी। अमेरिकी नागरिकों के स्वभाव एवं आदतों के कारण यह संविधान सफलता प्राप्त कर सका। अतीत के लम्बे इतिहास ने अमेरिकियों को सफल स्वशासन का प्रशिक्षण प्रदान किया। वे अपने विवादों को यथासम्भव स्वतन्त्र विचार और मतदान द्वारा तय करने के अभ्यस्त बने। विरोधी को अपने समान अधिकार देने और कानून के प्रति आदर भाव रखने की आदत डाली। 18 वीं शताब्दी अमेरिकी यह जानते थे कि स्वतन्त्र सरकार की सफलता प्रत्येक व्यक्तिगत नागरिक की बुद्धि और आत्म-नियन्त्रण पर निर्भर करती है।

11.11 सारांश

लगभग सौलहवीं शताब्दी के अन्त तक सभ्य संसार को अमेरिका के अस्तित्व का ज्ञान नहीं था। कोलम्बस ने इसकी खोज की कितने ही इंग्लैण्ड के लोग वहाँ जाकर बस गए। फिर अन्य देशों के लोग वहाँ पहुँचे, जिन्होंने वहाँ के उपलब्ध आर्थिक साधनों का उपयोग करके उस महाद्वीप को सम्पन्न तथा समृद्ध बनाया। अठारहवीं शताब्दी के चतुर्थ चरण में यह देश इंग्लैण्ड से राजनैतिक सम्बन्ध विच्छेद करके अलग व स्वतन्त्र देश बन गया, परन्तु इसने शेष संसार से सम्बन्ध कम रखा और अपने राजनैतिक विषयों में किसी अन्य देश को हस्तक्षेप नहीं करने दिया।

प्रथम विश्व युद्ध में अमेरिका ने मित्र-राष्ट्रों का साथ देकर जर्मनी को हराया। उसके बाद से अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में अमेरिका की रूचि बढ़ती ही जा रही है। अब ऐसा कोई अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न नहीं होता जिसको उत्पन्न करने में, उलझाने में या हल करने में अमेरिका का कोई हाथ न हो। अमेरिका की आर्थिक व व्यापारिक नीति संसार के अर्थ व व्यापार को प्रभावित करती है। अमेरिका की शासन प्रणाली की ओर सभी राष्ट्रों का ध्यान है। अमेरिकन जनता का विश्वास है कि मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है और भविष्य को कर्मठता में जीवन की गतिशीलता का रहस्य छुपा हुआ है। इसी कारण विश्व के देशों में अमेरिका का और विश्व के इतिहास में अमेरिकी इतिहास का विशिष्ट स्थान है।

11.12.अभ्यास प्रश्न

1 संयुक्त राज्य अमेरिका के इतिहास का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

2 अमेरिकी परिसंघ के निर्माण एवं उसकी असफलता के संबंधमें अपने विचार प्रकट कीजिए।

3 नागरिक अधिकार-पत्र की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

4 संविधान के मुख्य प्रावधान बताइए।

इकाई – 12

शांति समितियों की भूमिका

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 परिचय

12.2 विश्व शांति परिषद

12.2.1 वर्तमान संगठन

12.2.2 सदस्यता

12.2.3 क्रियाएँ

12.2.4 स्थान

12.2.5 अनुदान

12.3 स्थानीय शांति समितियां

12.3.1 परिभाषा

12.3.2 (Typology) टाइपोलोजी

12.3.3 LPC उद्देश्यों और कार्यनीतियां

12.3.4 LPCS की सीमाएं

12.4 अमेरिकी शांति समिति

12.4.1 बाह्य अंतरिक्ष का शांति के लिए उपयोग पर संयुक्त राष्ट्र समिति

12.5 जापान शांति समिति

12.6 शांति समितियों ककी भूमिका

12.7 सारांश

12.8 अभ्यास प्रश्न

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, हमें पता चला है -

- विश्व शांति परिषद के बारे में
- स्थानीय शांति समितियों के बारे में
- अमेरिकी और जापान शांति समितियों के बारे में
- शांति समितियों की भूमिका के बारे में

12.1 परिचय

शांति समितियां समुदाय के प्रतिनिधित्व संस्थानों होती है जो कि शांतिमंचों को विभिन्न सरकारी स्तर पर सुगम बनाती है और पारंपरिक विवाद समाधान तंत्र को एक साथ लाती है जिसमें बड़ें, महिला एवं धार्मिक नेता और आधुनिक तंत्र से जुड़े संघर्ष समाधान को एक साथ लाती है ।शांति समिति मॉडल ने एक लंबा सफर तय किया है और अब गैर चरवाहे समुदायों ने गले लगा लिया है और उसे विभिन्न स्तरों पर सांप्रदायिक तनाव (नकारात्मक), हिंसा और आंतरिक संघर्ष का सामना करना पड़ रहा है।

स्थानीय शांति समितियों (LPCS) अपने संविदा के भीतर संयुक्त समावेशी शांति और शांति के निर्माण की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने और सुविधाजनक बनाने के लिए उद्देश्य से जिला, नगर पालिका, शहर या गांव के स्तर पर गठित समितियों या संरचनाओं है

LPCS को कई देशों में पाया जा सकता है (और इन्हे अक्सर स्थानीय शांति समुदाय या शांति की जोन्स कहा जाता है). कई संघर्ष प्रभावित देशों में, LPCS, ने कई स्थानीय समुदायों पर अपना प्रभाव हिंसा के स्तर को नीचा करके, समुदाय की समस्याओं को हल करके और स्थानीय लोगो को शांति को बढ़ावा देने वाले बनाकर छोड़ा है वे पूरी तरह से नई पहल हो सकते है या अपनी जड़े पारंपरिक बड़ों की एक परिषद जैसे, LPCS शांति के लिए एक राष्ट्रीय बुनियादी ढांचे का हिस्सा हो सकता है अगर उन्हें राष्ट्रीय सरकार के एक जनादेश के साथ औपचारिक भूमिका देना चाहे. वह स्वतंत्र और स्थानीय समुदाय, के द्वारा संचालित किये जा सकते है जो कि औपचारिक रूप से राज्य के द्वारा पहचाने नहीं जा सकते किन्तु अनौपचारिक LPCS बन जाते है। अनौपचारिक LPCS स्थानीय या जिला सरकार के साथ अच्छे संबंध रख सकते है (एक राष्ट्रीय जनादेश की कमी होते हुए) या एक पूरी तरह से स्वतंत्र तरीके से बिना किसी सरकारी भागीदारी काम कर सकते है।कई देशों में इस तरह के समितियां है एक अपेक्षाकृत प्रभाव के साथ डा. कांगो, कोलंबिया और अफगानिस्तान जैसे देशों में सैकड़ों LPCS मौजूद है।

12.2 विश्व शांति परिषद

विश्व शांति परिषद (डब्ल्यूपीसी) जो सार्वभौमिक निरस्त्रीकरण, संप्रभुता और स्वतंत्रता और शांतिपूर्ण सह - अस्तित्व और साम्राज्यवाद, विनाश के हथियारों का सामूहिक और भेदभाव के सभी रूपों के खिलाफ अधिवक्ताओं, का एक अंतरराष्ट्रीय संगठन है। यह सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की दुनिया भर में शांति अभियानों को बढ़ावा देने वाली नीति और विश्व भर में संयुक्त राज्य अमेरिका की "warmongering" का विरोध करने के क्रम में 1950 में संस्थापित की गई थी। पहले राष्ट्रपति प्रख्यात भौतिक विज्ञानी फ्रेडरिक क्यूरी थे। यह 1968 से 1999 तक हेलसिंकी में स्थांतरित था और अब इसका मुख्यालय ग्रीस में कर दिया गया है।

12.2.1 वर्तमान संगठन

डब्ल्यूपीसी वर्तमान में अपने लक्ष्यों को साम्राज्यवादी युद्ध और संप्रभु देशों और राष्ट्रों के कब्जे, सामूहिक विनाश के सभी हथियारों के निषेध, विदेशी सैन्य ठिकानों को खत्म करने, प्रभावी अंतरराष्ट्रीय नियंत्रण के तहत सार्वभौमिक निरस्त्रीकरण, उपनिवेशवाद के सभी रूपों, नव उपनिवेशवाद के उन्मूलन के

खिलाफ कार्रवाई के रूप में , नस्लवाद, सेक्ससिंम और भेदभाव के अन्य रूपों, राष्ट्रों के आंतरिक मामलों में शांति, लोगों की संप्रभुता और स्वतंत्रता के हितों के प्रति सम्मान, शांति की स्थापना के लिए आवश्यक, राज्यों के अंध्रुनी मामलों में गैर हस्तक्षेपको, विभिन्न राजनीतिक प्रणालियों के बीच शांतिपूर्ण सह - अस्तित्व, राष्ट्रों के बीच अंतर के निपटारे में बल के बजाय वार्ता का प्रयोग की ओर केन्द्रित रखा है।

डब्ल्यूपीसी संयुक्त राष्ट्र में एक पंजीकृत गैर सरकारी संगठन है और गुट निरपेक्ष आंदोलन का मुख्य रूप से सह-साथ देता है। यह संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन(यूनेस्को), व्यापार और विकास (अंकटाड), संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन, संयुक्त राष्ट्र औद्योगिक विकास संगठन(यूनिडो), अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) और अन्य संयुक्त राष्ट्र के विशेष एजेंसियों, विशेष समिति और साथ सहयोग करता है। कहा जाता है कि यह सफलतापूर्वक उनके एजेंडा, चर्चा की शर्तें और उनके प्रस्तावों का झुकाव को प्रभावित करता है। यह अफ्रीकी संघ, अरब राज्य लीग और अन्य अंतर - सरकारी निकायों के साथ भी सहयोग करता है।

12.2.2 सदस्यता:

अपने मौजूदा नियमों के तहत, डब्ल्यूपीसी सदस्य राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संगठन से है जो इसके मुख्य सिद्धांतों और किसी भी उद्देश्यों के साथ है और सदस्यता शुल्क देते है। अन्य संगठन कार्यकारी समिति के विवेक पर मानद सदस्य बन सकते है।

12.2.3 गतिविधियां:

1980 के अंत तक, विश्व शांति परिषद की प्रमुख गतिविधि बड़े अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन करना था, जिनमें दुनिया के अधिकांश देशों के 2,000 से अधिक प्रतिनिधि प्रतिनिधित्व किया था। प्रतिनिधियों में से अधिकांश कम्युनिस्ट समर्थक संगठनों से थे और कुछ पर्यवेक्षक गुटनिरपेक्ष संगठनों से थे. डब्ल्यूपीसी सभा की बैठक भी होती थी, उच्चतम शासी निकाय. कांग्रेस और विधानसभाओं ने बयान जारी किये, अपील और प्रस्ताव रखे जो सामान्य शब्दों में विश्व शांति के लिए कहते थे और अमेरिका की हथियार नीति की निंदा, हमलें और सैन्य कार्रवाई की भी निंदा करते थे. डब्ल्यूपीसी विशेष रूप से पश्चिमी यूरोप(जो कि परमाणु हथियारों को रखने के लिए) में अमेरिकी सैन्य प्रतिष्ठानों की सीमावर्ती क्षेत्रों में नियुक्ति के खिलाफ प्रदर्शन और विरोध प्रदर्शन में शामिल था

18 मार्च 1950 को, डब्ल्यूपीसी ने विश्व शांति कांग्रेस की स्थायी समिति की बैठक में इसकी स्टॉकहोम अपील का शुभारंभ किया, परमाणु हथियारों के पूर्ण निषेध के लिए बना था। अभियान को लोकप्रिय समर्थन मिला, यूरोप में 560 करोड़ हस्ताक्षर एकत्रित हुए, सबसे अधिक समाजवादी देशों से फ्रांस में 10 लाख और 155 लाख हस्ताक्षर सोवियत संघ में- पूरी वयस्क आबादी थी. कई निर्गुट जिन्होनें खुद को डब्ल्यूपीसी से दूर रखा था ने अपने समर्थकों को अपील पर हस्ताक्षर नहीं करने की सलाह दी

जून 1975 में पूर्व और पश्चिम के बीच अमन की अवधि के दौरान डब्ल्यूपीसी ने एक दूसरी स्टॉकहोम अपील का शुभारंभ किया. "शांति और अमन की जीत का एक नया अंतरराष्ट्रीय जलवायु, नई उम्मीदें, नए आत्मविश्वास, लोगों के बीच नए आशावाद को लाया. 1980 के दशक में यूरोप में अमेरिका

मिसाइलों की तैनाती के खिलाफ इस का अभियान दो पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ नए दृष्टिकोण और शांति कूरियर. इसकी मौजूदा पत्रिका शांति दूत है।

12.2.4 स्थान:

डब्ल्यूपीसी पहले पेरिस में अपने कार्यालय की स्थापना की, लेकिन फ्रांसीसी सरकार द्वारा "पांचवां स्तंभ 'गतिविधियों में लिप्त होने का आरोप लगाया गया था और 1952 में निष्कासित कर दिया गया था. यह पहले परागुए गई उसके बाद 1954 में वियना के लिए. 1957 में इस पर ऑस्ट्रियाई सरकार द्वारा प्रतिबंध लगा दिया गया था. परागुए के लिए आमंत्रित किया गया, लेकिन वहां नहीं गई, कोई आधिकारिक मुख्यालय नहीं था, लेकिन शांति के लिए अंतरराष्ट्रीय संस्थान की आड़ में वियना में काम करना जारी रखा. 1968 में इसका नाम फिर से मान लिया गया और यह 1999 तक हेलसिंकी, फिनलैंड में रही। सन् 2000 में यह फिर से एथेंस, ग्रीस में स्थित हो गई।

12.2.5 अनुदान:

डब्ल्यूपीसी के अनुसार, अपने धन का 90 प्रतिशत सोवियत संघ से आया है, जिसने $ 49000000 देने का कहा है। इसकी मौजूदा आय सोवियत शांति समिति को दी गई 10 लाख डॉलर के भुगतान पर ब्याज के रूप से प्राप्त होनी मानी गई है।

12.3.3 स्थानीय शांति समितियां:

12.3.1 परिभाषा:

"स्थानीय शांति समितियां" या LPC इस अध्ययन में एक वर्गीय नाम के रूप में इस्तेमाल किया जाएगा। अभ्यास के तौर पर कई नामों का प्रयोग किया जाता है जैसे जिला शांति सलाहकार परिषद, जिला बहुदलीय सम्पर्क समिति, ग्राम शांति और विकास समिति, अंतर जातीय संबंध के लिए समिति आदि.

LPC की एक कार्यवाहिक परिभाषा यह है कि यह संयुक्त, समावेशी शांति बनाने और शांति बनाने प्रक्रियाओं को प्रोत्साहित करने और सुविधाजनक बनाने के लिए उद्देश्य से एक जिला, नगर पालिका, शहर या गांव के स्तर पर बनी एक समिति है। एक LPC अपने स्वभाव से समुदाय के विभिन्न वर्गों का समावेश है जो कि संघर्ष कर रहे हैं और अपने स्वयं के कॉनटेक्ट में शांति को बढ़ावा देने का कार्य कर रहे है। LPC'S की रणनीति के चरित्र का महत्व अपने संवाद, आपसी समझ को बढ़ावा देने के जोर पर, विश्वास बनाने की विशेषता पर, संघर्ष और संघर्ष के सभी पक्षों का समावेश कर संयुक्त कार्रवाई करने के लिए जो कि सुलह के उद्देश्य से हो है।

किस प्रकार परिभाषा के विभिन्न पहलुओं की पुष्टि की जाएगी. दो प्रारंभिक टिप्पणियों यहां दी गई है- सबसे पहले , शांति एक युद्ध विराम के समझौते के लिए है से या सहमति से शत्रुता का अंत करता है (Galtung 1975, बुट्रोस घाली 1992). LPCS की परिभाषा में शांति को सम्मिलित करने से स्थानीय स्तर पर शांति के लिए बातचीत करने की आवश्यकता को स्वीकार किया गया और जोर भी दिया गया है। स्थानीय स्तर पर शांति बनाने के लिए राष्ट्रीय शांति रूपरेखा के भीतर काम करने की आवशयकता होती है लेकिन यह स्थानीय समुदाय के लाभ में होता है कि वह अपनी शांति के लिए खुद बातचीत कर सकते है साथ ही राष्ट्रीय विकास एवं विशेष विन्यास, अनुभव और स्थानीय स्तर पर संघर्ष के इतिहास

को ले सकते है, शांति बनाने कि प्रक्रिया दो मुख्य कारको को उद्धित करती है - युद्ध या हिंसा में एक पतन को रोकना और आत्मनिर्भर– शांति. इसलिए यह ऐसे मामलों को संदर्भित करता है जैसे- आगे हिंसा की रोकथाम के रूप में, सामाजिक बेचैनी का प्रबंधन , शांतिपूर्ण शांति को तोड़ने की क्षमता और राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के प्रबंधन के जटिल और अक्सर कपटपूर्ण प्रक्रिया है विवादों से तनाव मुक्त रखना और सह – अस्तित्व सुनिश्चित करना. शांति बनाने की नीति राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित होती हो लेकिन ज्यादातर कड़ी मेहनत स्थानीय स्तर पर कि जाती है - अक्सर न्यूनतम क्षमता और संसाधनों के साथ परिभाषा पर दूसरी टिप्पणी यह है कि समिति को एक औपचारिक निर्णय लेने की संरचना के अर्थ में नहीं समझ कर, 'समूह में काम कर रहे' समिति की तरह समझना चाहिए

12.3.2 Typology :

LPC'S को दो मुख्य श्रेणियों में प्रतिष्ठित किया जा सकता है - पहली श्रेणी में वह LPC'S आते है जिने राष्ट्रीय संरचना या प्रक्रिया से जनादेश प्राप्त है। यह एक राष्ट्रीय शांति समझौते (जैसे दक्षिण अफ्रीका , मैसिडोनिया या उत्तरी आयरलैंड के रूप में) या एक राष्ट्रीय सांविधिक निकाय से जनादेश मिलने पर (जैसे मलावी निर्वाचन समिति या सिएरा लियोन राजनीतिक दलों के पंजीकरण आयोग के रूप में). राष्ट्रीय स्तर पर जनादेश प्राप्त LPC'S अपनी उन पार्टियों और निकायों के स्थानीय प्रतिनिधियों द्वारा सहयोग का लाभ उठाने के लिए अपनी क्षमता की विशेषता के लिए जाने जाते है जिन्होंने उनके निर्णय का समर्थन किया है। वे एक औपचारिक जनादेश होने से और किसी मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय प्रक्रिया का हिस्सा होने से लाभ उठाते है। उनका जनादेश संदर्भ से संदर्भ के लिए अलग हो सकता है और काफी सामान्य हो सकता है (" हिंसा को रोकने के लिए " या " सुलह को बढ़ावा देने के लिए "साउथ अफ्रीका का मामला) या विशिष्ट, उत्तरी आयरलैंड (Neyroud और Beckley 2001) में पुलिस पर फोकस के रूप में, या सिएरा लियोन और मलावी में चुनाव के दौरान हिंसा की रोकथाम के रूप में. इस श्रेणी में LPCS की रचना सामान्य रूप से राजनीतिक दलों, संबंधित सरकारी निकायों, सुरक्षा बलों और समाज के नागरिक शामिल है।

दूसरी श्रेणी के LPC'S नागरिक समाज की पहल द्वारा गठित किये गए है। इस तरह LPC'S , एक औपचारिक राष्ट्रीय जनादेश के अभाव में , अक्सर स्थानीय स्तर पर मदद की प्रक्रियाओं के उत्पाद होते है और इसलिए तथाकथित " बॉटम्स अप" दृष्टिकोण का अधिक उदाहरण है। उनकी संरचना में वे सामान्य रूप से एक मजबूत नागरिक समाज की उपस्थिति दर्शाते है। राजनीतिक पार्टियों , सरकारी और सुरक्षा सेवाओं स्थानीय स्तर पर प्रतिनिधियों की भागीदारी LPC'S की आकर्षित करने की क्षमता और स्थानीय स्तर पर व्यक्तिगत प्रतिनिधि को भाग लेने के लिए प्रेरित करती है। ये LPCS औपचारिक रूप से राष्ट्रीय जनादेश प्राप्त LPCS कि तुलना में उन प्रतिनिधियों कि रचना से प्रभावित होता है जो एक निजी जुनून और शान्ति स्थापना के लिए एक बड़ी हद तक जा सकते है बजाये ओपचारिक जनादेश से चयनित प्रतिनिधियों के. LPCS हिंसा रोकने और शांति बढाने के अधिक सामान्य उदेश्य (बुरुंडी, श्रीलंका और लाइबेरिया में) लेकिन किसे विशेष मुद्दे के ऊपर फोकस करने के लिए (जैसे केन्या में पशु rustling) के रूप में स्थापित किया जा सकता है। सिविल सोसायटी LPCS गैर सरकारी संगठनों पर

सदा ही प्रारंभिक सरलीकरण और चल रहे सैन्य और वित्तीय सहायता के लिए निर्भर रहते है। उदाहरण के लिए श्रीलंका में, LPCS कम से कम चार भागीदारों द्वारा वर्गीकृत थे

12.3.3 LPC उद्देश्यों और कार्यनीतियों:

LPCS के द्वारा व्यवहार में अपनाई गई मुख्य उद्देश्य और रणनीति ये है: –

1. **हिंसा में कमी** - LPCS ने हिंसा का स्तर कम और सुरक्षित समुदाय बनाने के लिए एक क्षमता सिद्ध की है संभवत: इस संबंध में सबसे नाटकीय उदाहरण क्रिस हानी की अप्रैल 1993 में हत्या के बाद LPCS द्वारा दक्षिण अफ्रीका में निभाई गई भूमिका है मुक्ति आंदोलन का सबसे करिश्माई और लोकप्रिय नेता. देश इस घटना की वजह से चाकू की नोक पर था. LPC'S के व्यापक रूप से उस स्थिति को रोकने के योगदान को देश भर में स्वीकार किया गया,LPC'S उनके स्वभाव से पूरी तरह हिंसा को रोकने के लिए काफी दुर्बल माना गया है। एक प्रक्रिया जिसको 'सॉफ्ट पावर' की वार्ता पर बनाया गया है और आपसी समस्या हल करने वाली बिगाड़ने वाले जो कि हिंसा का उपयोग करने के लिए निर्धारित हैं को रोक नहीं सकती. वे सबसे अधिक सफल रहे थे जब प्रत्याशित हिंसा की स्थिति से निपट रहे थे। जहाँ पर समय रहते पार्टियों को एक साथ लाना संभव था और उचित निरोधी व्यवस्था के लिए बातचीत करना संभव था। वे अफवाहें के प्रबंधन में प्रभावी रहे थे।

   2 **वार्ता** - "सामाजिक एकीकरण के भीतर एक केंद्रीय तंत्र - प्रक्रिया 'के रूप में बातचीत का महत्व तेजी से मान्यता ले रहा है और कार्यान्वित किया जा रहा है। वार्ता को ऐसी दवा या समस्या के रूप में अन्य संघर्ष परिवर्तन प्रक्रिया से अलग किया जाना चाहिए जो - सुलझाने और अपने आप में मूल्यवान है। इसका उद्देश्य साझा अर्थ को उजागर करना और बेहतर आपसी आवास और समझ को बढ़ावा देने का है, संरचित राष्ट्रीय वार्ता प्रक्रियाओं को उदाहरण के लिए लागु किया गया, उदाहरण के तोर पर : ग्वाटेमाला और नेपाल। हमारे वर्तमान प्रयोजन के लिए सवाल है कि क्या LPCS का मुल्य फैसिलिटेटर या स्थानीय बातचीत के स्थलों के रूप में से कौनसा है। वार्ता LPCS एक धारणा है जिस पर अधिक नहीं तो सारा काम निर्भर करता है।

3. **समस्या - समाधान तथा सामुदायिक निर्माण** - LPCS के प्रभाव के बारे में सबसे प्रेरणादायक कुछ रिपोर्ट उन एकताओं से आई है जो हिंसा से बिखर गए है। LPCS समुदायों में नाजुक शांति को खतरा पैदा करने वाले विवादों के समाधान को सुविधाजनक बनाने या मध्यस्थता करने की क्षमता रखते है। वे हिंसा की तबाही के बीच में सामुदायिक जीवन की कुछ झलक बहाल करने में सक्षम हैं . सफल संयुक्त समस्या - स्थानीय स्तर पर सुलझाने के निर्विवाद लचीलापन के मूल्य है। इसके अलावा, सामान्य राजनीतिक संस्कृति पर इसके सकारात्मक प्रभाव पर भी विचार किया जाना चाहिए. उदाहरण के लिए, दक्षिण अफ्रीका में ग्रामीण क्षेत्रों में LPCS मध्यस्थता और संयुक्त समस्या- सुलझाने की प्रक्रिया. इसने एक महत्वपूर्ण बदलाव निहित किया जो कि सत्तावादी शैलियों से निर्णय लेना से दूर है। मध्यस्थता या संयुक्त समस्या को सुलझाने के अन्य रूप में एक अंतर्निहित लोकतंत्रीकरण प्रभाव होता है क्योंकि वे कुछ "

समान अवसर " की स्थापना करते है जहाँ पार्टियों एक दूसरे के साथ समान (कम या ज्यादा) शर्तों पर व्यस्त हैं और एक समस्या को हल करने के लिए एक साथ काम करते है। यह सत्तावादी शासन के विरोधी थीसिस है। संघर्ष से निपटने में सफलता के लिए नई शिष्टाचार की प्रक्रिया,फलत: देश में लोकतंत्रीकरण प्रक्रिया में योगदान देती है।

4. **सामंजस्य** - कई LPCS अपना मुख्य उद्देश्य सामंजस्य मानती है। सामंजस्य हालांकि, एक बहुत ही जटिल विषय है, सामंजस्य " मानव स्थितिके सबसे बुरे अवस्था से संपर्क करना है , जीवन और रिश्तो के हटने पर मरम्मत के लिए प्रयास है," जहाँ शांति, न्याय, सच्चाई और दया को परस्पर एकीकृत और संतुलित करने की प्रक्रिया शामिल है।

   LPCS कई अप्रत्यक्ष तरीकों से सामंजस्य करने के लिए योगदान करते है। जब संचार सुविधा प्रदान की जाती है, तो हिंसा को रोका जा सकता है , रिश्ते मजबूत होते है और हैं और विशिष्ट विवादों का समाधान होता है, सामंजस्य का परम लक्ष्य पूरा हो जाता है। सामंजस्य एक राष्ट्रीय परियोजना है, जो कि अंततः राष्ट्रीय नीतियों पर निर्भर करती है जो संघर्ष को रूपांतरित कर देगा. स्थानीय स्तर पर सुगम सामंजस्य प्रक्रिया की निश्चित आवश्यकता है जैसा की पूर्वी तिमोर में प्रदर्शित किया गया है। इस बात के अधिक सबूत नहीं है कि LPCS सामंजस्य को एक संरचित और सुनियोजित तरीके से करने में लिप्त है लेकिन उनकी रचना और स्वभाव से वे ऐसी प्रक्रियाओं को घर करने में आदर्श साबित हो सकते है।

12.3.4 LPC'S की सीमाएं:

LPCS क्या कर सकते हैं उनकी विशिष्ट सीमाएं है। LPCS कि अनेको बार परिणाम प्राप्त करने में नाकाम रहने के लिए आलोचना की गई है जो की प्राप्त करना कभी भी उनके अधिकार में नहीं था। LPC'S ने किया है, बौजुद इसके की यह एक बहुत ही मुश्किल काम है और उन्हें उम्मीदों के अनुरूप अतिरिक्त भार द्वारा मदद नहीं कर रहे हैं,

1. सबसे पहले, LPCS के 'दांत' न होते है ना होने चाहिए. LPCS जबरन शांति लागू नहीं कर सकते. वे जबरन हिंसा नहीं रोक सकते. जब तक शांति के लिए नरम दृष्टिकोण के प्रभावी प्रयास हो रहे हैं वह तभी तक सफल है।
2. दूसरे, LPCS के लिए शांति समझौतों को लागू करना मुश्किल होगा यदि राष्ट्रीय स्तर पर ऐसा करने के लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी है तो, अगर प्रमुख राजनीतिक खिलाड़ियों या सुरक्षा / विद्रोही बल राष्ट्रीय शांति समझौते के प्रति प्रतिबद्धता की कमी रखते है। LPCS के सफल होने की उम्मीद नहीं की जा सकती।
3. तीसरा, LPCS संघर्ष के मूल कारणों का पता नहीं कर सकते हैं यदि वह कारण राष्ट्रीय संविधान कानून और नीतियों में स्थित हैं तो. LPCS को 'नकारात्मक शांति' को सुविधा प्रदान करने का दोषी माना जाता है और यह भी माना जाता है कि वो लक्षणों को सम्बोधित करते है कारणों को नहीं. LPCS अधिकतम स्थानीय नेताओं को अपने समुदाय के लिए क्षति को कम करने और विशिष्ट चुनौतियों से निपटने में अधिकतम सहयोग की अनुमति प्रदान कर देते है।

LPCS हालांकि, शांति की प्रकृति पर राष्ट्रीय बहस का निर्धारण और उसके लिए कौन सी नीतियों को लागू करने की आवश्यकता है का निर्णय नहीं कर सकते।

4. चौथे, LPCS स्थानीय सरकार या स्थानीय पुलिस के लिए विकल्प नहीं हो सकता. LPCS विवादों में मध्यस्थता और आम सहमति बनने के द्वारा और अधिक प्रभावी तरीके से स्थानीय सरकार को सुविधा दे सकता है, लेकिन बिना कोई जनादेश के वो कोई राजनीतिक और वित्तीय जिम्मेदारियों को नहीं मान सकते है। वे बेहतर समुदाय- पुलिस रिश्तों के लिए मदद कर सकते हैं - लेकिन वे ना तो है और ना ही पुलिस के लिए एक वैकल्पिक कमांड सेंटर बन सकते है। नेपाल में यह एक विशेष समस्या थी क्योंकि वहां मुख्य जिला अधिकारी और ग्राम विकास समिति के अधिकारियों के अलावा अन्य कोई स्थानीय सरकारी निकायों नहीं थे।

12.4 अमेरिकी शांति समिति

अमेरिकी शांति समिति शांति के लिए काकेशस में एक पहल है जो कि "उत्तरी अमेरिका में इकलौती निजी, गैर सरकारी संगठन है जो विशेष रूप से रूस चेचन युद्ध के शांतिपूर्ण समाधान के लिए समर्पित है। "फ्रीडम हाउस के अनुसार ACPC " सह कार्यकर्ताओं, पत्रकारों, विद्वानों और गैर सरकारी संगठनों के एक अंतरराष्ट्रीय नेटवर्क के साथ मानवाधिकार और कानून के शासन का समर्थन क्षेत्र में हिंसा की वृद्धि की प्रवृत्ति पर नजर रखने के लिए और उत्तरी काकेशस में शांति और स्थिरता को बढ़ावा देने के लिए तालमेल रखता है। अमेरिका लिबरल हॉक्स और गैर परिवर्तन विरोधी द्वारा 1999 में संस्थापित चेएच्निया के संघर्ष का इसतिमाल कर रूसी विरोधी एजेंडा , ACPC ने अंततः अपने नाम का नवीनीकरण किया और रूस और काकेशस के अन्य भागो, जिसमें इन्गुशेटिया,दागेस्तान, कबर्दिनो-बल्कारिया,कराची-चेर्केस्सिया, और नार्थ ओस्सेतिया में संघर्ष के उत्पन होने के बाद अपने फोकस का विस्तार किया।

2013 के शुरू में, समिति ने ध्यान आकर्षित किया जब अप्रैल 2013 में बोस्टन मैराथन में लिप्त संदिग्धों की पहचान प्रजातिये चेचनस के रूप में की गई हलाकि प्रारंभिक रिपोर्टों में संदिग्धों चेचेन राष्ट्रवादी मंशा से प्रेरित थे और ACPC की गतिविधियों नें कानून निर्माताओं के लिए नीति सिफारिशों के विकास और कार्यकर्ताओं, पत्रकारों और विद्वानों, सार्वजनिक शिक्षा कार्यक्रमों को शामिल किया है। यह कई गैर सरकारी नीति समूह और महत्वपूर्ण विचार करने वाले समूह के साथ काम करता है उनमें से कुछ है अमेरिकी उद्यम संस्थान और जेम्सटाउन फाउंडेशन। एक समय पर समिति एक साप्ताहिक ईमेल समाचार सेवा और समाचार पत्र वितरित करती थी ACPC की वेबसाइट पे एक नया समाचार संग्रह, काकेशस में अमेरिका की भूमिका से संबंधित नीति के कागजात, और संघर्ष की तस्वीरें, शैक्षिक पेपर और नक्शे समाविष्ट किये गए।

ACPC ने एक सुनियोजित रणनीति के तहत रूस को कमजोर करने के लिए चेचन विद्रोही आंदोलन का समर्थन किया और एक क्षेत्र जहाँ अमीर तेल, गैस और कठिन खनिज भंडार सहित विशाल, unexplolted प्राकृतिक संसाधनों का भंडार है, और उसकी भू राजनीतिक मूल्य बढ़ रही है, पर वहाँ अमेरिका के साथ बेहतर संबंधों को स्थापित करने के लिएहै।

ACPC क्षेत्र में विकास की निगरानी और सुरक्षा, स्थिरता और मानव अधिकार की स्थिति के लिए अपने प्रभाव का विशेषज्ञ विश्लेषण प्रदान करने के लिए समर्पित है। दो चेचन युद्ध के बाद और पूरे क्षेत्र में चल रही हिंसा का सामना करने में, ACPC अंतरराष्ट्रीय नीति निर्माण और एनजीओ समुदाय के लिए उत्तरी काकेशस से जानकारी जुटाने का प्रयास सुनिश्चित कर रही है।

12.4.1 बाह्य अंतरिक्ष के शांतिपूर्ण उपयोग पर संयुक्त राष्ट्र समिति: -

1958 में, अपना पहला कृत्रिम उपग्रह स्पुतनिक -1 के शुरू करने के बाद, शीघ्र ही संयुक्त राष्ट्र महासभा ने बाह्य अंतरिक्ष के शांतिपूर्ण उपयोग पर एक तदर्थ समिति की स्थापना की. साल बाद, महासभा द्वारा बाह्य अंतरिक्ष के शांतिपूर्ण उपयोग पर एक स्थायी समिति स्थापित की गई

1959 में, समिति में 24 सदस्य थे.उसके बाद से यह बढ़कर 74 सदस्यों की हो गई और संयुक्त राष्ट्र में सबसे बड़ा समितियों में से एक हो गई. राज्यों के अलावा अंतरराष्ट्रीय संगठनों दोनों अंतर सरकारी और गैर सरकारी संगठन को COPUOS और उसकी उप समितियों के साथ पर्यवेक्षक का दर्जा दिया गया। 2001 में, आम महासभा ने क्यूबा, मलेशिया, पेरू और कोरिया गणराज्य द्वारा एक आवर्ती आधार पर सीटों के बंटवारे की प्रथा समाप्त करने का फैसला लिया और चारों राज्य समिति के पूर्ण सदस्य बने,ये सदस्य हैं: - अल्बानिया, अल्जीरिया, अर्जेंटीना, आर्मेनिया, ऑस्ट्रेलिया, ऑस्ट्रिया, अजरबैजान, बेल्जियम, बेनिन, बोलीविया, ब्राजील, बुल्गारिया, बुर्किना फासो, कैमरून, कनाडा, चाड, चिली, चीन, कोलंबिया, कोस्टा रिका, क्यूबा, Czeeh गणराज्य, इक्वाडोर, मिस्र, फ्रांस, हंगरी, जर्मनी, ग्रीस, भारत, इंडोनेशिया, ईरान, इराक, इटली, जापान, जार्डन, कजाकिस्तान, केन्या, लेबनान, लीबिया, मलेशिया, Maxico, Mangolia, मोरक्को, नीदरलैंड, निकारागुआ, नाइजर, नाइजीरिया, पाकिस्तान, पेरू, फिलीपींस, पोलैंड, पुर्तगाल, कोरिया, रोमानिया, रूस, सऊदी अरब, सेनेगल, सियरा लियोन, स्लोवाकिया, दक्षिण अफ्रीका, स्पेन, सूडान, स्वीडन, स्विट्जरलैंड, सीरिया अरब गणराज्य, थाईलैंड, ट्यूनीशिया गणराज्य , तुर्की, ग्रेट ब्रिटेन और उत्तरी आयरलैंड के ब्रिटेन, अमेरिका, यूक्रेन, Uraguay, वेनजुयला और वियतनाम ,संयुक्त राज्य अमेरिका

12.5 जापान शांति समिति

जापान शांति समिति (जेपीसी) ने ओसाका में मीनू शहर में अपना राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें 260 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। चर्चा में जापान में 100 से अधिक अमेरिकी सैन्य ठिकानों और सुविधाओं के विरोध में देश भर में हर जगह सकल जड़ शांति आंदोलनों में वृद्धि , के साथ ही रक्षा और संविधान के युद्ध छोड़ने के एक अनुच्छेद को पुनर्जीवित करने के लिए संघर्ष किया गया और परमाणु हथियारों के उन्मूलन की मांग रखी।

एक विधि के अनुसार सरकार अपने "antipiracy" कानून के साथ आगे बड रही है ताकि सेल्फ डिफेंस बलों को दुनिया भर में अमेरिकी सैन्य अभियानों में हिस्सा लेने के लिए भेजा जा सके। बिल को अवरुद्ध करने पर आमादा जेपीसी कनेक्शन जनता के लिए जापान- अमेरिकी सुरक्षा संधि की खतरनाक भूमिका पर अध्ययन की बैठक में और विभिन्न अन्य अवसरों पर जोर देना चाहता है। सम्मेलन में परमाणु हथियारों के बिना एक दुनिया के लिए 350,000 हस्ताक्षर एकत्र करने का फैसला किया. जेपीसी ने

सफलतापूर्वक अपनी सदस्यता (18,000 के पार) और साथ ही ("शांति राजपत्र") जो हर दस दिनों में जारी होता और मासिक ("शांति आंदोलन') के ग्राहकों की संख्या में भी वृद्धि की है।

12.6 शांति समितियों की भूमिका

1. संघर्ष पूर्व चेतावनी और प्रतिक्रिया बढ़ाना।
2. शांति शिक्षा, शांति और अहिंसा की संस्कृति को बढ़ावा देना।
3. सुरक्षा और खुफिया समितियों और अन्य हितधारकों के साथ परामर्श करते हुए शांति समझौतों / सामाजिक ठेके के कार्यान्वयन की निगरानी
4. अवैध आग्नेयास्त्रों , सुरक्षा और सुरक्षा के उन्मूलन के लिए पहल की सहायता
5. उत्पाद प्रशासन और उन्हें आवंटित संसाधनों का लेखा सुनिश्चित करें
6. दस्तावेज़ और शांति प्रक्रिया और हस्तक्षेप का रिकॉर्ड रखना।
7. प्रशिक्षण , सामुदायिक संवाद, संवेदीकरण और जागरूकता को बढ़ाने की सुविधा।
8. अंतर - जिला और सीमा पार के संघर्ष का समाधान के लिए तंत्र सुझाए।
9. कार्यक्रमों , गतिविधियों के क्रियान्वयन के लिए संसाधन जुटाए।
10. सौहार्दपूर्ण रिश्तों को बढ़ाने के लिए अन्य शांति रूपों के साथ नेटवर्क करे।
11. शांति और राष्ट्र निर्माण प्रोग्रामर पर नजर रखे, मूल्यांकन करे और रिपोर्ट दे।
12. शांति के निर्माण और संघर्ष के प्रबंधन पर राष्ट्रीय नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक सभी अन्य कार्य करे।

12.7 सारांश

शांति समितियां समुदाय के प्रतिनिधित्व संस्थानों होती है जो कि शांति मंचों को विभिन्न सरकारी स्तर पर सुगम बनाती है और पारंपरिक विवाद समाधान तंत्र को एक साथ लाती है जिसमें बड़ें, महिला एवं धार्मिक नेता और आधुनिक तंत्र से जुड़े संघर्ष समाधान को एक साथ लाती है ।शांति समिति मॉडल ने एक लंबा सफर तय किया है और अब गैर चरवाहे समुदायों ने गले लगा लिया है और उसे विभिन्न स्तरों पर सांप्रदायिक तनाव (नकारात्मक), हिंसा और आंतरिक संघर्ष का सामना करना पड़ रहा है

12.8 अभ्यास प्रशन

1. विश्व शांति परिषद (डब्ल्यूपीसी) का वर्णन कीजिए।
2. स्थानीय शांति समितियों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालें।
3. अमेरिकी और जापानी शांति समितियों का परिचय दे।
4. शांति समितियों की भूमिका को बताएँ।

इकाई-13

शांति सेना- अर्थ एवं प्रकृति

इकाई की रूपरेखा

13.1- उद्देश्य

13.2- प्रस्तावना

13.3- शांति सेना- इतिहास

13.4 शांति सेना- अर्थ एवं प्रकृति

13.4.1 सत्याग्रह एवं शांति सेना

13.4.2 शांति व्यवस्था में शांति सेना की भूमिका

13.4.3 संघर्ष के समाधान एवं शांति सेना

13.5 सारांश

13.6. अभ्यास प्रश्न

13.7 संदर्भ ग्रन्थ

13.1- उद्देश्य

शांति सेना का अर्थ शांतिपूर्ण तरीके से कार्य करने वाला समूह है। शांति सेना का विचार व्यक्ति या समूह के संघर्षो के समाधान के लिए प्रयुक्त किया गया। शांति सेना का कार्य सामुदायिक सेवा का है। इसके अन्तर्गत खाद्य सामग्री का विवरण आपतकालीन चिक्तिसा सेवा, गुमशुदा बच्चों की तलाश व साम्प्रदायिक दंगों में शांति एवं व्यवस्था, चोरी, बलात्कार, उत्पीड़न आदि के लिए मदद की जाती है।

13.2- प्रस्तावना

शांति सेना का निर्माण भारत में गांधीजी के अनुयायियों द्वारा किया गया है। जो साम्प्रदायिक हिंसा के विरूद्ध कार्य करने वाले समर्पित स्वयं सेवकों की सेना है। जिसमें समुदाय से ही कुछ प्रशिक्षित स्वयंसेवको को समुदाय में कानून व्यवस्था एवं शांति स्थापना करने के लिए लगाया जाता है।

13.3- शांति सेना का इतिहास

जनवारी 1948 में गांधीजी ने भविष्य में देश में शांति व्यवस्था कायम रखने के लिए एक सभा को आयोजन करने का फैसला किया। उस सभा का समय फरवरी 1948 निर्धारित किया गया। परंतु इस सबके पहले ही गांधीजी की हत्या कर दी गई। तब मार्च के मध्य में यह सभा आयोजित की गई जिसमें जवाहरलाल नेहरू, बिनोबा भावे, जयप्रकाश, नारायण , काका साहेब कालेकर, और जे.बी. कृपलानी सहित पांच सौ लोगों ने भाग लिया। इसकी अध्यक्षता कांग्रेस के अध्यक्ष डॉ राजेन्द्र प्रसाद ने की।

इस सभा को संबोधित करते हुए डॉ राजेन्द्र प्रसाद जी ने कहा '' हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि 'शांति सेना दल' पुलिस बल की तरह नहीं है।, अपितु यह स्वयं सेवकों का एक ऐसा समूह है, जो दंगो एवं तनाव को दूर करने के लिए जनता के बीच रहकर शांति एवं सद्भाव के वातावरण को बनाऐगा यह सेवा दल बिना किसी हथियार के अहिंसात्मक तरीकों से अपने लक्ष्य को प्राप्त करेगा। ''

इस सभा में यह विचार पारित किया गया कि बिना किसी साम्प्रदायिक भेदभाव के, सत्य के आधार पर अहिंसात्मक तरीके से साम्प्रदायिकता के खिलाफ युद्ध करना शांति सेना का उद्देश्य है।

इस सभा के बाद गांधीजी के अनुयायी काका साहेब कालेकर, जी रामचन्द्रन और श्री राम नारायण ने वर्धा में शांति सेना की एक इकाई खोलने की कोशिश की। मार्च 1950 में बिनोबा भावे की अध्यक्षता में 75 सेवक सेवाग्राम में मिले तथा शांति सेना के गठन के बारे में मंत्रणा की। इस मत्रंणा में शांति सेना की दो इकाईयों को गठित करने की बात सामने आई। पहली वर्धा में और दूसरी सेवाग्राम में।

1950 में संविधान के लागू होने के साथ ही शांति सेना ने अपना कार्य प्रारंभ कर दिया। इसके सदस्य 18 वर्ष से बड़े कोई भी स्त्री पुरूष हो सकते है जिनको शारीरिक एवं मानसिक प्रशिक्षण दिया जाता है।

शांति सेना के द्वितीय वार्षिक सर्वोदय सम्मेलन में विनोबा भावे नहीं आ पाये पर वे चाहते थे कि शांति सैनिकों को राष्ट्र के स्तर पर कार्यरत न होकर स्थानीय स्तर पर कार्यरत होना चाहिए तभी वे अपने उद्देश्य को प्राप्त सकेंगे। परन्तु इसके साथ ही बिनोबा भावे भूदान कार्यक्रम से भी जुड़ गए जो ग्राम दान तक चला। इस प्रकार शांति सेना पूर्णत: विकसित नहीं हो पाई। केरल की यात्रा के दौरान 1957 में एक बार फिर भावे शांति सेना के प्रति अपने झुकाव को व्यक्त करते हुए शांति सेना के नेटवर्क को सम्पूर्ण देश में फैलाने का उत्तरायित्व लेते है।

विनोबा भावे ने सर्वोदय पात्र की अवधारणा भी दी जिसमें प्रत्येक घर का सबसे छोटा सदस्य शांति सैनिक को एक मुट्ठी अनाज सर्वोदय पात्र में देगा और यह अनाज शांति सैनिक समुदाय के वंचित वर्ग को प्रदान करेगा। इसका उद्देश्य समुदाय के प्रत्येक सदस्य को समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य को पहचानना सीखाना तथा वंचितों एवं समृद्ध लोगों के बीच एक पुल बनाना था।

बंबई में महिलाओं ने भी विनोबा भावे सेय एक ऐसे संगठन को गठित करने का आग्रह किया जिसकें द्वारा वे भी समुदाय के लिए कुछ कर सके। विनोबा भावे भी यह मानते थे कि शांति के कार्यो के लिए महिलाएं सक्षम है। इस प्रकार महिला शांति सैनिको को भी तैयार किया गया।

पठानकोट में 24 सितंबर 1959 को विनोबा भावे ने अखिल भारतीय शांति सेना मंडल का निर्माण किया। इस प्रकार 1960 में शांति सेना सक्रिय रूप से संगठित हो गयी। इसके कार्यो में 1962 के भारत चीन युद्ध के दौरान शांति सैनिकों द्वारा आंतरिक शांति स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य भी शामिल है।

1961 में अखिल भारतीय सर्व सेवा संघ के द्वारा शांति विद्यालय को प्रांरभ किया गया। वाराणसी में इसकी एक शाखा में पुरूषों एवं इन्दौर की शाखा में स्त्रियों को प्रशिक्षण दिया जाने लगा। इसमें रोज तीन चार घण्टे क्षेत्रीय सर्वेक्षण किया जाता था ताकि तनाव के कारणों का पता लगाया जा सकें। इसके अलावा समूह चर्चा की जाती है जिसमें साम्प्रदायिक दंगो, बाल मजदूरी, छात्रों में आत्म अनुशासन

आदि विषयों को उठाया जाता है। यह दुनिया का पहला प्रशिक्षण क्रेन्द्र था, जहाँ शांति के लिए स्वयं सेवकों को प्रशिक्षित किया जाने लगा।

शांति सेना के द्वारा 1962 में किशोर शांति दल को संगठित किया गया तथा किशोरों को शांति सेना की मूलभूत शिक्षा दी जाती थी आगे चलकर स्नात्तक स्तर के युवाओं के लिए 1969 में नारायण देसाई द्वारा भारतीय तरूण शांति सेना की स्थापना की। इसका उद्देश्य युवाओं को जोड़ना तथा देश एवं मानवता के प्रति जागरूक व जिम्मेदार बनाना है। इस प्रकार तरूण शांति सेना में 1973 तक 2000 सदस्य हो गए।

विनोबा भावे द्वारा संचालित यह समूह अब दो समूहों में विभाजित हो गया-

1. पहला समूह विनोबा भावे द्वारा स्थापित किया गया जिसमें समाज ने शांति व्यवस्था एवं रचनात्मक कार्यो पर जोर दिया।
3. दूसर समूह जयनारायण प्रकाश द्वारा विकसित किया गया जिसमें राजनीतिक मंशा अधिक दिखाई देती है।

   1970 में जयनारायण आंदोलन से हजारों युवा जुड़ गए। 1975 में जे.पी ने छात्र युवा संघर्ष वाहिनी का निर्माण किया जिसका नारा था शांतिपूर्ण एवं शुद्ध तरीके से सम्पूर्ण समाधान। 1970 के बाद विनोबा शांति सेना के सक्रिय सदस्य रहे तथा उन्होने अपनी सारी ऊर्जा भूदान कार्यक्रमों में लगा दी। दूसरी ओर 1971 में इन्दिरा गांधी के प्रधानमंत्री बनने पर जयप्रकाश नारायण उनके प्रमुख आलोचकों में शुमार हो गए तथा राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे। इस बात को लेकर 1975 के मध्य तक जे.पी. एवं विनोबा भावे में टकराव के कारण शांति सेना समाप्त होने के कगार पर आ गयी तथा उसकी स्थिति ऐसी हो गयी जैसे सैनिक बच गए पर सेना और सेनापति नहीं रहे।

13.4 शांति सेना अर्थ एवं प्रकृति

महात्मा गांधी ने साम्प्रदायिक दंगो एवं आंतरिक तनाव की स्थिति से निपटने के लिए शांति सेना नामक अस्त्र को प्रस्तुत किया। यह अवधारणा दो शब्दों से मिलकर बनी है। शांति जिसका अर्थ है 'चित की स्वस्थता' तथा सेना का अर्थ है ''आराधना करने वाला'' से बना है। इस प्रकार शांति सेना का अर्थ है बिना किसी स्वार्थ के शुद्ध भाव से लोगों की सेवा करना।

गांधीजी चाहते थे कि स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक शक्ति को प्राप्त कर लोग वंचितों एवं गरीबों को भूल न जाए। वैसे भी गांधीजी व्यक्ति एवं समाज को राज्य से अधिक महत्व देते थे। इसी कारण वे पुलिस बल एवं अन्य प्रशासनिक इकाईयों के स्थान पर समुदाय आधारित व्यवस्था को पंसद करते थे। शांति सेना की अवधारणा भी समुदाय के ही कुछ लोगों को प्रशिक्षित कर समुदाय में फैली अव्यवस्थाओं एवं समस्याओं को दूर करने से है गांधीजी के अनुसार स्वयं अपनी समस्याओं को दूर करने तथा शांति बनाए रखने से ही सर्वोदय समाज का निर्माण हो सकता है।

शांति सेना गांधीवादी आदर्शो पर आधारित है। शांति सेना में सत्याग्रह, अहिंसा एवं सत्य पर अत्यधिक बल दिया गया।

13.4.1 सत्याग्रह और शांति सेना- सत्याग्रह बुराई के प्रतिरोध का एक नवीन मार्ग जो गांधीजी ने खोजा था सत्य के प्रति आग्रह को सत्याग्रह कहा जाता है। स्वयं गांधीजी के शब्दों में '' अपने विरोधियों को दुखी बनाने के बजाय स्वयं अपने पर दुख डालकर सत्य की विजय प्राप्त करना ही सत्याग्रह है।''

गांधीजी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी विनोबा भावे ने शांति का आधार सत्याग्रह को माना है उनके अनुसार सत्याग्रह हर परिस्थिति में अहिंसात्मक होता है। तथा इसमें शुद्धतम आत्मबल का प्रयोग होता है। यह एकमात्र ऐसा अस्त्र है जिसमें बुराई एवं अन्याय का प्रतिरोध होता है। उन्होनें शांति सैनिक को सदैव सत्याग्रह पर चलने को कहा क्योंकि सत्याग्रह से व्यक्ति को आत्म बल मिलता है तथा किसी भी संघर्ष में भले ही सत्याग्रही की जान चली जाए पर वह अंत में विरोधी को सत्य के दर्शन करा ही देता है।

शांति सेना सत्याग्रह की राह पर चलते हुए अहिसांत्मक तरीको से समाज में साम्प्रदायिक दंगो तथा अन्य तनावों एवं आपात स्थितियों का सामना करती है चूंकि हिंसा को हिंसा से नहीं रोका जा सकता और न ही कठिन परिस्थितियों में धैर्य को छोड़ा जा सकता है। इस प्रकार का बल एक सत्याग्रही के पास ही हो सकता है इसलिए विनोबा भावे ने शांति सेना में शामिल सभी व्यक्तियों को गांधी दर्शन विशेषत: सत्याग्रह का अध्ययन करने की सलाह दी थी। इस प्रकार शांति सेना सत्याग्रह की अवधारणा पर आधारित है।

13.4.2 शांति स्थापना में शांति सेना की भूमिका - विनोबा भावे ने प्रारंभ से ही शांति सेना को इसी आधार पर विकसित करने पर जोर दिया। उनका मानना था कि शांति सैनिक समुदाय से ही लिया गया कोई व्यक्ति होना चाहिए जिसकी सत्याग्रह में गहरी आस्था हो। समुदाय से लिए व्यक्ति पर समुदाय का विश्वास जल्दी से बैठ जाता है। एवं वे उसकी बातों को सुनकर मान लेते है। अत: शांति सेना का विकास स्थानीय आधार पर होना चाहिए।

शांति सैनिक को अपने क्षेत्र के बारे में सम्पूर्ण जानकारी होना चाहिए तथा उस क्षेत्र में शांति स्थापना करने में अपनी जान भी चली जाए तो उसे परवाह नहीं करना चाहिए।

शांति सेना द्वारा शांति स्थापित करने के लिए शांति सैनिक सर्वप्रथम लोगों के हृदय से साम्प्रदायिक सोच को बदलने की कोशिश करता है। तथा जनता को सामाजिक बुराईयों के प्रति जागरूक करता है। समाज में समानता लाने के लिए भू-दान एवं ग्रामदान कार्यक्रम चलाए गए जिसका अर्थ था जमीन के बड़े मालिकों के हृदय को परिवर्तित कर जमीन को वंचितों को दान देना। इसका दूरगामी उद्देश्य यह था कि जब समाज में समानता एवं भाईचारे की भावना होगी तो तनाव एवं संघर्ष की स्थिति उत्पन्न ही नहीं होगी।

इस प्रकार आपात्तकालीन स्थिति जैसे साम्प्रदायिक दंगे, तनाव, आपसी संघर्ष, शरणार्थियों को मदद, चिक्तिसयी सुविधा, आदि में शांति सेना सक्रिय रूप से स्वयं सेवकों के एक समूह के रूप में कार्य करती है। वहीं सामान्य स्थितियों में रचनात्मक कार्यो द्वारा समाज एवं देश की सेवा करती है।

13.4. शांति सेना एवं संघर्ष का समाधान

शांति सेना विविध स्तरों एवं विभिन्न प्रकार से संघर्ष के रोकथाम का कार्य करती है-

1. सत्य की ताकत से समुदाय के दृष्टिकोण को परिवर्तित करना।
2. नि:स्वार्थ सेवा एवं सत्याग्रह के माध्यम से समुदाय के लोगों के हृदय परिवर्तन करना।
3. नैतिक रूप से समुदाय को शक्तिशाली बनाना।
4. परस्पर विरोधी समूहों के बीच बातचीत करवाना।
5. मौखिक रूप से दबाव डालना।
6. तनाव एवं संघर्ष के कारणों का अध्ययन करना।
7. सत्याग्रह की अवधारणा और तकनीक का संघर्ष के समाधान के रूप में अध्ययन करना।
8. शांति सेना की स्थानीय टुकड़ियों को तैयार करना।
9. समुदाय में आपसी समझ एवं प्यार बनाए रखने के लिए सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करना।
10. समुदाय के सभी व्यक्तियों में सद्भाव एवं सम्पर्क बनाने की कोशिश करना
11. गरीबों एवं बेसहाराओं की मदद के लिए समुदाय को एक जुट करना।
12. सदैव स्वार्थरहित घृणा रहित, सामाजिक सेवा, क्षमाशीलता एवं सभी के प्रति एवं सद्भाव के गुणों से स्वयं को सुसज्जित रखना।

13.5 सारांश

शांति सेना देश में आतंरिक शांति व्यवस्था स्थापित करने का एक मार्ग है जो साम्प्रदायिक दंगों एवं तनाव के समाधान का निहत्था साधन है। जिसके बल पर महाराष्ट्र, कर्नाटक, आसाम एवं चबंल के साथ ही 1965 में गुजरात के बड़ौदा और अहमदाबाद के दगों को भी सर्वोदय कार्यकर्तायों ने पद यात्रा के द्वारा जन चेतना फैलाकर शांत किया। इस प्रकार अहिंसक एवं सर्वोतय राज्य के लिए शांति सेना एक अचूक अस्त्र साबित हुई है।

13.6 अभ्यास प्रश्न

1 शांति सेना का अर्थ बताते हुए उनके कार्यो को समझाइए।

2 शांति सेना पर गांधी दर्शन के प्रभाव को समझाइए।

13.7 संदर्भ ग्रन्थ

1 Gandl peace Army : The Shantl Sena and Unarmed Peacekeeping - Thomas weber

2- Soldler of Peace- Narayan Desal and Shantl Sena the Peace Army- Mark Shepard

इकाई - 14

गांधी, सुरक्षा और पुलिस

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 गांधी का शान्तिवाद
14.3 गांधी की मूल मान्यतायें
14.4 आस्तिकवादी सुरक्षा
14.5 हिंसा जनित असुरक्षा
14.6 स्वयं सेवक पुलिस
14.7 कानून और व्यवस्था का औपनिवेशिक दर्शन
14.8 पुलिस बल से पुलिस सेवा की ओर
14.9 विकास की असुरक्षा
14.10 राज्य का आधार बल नहीं हो सकता
14.11 शासक, शासित और पुलिस संकटों का संकट
14.12 सारांश
14.13 अभ्यास प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

विचारों की दुनिया में मोहनदास कर्मचन्द गांधी को एक उत्तर आधुनिक (Post Modern) विचारक माना जाता है। भारत के स्वाधीनता संघर्ष के एक सक्रिय राजनेता होने के कारण महात्मा गांधी एक महात्मा के रूप में अधिक विख्यात है किन्तु उनके विचारों के संसार में मनुष्य की सुरक्षा, स्वतन्त्रता और विकास कैसा होना चाहिए इसे लोग खण्डित रूप में अधिक जानते हैं। गांधी के भक्त उन्हें एक देवता की तरह पूज्यनीय मान कर उनके हर विचार को श्रद्धा के साथ देखते हैं, दूसरी ओर उनके आलोचकों का एक ऐसा समूह भी है जो उनकी मूल प्रस्थानाओं से मति के कारण उनके दर्शन को प्रयोग के योग्य भी नहीं मानता। एक दार्शनिक अराजकता वादी (Philosophical) और शान्तिवादी (Pacfist) होने के कारण गांधी गोडविन टालस्टाय और बैकूनिन के अधिक निकट है और पुलिस तथा सेना के विषय में उनके विचार एक समग्र दर्शन के संदर्भ में विवेचना चाहते है। उन्होंने बार-बार कहा है कि अहिंसक राज्य का अर्थ यह नहीं है 'सेना' ओर पुलिस को समाप्त कर दिया जावेगा पर उनका यह रूप एक आदर्श राज्य स्वीकार नहीं कर सकता जो सदियों की विकृति के कारण बन गया है।

14.2 गांधी का शान्तिवाद

जो लोग गांधी का एकवाद की विचारधारा में बांधना चाहते है उन्हं यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि गांधी के पास कोई नया या मौलिक विचार नहीं है। शान्तिवादी दर्शन पूरे संसार में अत्यन्त प्राचीन है और गांधी उसे परिस्थिति के अनुसार पुनर्जीवित करना चाहते है। टालस्टाय, टोमो टोलाँ, पादरी होम्स आदि के साथ पत्र व्यवहारों में गांधी की यह अराजकतावादी दृष्टि स्पष्ट हुई है किन्तु उनके मुंह में शब्द डालकर यह कहना कि गांधी आज जिन्दा होते तो भारतीय पुलिस को समाप्त करने के वकालत करते, सही नहीं होगा। गांधीवाद एक जीवन्त दर्शन है और गांधी ने अपने आश्रमों में सब तरह के प्रयोग किये थे। अपराधियों को सुधारा था और अपने व्यवसाय से वे स्वयं एक सफल वकील थे, जिनका पुलिस से घनिष्ट सम्बन्ध भी रहा।

जो लोग गांधी को उत्तर आधुनिकता का विचारक मानते है, उनका कहना होगा कि सभ्यता की जो समस्यायें व्यक्ति ने विज्ञान के कारण पैदा कर ली है उन्हें सुलझाने से अधिक श्रेष्ठकर यह होगा कि विज्ञान के इस राक्षसी स्वरूप से ही बचा जायें। क्रॉपोटकि की तरह वे यह कहना चाहेंगे कि ''यह मंत्री घृशित कार्य इस लिए करता है क्यों यह मंत्री है।'' व्यक्ति को यदि हिंसा और असत्य से दूर रखा जा सकें जो सुधार के नाम पर समाज को बिगाड़ती है। पुलिस व्यक्ति को समाज में सुरक्षा देने के लिए है किन्तु पुलिस के बल और हिंसा के कारण अपराध वैसे ही जन्म लेते है जैसे गलत या ज्यादा दवाओं के सेवन से उपचार जनित रोग (Doctor Made Diseases) पैदा होते हैं। प्राकृतिक शरीर स्वस्थ होता है। इसी प्रकार प्राकृतिक विकास की स्थिति मनुष्य को सुरक्षा देती है। हिंसा, विग्रह, अपराध मनुष्य की प्रकृति नहीं है किन्तु इन्हें घटाने की चिन्ता ने मनुष्य के आचरण को शंकालू, लोभी, क्रोधी और क्रूर बना दिया है। अपराधियों को पकड़ते-पकड़ते पुलिसवाला भले नागरिकों को भी अपराधी समझने लगता है और समाज पूरी पुलिस को ही संगठित अपराधियों का समूह मानने लग जाता है।

14.3 गांधी की मूल मान्यतायें

गांधी जीवन, समाज और राज्य के प्रति एक समग्र दृष्टि रखते है। उनके सारे विचार तीन मूल मान्यताओं पर आधारित है :-

(1) मनुष्य मूलत: एक नेक और सद्भावी प्राणी है। अपवादों को छोड़ दिया जायें तो राक्षसी और तामसी वृत्तियों की अपेक्षा मनुष्य में सद्भाव, सहयोग, दया, करूणा, त्याग, प्रेम अधिक मात्रा में मिलता है जो उसके पशुओं से ऊपर उठाकर मनुष्य बनने की क्षमता देता है।

(2) मनुष्य कितना भी हिंसक या पशु बन जायें उसमें पश्चाताप की एक वृत्ति है जिससे उसे सुधारा जा सकता है। पशु भी सरकस में अपनी प्रकृत्ति के अनुसार आचरण नहीं करते। यदि परिस्थितियाँ अनुकूल आदतों का सृजन करें तो मनुष्य का हृदय परिवर्तन हो सकता है और यह एक शुभ लक्षण है जो आशावादी बनाता है।

(3) सभ्यता के विकास में मनुष्य की सद्वृत्तियों का योगदान है। यदि मनुष्य सहयोग का योगदान हे। यदि मनुष्य सहयोग और प्रेम से रहे तो वह बिना भौतिक विकास के भी शान्ति प्राप्त कर सकता है जबकि लोभ, हिंसा और संग्रह से वह सुख और शान्ति दोनों को खोता जा रहा है।

गांधी की इस दृष्टि को पूर्व पश्चिम बतलाकर बहुत से विवाद खड़े होते रहते है। अपने को आध्यात्मवादी बतलाने वाले हम 'सुई की नोंक' के बराबर जमीन के लिए महाभारत लड़ते आये हैं। पश्चित में शान्तिवादी इसाई युद्ध को अपराध और साम्राज्यवाद को अनैतिक कहते आये है पर स्थिति दोनों ओर नहीं बदलती। गांधी एक शान्तिवादी अहिंसक विचारधारा का प्रतिनिधि है और सुरक्षा और पुलिस के विषय में गांधी के विचार इसी संदर्भ में समझे जाने चाहिए।

14.4 आस्तिकवादी सुरक्षा

गांधी दर्शन ईश्वर में विश्वास करता है। ईश्वर सत्य है और सत्य ही ईश्वर है यह आस्तिकता व्यक्ति को सुरक्षा का भाव देती है। गांधी धार्मिक दृष्टि से देवता और अवतारों की पूजा नहीं करते, किन्तु जो इस संसार में आया है उसका यहाँ से जाना एक ध्रुव सत्य है। यह ईश्वर की इच्छा है। इसे स्वीकार करते ही मनुष्य को लगता है कि वह सुरक्षित है। उसे अपनी सुरक्षा के प्रयत्न करने चाहिए किन्तु यह सारी सुरक्ष ईश्वर की इच्छा है जिसे आप बदल नहीं सकते। जब उन्हें अपनी प्रार्थनाओं, सभाओं में हिंसा का संकट दिखलाई देने लगा तो उन्होंने विभाजन के खून खच्चर के बीच भी वी.आई.पी. सुरक्षा लेने से इन्कार कर दिया। उनका उत्तर था इन्सान गलतियाँ कर रहा है, इसे नौका खाली और मुल्तान में जाकर समझावो। अपनी सुरक्षा की चिन्ता से दूसरों की सुरक्षा नहीं होती। राजनीति में से हिंसा घटावो सुरक्षा अपने आप आ जायेगी। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि शासक बिना सुरक्षा के घूमे। अपनी सुरक्षा और समाज की सुरक्षा, सरकार की सुरक्षा से भिन्न है। गांधी शासक नहीं थे, इसलिए उन्हें मंत्रियों जैसी सुरक्षा की आवश्यकता नहीं थी। उनका जीवन अमूल्य था पर उसे दांव पर लगाकर भी अपने सिद्धान्त की रक्षा करना गांधी की वह वैचारिक सुरक्षा भी जिसमें आत्म रक्षा गौण हो जाती है।

इसके विपरीत अंग्रेज विचारक थामस हाब्स एक नास्तिक चिन्तक है। उसने लिवायथों में लिखा है कि "Site is a midless Strengtht that caethe in death." गांधी के विपरीत हाब्स जीवन को एक निर्मम संघर्ष मानता है। वह ईश्वर की देन नहीं है, इस संघर्ष की प्राकृतिक अवस्था में व्यक्ति भीषण शक्ति संघर्ष में उलझा हुवा है। वह Nasty, British और Poor जिन्दगी जी रहा था और राजा को सारी शक्ति सौंपने में उसे सुरक्षा महसूस हुई। गांधी का व्यक्ति दुर्बल और असहाय नहीं है। उसे ईश्वर ने अनन्त क्षमतायें दी है। वह प्रयास कर देवत्व प्राप्त कर सकता है। अत: वह हाब्स के व्यक्ति की तरह असुरक्षित और भयभीत नहीं है। सुरक्षा के लिए गांधी में पुलिस और समाज की अपेक्षा ईश्वर का विश्वास अधिक आवश्यक है। कमजोर व्यक्ति जिनमें आत्मबल नहीं है राजनीति में न आयें क्योंकि वे सदैव असुरक्षित रहने पर समाज और राज्य को भी कमजोर बना देंगे।

अहिंसक प्रतिकार और सुरक्षा

सुरक्षा के लिए पुलिस बल आवश्यक और उपयोगी है, इस पर गांधी को कोई आपत्ति नहीं होगी। वे जीवन भर राज्य की हिंसा से स्वयं लड़े और यह माना कि जलियांवाला बाग जैसे नर मेध रचने वाला जनरल डायर भी उनके जीवन के लिए कोई खतरा नहीं हो सकता। शासक पुलिस की सुरक्षा में बन्द रहे, जनता पर लाठी गोलियाँ चलाकर उनकी सुरक्षा को खतरा पैदा करे पर जन साधारण और उसके नेता अपने अहिंसक प्रतिकार से दोनों की सुरक्षा मजबूत बनाते है। जो अंग्रेज शासक क्रान्तिकारी शहीदों के सामने असुरक्षित थे उन्हें गांधी के सत्याग्रहों में अपनी सुरक्षा महसूस हुई। उन्होंने उनकी बात सुनी और डंडी मार्च करने वाले गांधी ने उनके शासन को यह समझाया कि उनके कानून Un British है, अत: गलत है। सुरक्षा के प्रति यह अहिंसक दृष्टि सरकार को सहिष्णु और जनता को विनम्र बनायें रख सकी। गांधी अग्रेजों की सुरक्षा के विषय में भी उतने ही चिन्तित थे जितने अपने सत्याग्रहियों के जीवन के विषय में। जीवन सुरक्षा का यह उभय पक्ष गांधी दर्शन की विशेषता है जो क्रान्ति में भी मानव सुरक्षा के पहलू की केन्द्रीय मानकर चलती है। क्रूर शासकों को मारना जनता को असुरक्षा में धकेलता है और असुरक्षित जनता जब हिंसा पर उतर आती है तो सरकारी हिंसा भी उसे नहीं रोक सकती। चोरा-चोरी की दुर्घटना एक ऐसी ही स्थिति थी जब पुलिस की हत्या पर गांधी को लगा कि ऐसी हिंसा से जन साधारण की असुरक्षा अधिक बढ़ जायेगी। उन्होंने अपने वरिष्ठ नेताओं को नाराज कर के भी अपना सफल आन्दोलन वापिस ले लिया।

14.5 हिंसा जनित असुरक्षा

गांधी सुरक्षा को मानव चेतना के साथ जोड़ कर देखते हैं। वे पुलिस विरोधी नहीं है बल्कि पुलिस को भी यह महसूस करवाना चाहते हैं कि तथाकथित कानून की अनुपालना में हिंसा का सहारा लेकर वे अपने देश वासियों का अहित कर रहे है। वे पुलिस की कर्त्तव्य परायणता के प्रशंसक है और कानून का सम्मान करना आवश्यक मानते हैं। पूरे स्वतन्त्रता संग्राम में जितनी भी दुर्घटनायें घटी गांधी की प्रतिक्रिया अपेक्षित या उपवास द्वारा पुलिस को सद्भावना संदेश देने की रही। उनका विरोध राजनीतिक था। अत: पुलिस से टकराने को वे गौण प्रश्न के रूप में देखते है। गम्भीर विरोध की स्थिति में वे अमरण अनशन करते हैं। ऐसा करने से उनकी अपनी जीवन रक्षा खतरे में पड़ती है पर समाज को कम से कम क्षति या नुकसान होता है। राजनीति के विरोध दोनों ओर कटुता और हिंसा को जन्म देते हैं। हिंसा से उत्पन्न हिंसा असत्य के माध्यम से सुरक्षा के लिए संकट बनती है। अत: गांधी का मार्ग है कि अपने जीवन को संकट में डालो जिससे दूसरों की हिंसा शामिल हो औश्र व्यक्ति में यह चेतना जागे कि कोई उनके लिए कष्ट झेल रहा है, उसे अधिक कष्ट न दिया जायें। सुरक्षा मनुष्य के व्यवहार का अनुशासन चाहती है यह अनुशासन बाहर से कम और अन्दर से अधिक होता है। पुलिस द्वारा दी गई सुरक्षा व्यक्ति को कायर बनाती है और पुलिस भी अनैतिक और गैर जिम्मेदार हो सकती हे। गांधी सुरक्षा के साथ जिम्मेदारी का भाव जोड़ना चाहते हैं। वे कहा करते थे कि यदि अनुशासन भंग होता है तो नेता के नाते मैं उत्तरदायी हूँ और अपने आप को सजा देना एक आत्म अनुशासन है जो बाहरी पुलिस अनुशासन से अधिक प्रभावशाली है।

अपने आश्रमों में वे इस प्राविधित अनुशासन से आश्रमवासियों में सुरक्षा भाव जगाते थे और लोग सार्वजनिक रूप से क्षमा मांगते रहते थे।

14.6 स्वयं सेवक पुलिस

गांधी को यदि समगुता में समझा जायें तो वे एक अराजकतावादी अहिंसक समाज के पक्षधर है जिसमें पुलिस एक स्वयं सेवक की भूमिका में अत्यन्त आवश्यक है। गांधी मानते है पुलिस आवश्यक ही नहीं उपयोगी भी है। पुलिसमैन व्यक्ति को यह महसूस कराता है कि वह गलती न करें और मनुष्य की आत्मा के प्रतिनिधि के रूप में वह उसे अपना कर्त्तव्य याद दिलाता रहें। उसका कार्य सजा देना या अभद्रता करना नहीं है। गांधी तो अपराधियों का भी हृदय परिवर्तन कर उन्हें इन्सान बनाना चाहते है। उन्होंने लिखा है "Hate the Evil Not The Evil Door" पुलिस अपराधियों से घृणा क्यों करती हे। वे तो दया के पात्र है। शराब पीने वालों की शराब छुड़वाओ। मारपीट से तो वे अधिक खतरनाक अपराधी बन जायेंगे। गांधी में तो दण्ड का सिद्धान्त भी सुधारात्मक है जो अपराधी को भी बीमार मानता है। यह सकारात्मक दृष्टि पुलिस को एक स्वयं सेवक बनाती है। पुलिस समाज में रहे किन्तु लोग उससे डरे नहीं बल्कि एक मित्र, सहायक या डॉक्टर की तरह उससे सलाह और सहायता लें। यह सामाजिक सुरक्षा का एक मनौवैज्ञानिक स्वरूप है। समाज के विभिन्न गुटों में टकराहट न हों बल्कि उन्हें साथ लेकर उनके विग्रह और विरोध को घटायें ओर सहयोग विकसित कर तनाव दूर करें। स्वयं सेवक पुलिस की अवधारणा आज के पुलिस प्रशासन में सकारात्म्क पुलिसिंग (Postivie Policeing) कहीं जाती है। अपनी छवि को सुधारने के लिए एक लोकतन्त्र में पुलिस को नकारात्मक कार्यों से बचकर सकारात्मक कार्य करने का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। सिद्धान्त रूप में पुलिस वाले भी यह मानते है कि हिंसा और बल केवल अन्तिम स्थिति में ही प्रयुक्त किया जाना चाहिए। पुलिस का कार्य कठिन और संवेदनशील है किन्तु हिंसा को हिंसा से दबाने की नीति से पुलिस केवल निर्दयी और क्रूर ही नहीं बनती बल्कि पुलिस को जनता का सहयोग भी नहीं मिलता। इसके परिणामस्वरूप अपराधियों के विरूद्ध गवाही नहीं मिलते और वे सन्देह के लाभ में छुट जाते है। गांधीवादी पुलिस केवल अपराधी का हृदय परिवर्तन ही नहीं करेगी बल्कि उसके विरूद्ध साक्ष्य जुटा कर सजा दिलवा सकेगी।

गांधी की विचारधारा में सुरक्षा और पुलिस को मिलाकर नहीं देखा गया है। गांधी पश्चिमी लोकतन्त्र के एक कटु आलोचक है। उनकी मान्यता है कि पश्चिमी देशों ने लोकतन्त्र के नाम पर पूरे संसार पर औपनिवेशिक शासन किया हैं। उन्होंने एशिया और अफ्रीका के देशों को लूटा है और उनके शोषण को अपनी स्वतन्त्रता बतलाया है। ये लोग डार्विन के अस्तित्व के संघर्ष (Strength for Exlstence) सिद्धान्त को लेकर इन देशों में गये और "Survival of the Fastest" के जीत को सिद्धान्त को लोकतन्त्र बतलाते रहें। इन्होंने राज्य की सुरक्षा और व्यक्ति की सुरक्षा को अपने स्वार्थ की दृष्टि से देखा और ऐसी संस्थायें खड़ी कर दी जो अन्याय करने पर उनकी रक्षा करे सकें। साम्राज्यवादियों का यह खेल उनके शब्दों में लोकतन्त्र का प्रसार था। इन लोगों ने स्थानीय सम्पताओं को समाप्त कर अपनी संस्थाओं को कोलोनिपेंक की निरीह जनता पर थोपा और जहाँ-जहाँ विद्रोह हुए उन्हें निर्मम हिंसा से दबा दिया गया। फलस्वरूप इनके उपनिवेशों में विदेशी राज्य हिंसा के आधार पर ही जम सका और इन हिंसक

सरकारों को हटाने वाले जनविद्रोहों को गदर कह गया। स्वतंत्रता की मांग को राज्य की सुरक्षा का प्रश्न बतलाकर विदेशी शासकों की सुरक्षा को राज्य की सुरक्षा माना गया और फलस्वरूप एक ऐसा पुलिस दर्शन बना जो सरकार की रक्षा को राज्य की सुरक्षा बतलाने वाला Law and Order पुलिस दर्शन कहलाया।

14.7 कानून और व्यवस्था का औपनिवेशिक दर्शन

पुलिस को कानून और व्यवस्था का दर्शन मानने वाले अंग्रेजी शासन की मान्यता थी कि कानून मानना व्यवस्था बनाये रखना है और जो व्यक्ति व्यवस्था तोड़ता है वह कानून भंजक है अत: दण्डनीय है। सिद्धान्त यह बना कि अंग्रेज सरकार जो कानून बनाती है उनका विरोध मत करो वरना व्यवस्था टूट जायेगी। अत: पुलिस को ये अधिकार दिये गये कि वह कानून और ब्रिटिश राज की रक्षा करें। यदि स्वतन्त्र संग्राम के के सेनानी इस सिद्धान्त को मानते तो आजादी की लड़ाई लड़ी ही नहीं जा सकती थी। 1857 में या बाद में गांधी के नेतृत्व में जिन्होंने कानून तोड़े उन्हें अंग्रेज कुछ भी कहें, पर वह सब व्यवस्था को बदलना था। कानून बदलने का कोई तरीका ब्रिटिश शासन विकसित नहीं कर सका और शान्तिपूर्वक कानून तोड़ने को भी राज्य की सुरक्षा को खतरा बताता रहा। गांधी की अहिंसा ने यह सिद्ध किया कि कानून तोड़ने से राज्य की सुरक्षा को या शासकों को कोई खतरा नहीं है। फिर भी वे ब्रिटिश शासन को (भारतीय राज्य को नहीं) पुलिस की लाठी और बन्दूकों से सुरक्षित रखना चाहते थे। अत: अंग्रेजों की पुलिस भारतीय राज्य की रक्षक नहीं बल्कि अंग्रेज शासकों की रक्षक पुलिस थी जो राष्ट्रीय नेताओं को यातना देती थी।

14.8 पुलिस बल से पुलिस सेवा की ओर

इस हिंसक पुलिस के विरूद्ध भी गांधी और उसके सत्याग्रहियों को कोई शिकायत नहीं है। वे स्वामीभक्त राज्य सेवक थे और अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे थे। संविधान सभा में जब गृहमन्त्री सरदार पटेल ने आई.पी.एस. (पुलिस सेवा) को संविधान में अखिल भारतीय सेवा बनाने का प्रस्ताव किया तो गांधी का यह दर्शन सरदार पटेल की माया में स्पष्ट हुवा। सरदार पटेल ने कहा ''पुलिस का इतिहास कुछ भी रहा हो हमें उससे कोई शिकायत नहीं है। .... मैंने तो यह देखा है कि इसी कर्त्तव्यनिष्ठ पुलिस के भरोसे हमने देश के विभाजन की त्रासदी को साहस के साथ झेला है। इस बल में देश और शासन के प्रति निष्ठा है और मैं चाहूँगा कि सिविल सेवा की भांति पुलिस को भी एक अखिल भारतीय सेवा ''बनाया जायें।'' गांधी जी के अनुसार पुलिस एक सैनिक बल नहीं बल्कि समाज सेवा है। यदि अंग्रेजों ने इसे सरकार की भुजा (Executive Arm) बना कर इसे हमारी राष्ट्रीयता को कुचलने के लिए प्रयुक्त किया तो हमें इसकी प्रकृति बदलनी चाहिए। दुनिया के लोकतान्त्रिक देशों में यहाँ तक कि स्वयं इंग्लैण्ड में पुलिस मानव अधिकारों की रक्षक है। अत: गांधीवादी दर्शन पुलिस को सुरक्षा यन्त्र के रूप में नहीं देखता। पुलिस एक समाज सेवा तन्त्र है। यदि वह अहिंसक ढंग से विनम्रता के साथ नागरिकों को स्वस्थ सामाजिकता सिखलाती है तो इससे बड़ी और समाज सेवा क्या हो सकती है। एक ऐसा पुलिस बल जो सदियों से अपने विदेशी शासकों को बचाने के लिए जनता के साथा अभद्रता करता रहा है उसे सजा देने की अपेक्षा

सुधारे जाने की आवश्यकता है। सरदार पटेल पुलिस को राज्य देकर विकेन्द्रित पुलिस व्यवस्था के पक्षधर थे। पुलिस उपयोगी बने, उसके अनुशासन और शासन शक्ति से समाज में समरसता और सौहार्द का वातावरण बनें यह गांधीवादी पुलिस का दर्शन है। दुर्भाग्य से इस दिशा में हम प्रयास करने के बाद भी अधिक प्रगति नहीं कर सके हैं।

14.9 विकास की असुरक्षा

गांधी दर्शन सुरक्षा समस्या और पुलिस की प्रकृति, यदि इन तीनों को समन्वित कर देखा जायें तो मूल प्रश्न सत्य और अहिंसा पर आकर रूकेगा। फिर साधन और साध्य की पवित्रता के प्रश्न आयेंगे। फिर एक आदर्शवादी राज्य की खोज में सुरक्षा और पुलिस की भूमिका पर बहस की जा सकती है। पुलिस हिंसा की प्रतीक बन चुकी है और गांधी तो राज्य को ही एक हिंसक संस्था मानते है। अत: सुरक्षा (Security) का प्रश्न आतंकवाद और अपराध नहीं है। प्रश्न यह है कि ये आतंकवाद और सम्प्रदायवादी क्या चाहते है। अंग्रेजी राज्य ने जिन्दा पैदा किये, देशवासियों को विभाजन की हिंसा में झौंका और स्वयं गांधी तक को मरवा डाला। गांधी तो सिर्फ यह कह रहे हैं कि ये संकीर्णतायें समाप्त करो, घृणा से विकास नहीं होते। यदि कटुता और वैमन्स्य बढ़ाओगे तो कोई भी एक पागल एक एटम के रिमोट से सारी प्रगति और सुरक्षा को चन्द सैकण्डों में समाप्त कर देगा। अत: गांधी के लिए सुरक्षा सैनिक बल था खाद्य सुरक्षा देने वाला विकास नहीं है। उनका विरोध उन सबसे जो विकास के नाम पर मानव सभ्यता का विनाश कर रहे है और मनुष्य को भयभीत कर असुरक्षित बना रहे हैं। बन्दूकों के साये में न शान्ति रह सकती है और न ही विकास में कोई सार्थकता दिखलाई दे सकती है। विकास की गंगा बहाने वालों ने गंगा का ही गला घोट दिया और हा हा कर करता हुआ उत्तराखण्ड इतना असुरक्षित हो गया कि सारी सरकारी सहायता अपर्याप्त लग रही है। गांधी का विकास माडल, प्रकृति के साथ हँसती खेलती जिन्दगी कम से कम आवश्यकताओं का अर्थशास्त्र 'लंगोट की इक्नोमिक्स' कहा जाता रहा है पर टाई लगाने से और हेलीकॉप्टरों में उड़ने से यह विकास किस को कहाँ ला सका है और कहाँ ले जायेगा, गाँधी इसमें घनघोर असुरक्षा देखते है जो पुलिस प्रबन्धन के वश की बात नहीं हे।

गांधी दो संस्कृतियों के इन्सान थे उन्होंने पश्चिम को देखकर यह सलाह दी कि हिंसा, प्रतिद्वन्द्विता और विज्ञान का यह विकास माडल ''असुरक्षा का माडल है जो पुलिस और आर्मी से तो क्या स्वयं यूनाइटेड नेशन्स से भी नहीं चलाया जा सकेगा। तेल और ऊर्जा से विकास करने वाला विश्व "Oil" के लिए युद्ध लड़ेगा और असुरक्षित रहेगा। आर्थिक साम्राज्यवाद विश्ववादी भूमण्डलीकरण से राज्य और नागरिकों को सुरक्षा को खतरा पैदा करेगा। हंगामे होंगे तो पुलिस शक्ति का प्रयोग करेगी और समाज शत्रु समूहों में बंट जायेगा। अत: यह पश्चिमी विकास असुरक्षा है और पुलिस का शासकीय प्रयोग इस असुरक्षा को कम करने के बदलें भविष्य में और अधिक बढ़ायेगा।

गांधी को निरा आदर्शवादी नहीं कहा जा सकता। वे इतिहास और उसके यथार्थ को स्वीकार करते हैं। उनके राज्य में पुलिस बल और सेना होगी पर समाज के नवनिर्भारक से राज्य और पुलिस की भूमिका बदल जायेगी। मधु वाला ठीक ही लिखते है कि ''यदि माक्र्सवाद में से हिंसा निकाल दी जायें तो वह गांधीवाद बन जायेगा'' माक्र्स भी हिंसक सिविल वार के बाद राज्य, समाज, धर्म, सम्पत्ति को समाप्त कर

एक मानवतावादी (Humanistic) समाज बनाना चाहता है। अत: माक्र्सवाद के अन्तिम उद्देश्य की कल्पना ही गांधीवाद है, जो आरम्भ से ही अहिंसक उपायों से समाजों में असुरक्षा उत्पन्न करने वाला तंत्रों को कमजोर करना चाहता है।

14.10 राज्य का आधार बल नहीं हो सकता

पुलिस अपनी शक्ति के कारण राज्य को चलाने वाली सरकार का आधार मानी जाती है यह प्रस्थापना ही दुर्भाग्यपूर्ण है। समाज शक्ति से नहीं इच्छा से चलते है। ग्रीन कोटा आदर्शवादी विचारक नहीं है, जब वह यह कहता है कि "Will not Force is the Basis of State" गांधी सेना और पुलिस बल को राज्य का आधार नहीं मानते। पुलिस बल न होकर एक सेवा है और उसे ऐसी बननी चाहिए। वह नागरिकों को एक सभ्य जीवन जीने की प्रेरणा दें। अपराधियों को सघन अपराधी बनने से रोकें। सामान्य नागरिक पुलिस को एक मित्र और सहायक के रूप में देखें। वह कानून के प्रति विश्वास और सम्मान जगायें। बच्चे पुलिस से डरें नहीं बल्कि पुलिस के साथ सहयोग करते हुए अपने को सुरक्षित महसूस करें। गांधी की पुलिस एक Peace Core होगी जिसका कार्य जनता के बीच सहयोग सम्पर्क स्थापित कर शान्ति को बढ़ावा देना होगा। यह सम्भव है और पुलिस के सकारात्मक सुधार एक लोकतान्त्रिक पुलिस बनाकर साम्राज्यवादी पुलिस छवि को पूरी तरह समाप्त कर सकते है जैसा दुनिया के अन्य देशों में हुवा है।

भारत के संदर्भ में अंग्रेजी राज्य ने पुलिस की प्रतिमा को इतना कलंकित कर दिया है कि एक सिपाही और थानेदार को गांधी दर्शन से नहीं बदला जा सकता। यह आंशिक रूप में सही है कि पुलिस मानवाधिकारों की रक्षक के रूप में भारत में अपनी छवि नहीं बना सकती है। शासकों की आज्ञाकारी स्वामीभक्त पुलिस जो अंग्रेजों ने शताब्दियों में बनाई, आज भी सरकार की भुजा की तरह स्वामीभक्ति से कार्य करती है। यह सरकार और राज्य के हित में है जिसने मुट्ठीभर अंग्रेजों को करोड़ों हिन्दुस्तानियों पर राज करने की शक्ति दी थी। किन्तु एक लोकतन्त्र में इस स्वामीभक्त पुलिस को अलग-अलग पार्टी नेताओं के साथ करना पड़ रहा है। इसलिए पुलिस तटस्थता और ईमानदारी भारी संकट में है। जनता का क्रोध जो शासकों के प्रति है पुलिस पर निमल रहा है। पुलिस थाने हिंसा के शिकार हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में सुरक्षा देने वाली पुलिस स्वयं असुरक्षित होती जा रही है। सामाजिक हिंसा के अन्तर्राष्ट्रीयता से जुड़ने पर सुरक्षा तन्त्र में नये-नये आयाम जुड़ रहे है और पुलिस को जितना सशक्त बनाया जाता है जनता और अपराधी उसे असुरक्षित बनाने में प्रयत्नशील होने जा रहे हैं।

14.11 शासक, शासित और पुलिस संकटों का संकट

साम्प्रदायिक दंगे, नक्सली हिंसा, आतंकी, हाइजैकिंग, वी.आई.पी. सुरक्षा आदि ऐसी कितनी ही चुनौतियाँ है जो समाज के आम नागरिक, शासक और पुलिस अधिकारी तीनों के लिए भारी चुनौतियाँ है। पुलिस सुधार के क्षेत्र मं नई-नई संस्थायें और प्रक्रियायें विकसित हो रही है किन्तु समस्या तकनीकी क्षमता से अधिक समाज के साथ सामन्जस्य स्थापित करने की है। पश्चिम के विकास माडल ने समाज में विभाजक रेखायें खींच कर कटुता को बढ़ाया है। लोकतन्त्र के चुनाव सत्र संघर्ष को भ्रष्ट कर प्रतिद्वन्दता को कट थ्रोट बना रहे हैं। ऐसे में समाज के वंचित वर्ग और महिलायें जाग्रत होकर न्याय मांगने लगे है।

विप्लद, उपद्रव और दंगों से निपटने में पुलिस तन्त्र अपर्याप्त है, अक्षय है और समय के साथ क्रूर होता जा रहा है। इसके कारण सभी वर्गों और शासकों तथा पुलिस की सुरक्षा खतरे में पड़ती जा रही है। पुलिस को मजबूत किया जायें यह तस्वीर का एक पहलू है। सशक्त और सक्षम Professlonal Police अधिक प्रभारी परफोर्मेन्स दे सकती है पर जिस अनुपात में यह प्रभावशालिता बढ़ती है उससे कहीं अधिक तेजी से समाज और राजनीति का अपराधीकरण बढ़ रहा है। स्थिति पुलिस के राजनीतिकरण से आगे पुलिस के अपराधीकरण (Criminalisation of Police) और अपराधों के राजनीतिकरण (Politicisation of Crime) तक आ चुकी है। अत: संकटों के संकट (Crisis of Crises) की इस स्थिति में गांधी एक विकल्प है। विकास को धीमा कर यदि समाज से विद्वेष, घृणा और कटुता घटाई जायें तो लोग अपराधों से विरत होकर भाईचारे की ओर मुड़ सकते है। सब अमीर नहीं बन सकते पर अमीरों को यह सिखलाया जा सकता है कि वे गरीबों का बिना बात अपमान न करें। पुलिस बलों की संख्या बढ़ाने और स्थायी छावनियाँ बनाने में नक्सली समस्या का एक छोर भी नहीं छुआ जा सकता। जो विकास भ्रष्टाचार और अपराध की गंगोत्री है, उस पर गांधी प्रहार कर रहा है और इस मॉडल को बदलें बिना अपराध नहीं घट सकते और पुलिस व्यवस्था से अपराध घटाने का अंग्रेजी औपनिवेशिक तरीका समाज औ पुलिस दोनों को सुरक्षा नहीं दे सकता। गांधी स्वतन्त्रता संग्राम में इसलिए जेल नहीं गये थे कि कुछ सशक्त और संभ्रात लोग आकर सरकार में बैठ जायें और एक साम्राज्यवादी पुलिस व्यवस्था वैसे ही चलती रहे। जैसी वे 1861 के पुलिस एक्ट से चलाना चाहते थे। राजनीतिक लोकतन्त्र और जन सुरक्षा की यह पश्चिमी Paradign स्वतन्त्र भारत में एक नया चिन्तन चाहती है। गांधी भी अगर जिन्दा रहते तो वह विश्व की सुरक्षा और पुलिस भूमिका पर नये संदर्भ में कुछ नया अवश्य सोचते और बतलाते। पर यह अधिकार गांधी के चेलों और राजनीतिक दलों को नहीं दिया जा सकता। वे गांधी के समग्र चिन्तन से प्रेरणा लें और नागरिक सुरक्षा की दृष्टि से पुलिस सुधार की दिशा में पहल करें।

14.12 सारांश

विचारों की दुनिया में मोहनदास कर्मचन्द गांधी को एक उत्तर आधुनिक (Post Modern) विचारक माना जाता है। भारत के स्वाधीनता संघर्ष के एक सक्रिय राजनेता होने के कारण महात्मा गांधी एक महात्मा के रूप में अधिक विख्यात है किन्तु उनके विचारों के संसार में मनुष्य की सुरक्षा, स्वतन्त्रता और विकास कैसा होना चाहिए इसे लोग खण्डित रूप में अधिक जानते हैं। गांधी के भक्त उन्हें एक देवता की तरह पूज्यनीय मान कर उनके हर विचार को श्रद्धा के साथ देखते हैं, दूसरी ओर उनके आलोचकों का एक ऐसा समूह भी है जो उनकी मूल प्रस्थानाओं से मति के कारण उनके दर्शन को प्रयोग के योग्य भी नहीं मानता

14.13 अभ्यास प्रश्न

1. गांधी दर्शन की मूल मान्यतायें समझाते हुए 'सुरक्षा' की अवधारणा पर प्रकाश डालिए।
2. ''कानून और व्यवस्था की पुलिस साम्राज्यवादी दर्शन है।'' टिप्पणी कीजिए।

3. ''एक'' 'स्वयं सेवक सकारात्मक' पुलिस का दर्शन लोकतन्त्र में सार्वजनिक सुरक्षा स्थापित कर सकता है'' क्या आप सहमत है।

4. ''पुलिस बल नहीं, सेवा है'' भारतीय पुलिस सेवा की आवश्यकता और उपयोगिता पर एक निबन्ध लिखिये।

5. संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये -

(a) अपराध गांधी की दृष्टि में

(b) सुरक्षा का आधुनिक संकट क्यों

(c) गांधी की विकास की अवधारणा और असुरक्षा का भाव

(d) गांधी का अराजकतावादी दर्शन और पुलिस

इकाई-15

संघर्ष के समाधान- सिद्धान्त एवं प्रयोग

इकाई की रूपरेखा

15.1 उद्देश्य

15.2. प्रस्तावना

15.3. संघर्ष के सिद्धान्त एवं प्रयोग

15.3.1 पंच फैसला

15.3.2 समाधान

15.3.3 मध्यस्थता

15.3.4 वार्ता

15.3.5 सहयोगात्मक कानून

15.3.6 द्विपक्षीय सरोकार शैली अवहेलना

15.3.6.1 अवहेलना संघर्ष शैली

15.3.6.2 मिलन सार शैली

15.3.6.3 प्रतियोगी संघर्ष शैली

15.3.6.4 सहयोगात्मक संघर्ष शैली

15.3.6.5 सुलह संघर्ष शैली

15.3.7. मार्टन जर्मन की सहकारी शैली

15.3.8 जॉन बर्टन की मानवीय आवश्यकताओं की शैली

15.3.9 संघर्ष का रूपातंरण

15.4 सारांश

15.5 अभ्यास प्रश्न

15.6 संदर्भ ग्रन्थ

15.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य संघर्ष की रोकथाम के लिए विभिन्न विचारकों द्वारा दिए गए सिद्धान्तों एवं उनके मूल उद्देश्य को समझना तथा किसी संघर्ष के समाधान में इन सिद्धान्तो का प्रयोग समझना है।

15.4 उपसंहार

संघर्ष एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है यह अनवरत चलती है इसमें हिंसा का प्रयोग भी किया जाता है। इसके उन्मूलन के लिए कई शांतिपूर्ण समाधानों को खोजा गया है। जिनके द्वारा परिवार, समाज, देश एवं विश्व में शांति की स्थापना के लगातार प्रयत्न किए जा रहे है।

15.2प्रस्तावना

संघर्ष को एक मौलिक और सार्वभौमिक सामाजिक प्रकिया माना जाता है। पूर्णत: संघर्ष विहीन समाज का पाया जाना असंभव है। जब कोई व्यक्ति या समूह अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रतिस्पर्धा का मार्ग छोड़कर हिंसा की धमकी का सहारा लेता है विरोधी को नुकसान पहुंचाने, पराजित करने या समाप्त का प्रयत्न कराता है तो संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। जब ऐसे भाव बहुत तीव्र हो जाते है एवं विरोधी को हानि पहुंचाने की इच्छा बलवती हो जाती है। तब संघर्ष उत्पन्न हो जाता है।

ग्रीन के अनुसार '' संघर्ष दूसरे या दूसरों की इच्छा के विरोध, प्रतिकार या बलपूर्वक रोकने के विचारपूर्वक प्रयत्न को कहते है।

स्पष्ट है कि अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बल प्रयोग या हिंसा की धमकी द्वारा दूसरों की इच्छाओं को दबाना या उसके उद्देश्यों की प्राप्ति के मार्ग में बाधा उपस्थित करना ही संघर्ष है।

किंग्लसे डेविस के अनुसार जहां प्रतिस्पर्द्धयों का ध्यान प्रतिस्र्द्धा से हटकर प्रतिद्वन्द्वयों पर क्रेन्द्रित हो जाता है वहीं संघर्ष प्रारंभ हो जाता है।

संघर्ष का समाधान संघर्ष के उन्मूलन या नष्ट करने की प्रक्रिया एवं श्रंखला है यह शब्द विवाद के समाधान या वैकल्पिक साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है आम तौर पर संघर्ष का समाधान बातचीत, मध्यस्थता, कूटनीति आदि के द्वारा होता है संघर्ष का समाधान मध्यस्थता और मध्यस्थता की प्रक्रिया के रूप में काम में लिया जाता है। संघर्ष के समाधान में कम से कम प्रत्येक पक्ष की जरूरतों में से कुछ को पूरा करने और उनके हितों को ध्यान में रखकर एक विवाद एक संघर्ष को हल करने की कोशिश की जाती है। यह विचार द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आया है जो किसी समस्या के समाधान के लिए आवश्यक है।

15.3 संघर्ष के समाधान के सिद्धान्त एवं प्रयोग-प्रत्येक समस्या का कोई न कोई हल अवश्य होता है, उसी प्रकार संघर्ष के समाधान के लिए भी सदैव प्रयास किये जाते रहे है। संघर्ष के शांतिपूर्ण समाधान के लिए कई विद्वानों के अलग अलग तरीके बताये है उन सभी समाधानों का हल यहां सिद्धान्त रूप में प्रस्तुत कर रहे है।

15.3.1 पंच फैसला : यह वैयक्तिक विवाद समाधान का एक रूप है किसी विवाद के लिये यह एक या एक से अधिक व्यक्तियों के बीच मध्यस्थ या मध्यस्थों द्वारा न्यायाधिकरण के लिए एक तकनीक है, यहां एक तीसरा पक्ष मामले के सभी साक्ष्यों की समीक्षा कर कानूनी रूप से एक निर्णय लेता है जो दोनों पक्षो के लिए बाध्यकारी होता है यह समाधान की एक तकनीक है। पंच फैसला का उपयोग अक्सर उपभोक्ता या व्यवसायिक अनुबंध आदि के लिए होता है।

पंत्र फैसला इच्छा से या कानून के तहत होता है। जिसमें वर्तमान या भविष्य के सभी विवादों को छोड़कर एक अनुबंध किया जाता है पंच फैसला के अन्तर्गत एक बीच का रास्ता खोजने की कोशिश की जाती है। हांलाकि यह निर्णय या रास्ता स्वैच्छिक, या अनिवार्य हो सकता है इसमें तीसरे व्यक्ति या समूह का निर्णय दोनों पक्षो को मानना होता है। पंच फैसला से करे गए निर्णयों में समीक्षा एवं अपील के सीमित अधिकार होते है।

पंच फैसला की प्रक्रिया अक्सर अदालत में मुकदमें बाजी की तुलना में तीव्र होती है क्योंकि यहां पर कार्यवाही जल्दी होती है और प्रक्रिया चूंकि छोटी होती है इसलिए इसमें खर्चा भी कम होता है तथा अधिक नियम कायदे न होने से लचीलापन भी होता है।

पंच फैसला के द्वारा किया गया समाधान आमतौर पर गैर सरकारी होता है इसमें गोपनीयता का भी पूरा ध्यान रखा जाता है। इसके द्वारा विवादों के निवारण में भाषा के चुनाव की भी स्वतंत्रता होती है जबकि सक्षम न्यायालय के द्वारा देश की अधिकारिक भाषा में ही कानूनी कार्यवाही स्वचालित रूप से लागू की जाती है।

पंच फैसला का प्रयोग 1890- 1914 के बीच द्वितीय विश्वयुद्ध के समय किया गया। इस समय यह राजनायिकों के बीच व्यापक रूप से चर्चित रहा। 1895 का संघर्ष जो कि संयुक्त राज्य संघ व बिट्रेन के मध्य चला उसका समाधान शांतिपूर्ण ढ़ग से इसी के माध्यम से हल किया गया। इस प्रकार पंच फैसला को शांतिपूर्ण ढंग से संघर्ष के समाधान के एक तरीके के रूप में देखा जाने लगा।

15.3.2 समाधान - समाधान का अर्थ दो दलों या दो व्यक्तियों के मतभेदों का दूर करने के लिए एक वैकल्पिक विवाद निवारण की प्रक्रिया से है। इसके द्वारा तनाव को कम किया जाता है परस्पर संचार में सुधार किया जाता है मुद्दों की व्याख्या की जाती है। संभावित समाधानों की खोज के बाद बातचीत से संघर्ष के समाधान को प्रस्तुत किया जाता है।

समाधान की सुलह प्रक्रिया में किसी प्रकार के कानूनी दखल की आवश्यकता नहीं होती है। समाधान करवाने वाले को सबूत मांगने या गवाहों को एकत्र करने का कोई अधिकार नहीं होता है किसी निर्णय को भी लागू नहीं किया जाता है इस प्रकार यह पंच फैसला से भिन्न होता है।

समाधान में संवाद, क्षमायाचना, सार्वजनिक गतिविधियां आदि शामिल है। इस प्रकार इसके द्वारा छोटे मोटे विवादो को बिना अदालती कार्यवाही में फंसे निपटाया जा सकता है। इस प्रकार यह मुकदमेंबाजी से इतर एक सस्ता व सरल विकल्प है।

पारिवारिक झगड़े, आपसी तनाव, पति-पत्नि के विवाद तथा छोटे- मोटे संघर्षो को आपसी समझ एवं छोटे छोटे समझौते के द्वारा हल किया जा सकता है जिनमें व्यक्ति को अपने अहंकार तथा स्वार्थ को भूलकर दूसरे पक्ष को भी समझना होता है अक्सर पारिवारिक अनबन एवं झगड़ो में यह एक प्रभावकारी समाधान है।

15.3.3 मध्यस्थता - . कानून में उपयोग के रूप में वैकल्पिक विवाद समाधान का यह एक रूप है। दो या दो से अधिक दलों के बीच विवादों को हल करने का तरीका है। आम तौर पर कोई तीसरा व्यक्ति या समूह मध्यस्थ की भूमिका निभाते हुए समस्या या संघर्ष को निपटाने की कोशिश करता है यह सामान्यत:

कार्य स्थल परिवार या समुदाय के विवाद या संघर्ष के समाधान के लिए उपयोगी है। इसके द्वारा दोनों पक्षो को समझौते तक पहुंचने में मदद की जाती है। मध्यस्थता के द्वारा बातचीत के बीच के अवरोध को तोड़कर संबंधोमें गतिशीलता लाई जाती है।

मध्यस्थ की भूमिका तटस्थ होती है तथा उसका कर्त्तव्य होता है कि वह मध्यस्थता की सम्पूर्ण प्रक्रिया एवं संघर्ष के विषय को गोपनीय रखे। इसमें समाधान तीव्र हो जाता है। कोई वकील या अदालत किसी मामले को हल करने के लिए महीनों या वर्षों का समय लगा देते है वहीं मध्यस्थता के द्वारा कुछ घंटों में ही निर्णायक अवस्था में पहुंचा जा सकता हैं। इस प्रकार के निर्णय में किसी प्रकार की बाध्यता नहीं होती है। अपितु दोनों पक्षो की पारस्परिक सहमति से निर्णय लिया जाता है। जिससे किए गए समझोते की अनुपालना करने की संभावना अत्यधिक होती है।

अक्सर पड़ोसियों में संघर्ष, झगड़े, इत्यादि के निपटारे के लिए स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षित स्वयंसेवकों ली सेवा जाती है। आमतौर पर इस तरह के विवादों में मोहल्लों या इमारत के सचिव आदि सामुदायिक मध्यस्थता का कार्य करते है तथा अपने स्तर पर ही संघर्ष का समाधान कर लेते है। पिछले दो दशकों से कई प्रमुख अमेरिकी शहरों में यह कार्य बहुत ही सफलता से हो रहा है।

समान उम्र या समान कार्य करने वाले व्यक्तियों के बीच में जब संघर्ष होता है तो मध्यस्थता कार्यक्रमों के द्वारा संघर्ष को सुलझाया जाता है। इसका प्रयोग स्कूल में व्यवस्थापकों एवं छात्रों के बीच की समस्या को सुलझाने के लिए किया जाता है। इस प्रकार के संघर्षो की रोकथाम के कार्यक्रमों में 1941 से 1990 के बीच 40 प्रतिशत की वृद्धि हुई है इसके द्वारा सामाजिक एकता को बढ़ावा मिलता है था सामाजिक जागरूकता बढ़ती है।

15.3.4 वार्ता . किसी एक निर्णय पर पहुंचने के लिए सामूहिक या एकल के द्वारा वार्ता की जाती है इस प्रकार किसी संघर्ष की रोकथाम के लिए दो या से अधिक समूहों के बीच संवाद या बातचीत की प्रक्रिया अपनाई जाती है यह प्रक्रिया दो लोगों अथवा समूहो के हितों को पूरा करने का कार्य करती है।

वार्ता सामान्यत: व्यापार, गैर लाभकारी संगठनों, सरकारी शाखाओ, कानूनी कार्यवाहियों तथा दो राष्ट्रों अथवा व्यक्तिगत परिस्थितियों में होता है। इस प्रकार समझौते का रूप बहुत ही विस्तृत होता है कई बार प्रशिक्षित वार्ताकार किसी संगठन की तरफ से औपचारिक रूप से समझौता करता है। इसमें वार्ताकार रणनीति बनाकर कार्य करता है। अपनी विनम्रता व लचीलेपन से संघर्ष के समाधान तक जाता है तथा रचनात्मक तरीकों से कठिन समस्याओं को सुलझाता है।

15.3.5 सहयोगात्मक कानून . सहयोगात्मक कानून को तलाक या पारिवारिक कानून भी कहा जाता है। यह एक कानूनी प्रक्रिया है जो विवाहित जोड़ों को उनकी भावनाओं और आवश्यकताओं की विशिष्टता को बनाए रखते हुए बिना मुकदमेंबाजी के एक अनुबंध के द्वारा स्वैच्छिक रूप से समाधान की ओर ले जाती है।

15.3.6 संघर्ष के समाधान की द्विपक्षीय सरोकार शैली - संघर्ष से निपटने के लिए व्यक्ति दो तरीकों से काम कर सकता है।

1. व्यक्ति स्वयं के बारे में सोचे। 2. दूसरो के प्रति सहानुभूमि रखे।

इस मॉडल के अनुसार पांच तरीकों से संघर्ष को सुलझाया जा सकता है:-

15.3.6.1 अवहेलना संघर्ष शैली- जब दो व्यक्ति या समूहों के बीच संघर्ष होता है तो व्यक्ति या समूह संघर्ष से अपने आप को अलग कर ले और दूसरे समूह को जीता दे या फिर व्यक्ति या समूह स्वयं अपने ही परिणामों के बारे में सोचे तथा दूसरे पक्ष के हितों की अवहेलना कर दे। संघर्ष के दौरान अवहेलना करने वाला रूको और देखा का रवैया अपनाता है परंतु उच्च संघर्ष की स्थितियों में अवहेलना करने से समस्याओं के ऊपर से नियंत्रण हट जाता है।

15.3.6.2 मिलनसार संघर्ष शैली- इस शैली के अनुसार दो समूहों में संघर्ष होता है तो संघर्ष के समाधान के लिए वे एक दूसरे के प्रति सकरात्मक दृष्टिकोण अपनाते है तथा संघर्ष के समाधान को खोजने का प्रयास करते है इसमें एक समूह या व्यक्ति अपने हितों का ध्यान रखने के साथ ही दूसरे व्यक्ति या समूह के हितो या जरूरतों को पूर्ण करने की कोशिश करता है।

15.3.6.3 प्रतियोगी संघर्ष शैली- संघर्ष के समाधान के इस तरीके में प्रतिस्पर्धा को मुख्य माना गया है। प्रतियोगिता या प्रतिस्पर्धा का अर्थ है दो या दो से अधिक व्यक्तियों के समान उद्देश्य जो इतने सीमित है कि सब उसके भागीदार नहीं बन सकते को पाने के प्रयत्न को कहते है। प्रतियोगिता के माध्यम से अहिंसात्मक तरीके से लक्ष्य प्राप्ति का प्रयत्न किया जाता है इसमें व्यक्ति स्वयं के हितों का ध्यान रखता है दूसरों के प्रति उसके हृदय में सहानुभूति नहीं होती है।

15.3.6.4 सहयोगात्मक संघर्ष शैली- सहयोगात्मक संघर्ष में व्यक्ति किसी भी संघर्ष में अपने स्वार्थ के साथ साथ दूसरे पक्ष के स्वार्थ का भी ध्यान रखता है प्रत्येक कार्य के उद्देश्य की सफलता का आधार सहयोग ही होता है सहयोग के अभाव में न कोई परिवार अपने इच्छित लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है न कोई अन्य संगठन। इसी कारण संघर्ष के समाधान के लिए सहयोगात्मक शैली को अपनाया जाता है।

15.3.6.5.सुलह संघर्ष शैली- सुलह शैली संघर्ष के समाधान की सबसे प्रभावशाली विधि है इसमें संघर्षरत दोनों पक्षो के समान लाभों को ध्यान में रखा जाता है इसके लिए संघर्षरत दोनों पक्ष एक स्तर पर एकत्र होते है तथा कौन सही है कौन गलत है जैसी बातों को नजर अंदाज किया जाता है परंतु सुलह के लिए संवाद को जारी रखना आवश्यक होता है।

15.3.7. मार्टन जर्मन का सहकारी मॉडल -मार्टन जर्मन के अनुसार संघर्ष का कारण विवाद होता है। तथा इस प्रकार के संघर्ष को दूर करने के लिए आपसी समझौते और सहयोग का प्रयोग किया जाता है दोनों पक्षो को एकत्र कर प्रतिस्पर्धा को भुलाकर सहयोगात्मक दृष्टिकोण को अपनाना होता है।

निजी संगठनों में सहकारी मॉडल के द्वारा ही दो पक्षों के समान हितों की रक्षा की जाती है तथा दो पक्ष या दो कम्पनी अपने लाभों को साझा करती है।

15.3.8. जॉन बर्टन मानवीय जरूरतों का मॉडल:- इनके अनुसार जब कोई व्यक्ति समूह अपनी बुनियादी आश्यकताओं जैसे सुरक्षा, मान्यता, पहचान और समाज के भीतर बराबर की भागीदारी करने से मना कर देता है तो संघर्ष अपरिहार्य हो जाता है। इस प्रकार के संघर्ष को दूर करने के लिए रिश्तों के पुनर्गठन तथा समाज व व्यक्ति की जरूरतों को समायोजित करना आवश्यक होता है।

15.3.9. संघर्ष का रूपान्तकरण- संघर्ष के रूपान्तरण से तात्पर्य है संघर्ष की दिशा को परिवर्तित कर देना। यह भी संघर्ष के समाधान का एक प्रकार है। चूंकि इसमें हम संघर्ष का पूर्ण रूपेण समाधान नहीं करते है अपितु यह मात्र बचाव का एक तरीका है इसलिए इसे संघर्ष के समाधान का गौण उपाय ही माना जाता है।

संघर्ष के रूपान्तरण का प्रयोग निजी संगठनों में कार्य के दबाव व प्रतिस्पर्धा के कारण सर्वाधिक होता है वहीं राजनीतिक संगठनों में आरोप प्रत्यारोप तथा अपनी साख को बनाए रखने के कारण होता है।

15.4 सारांश

संघर्ष एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है यह अनवरत चलती है इसमें हिंसा का प्रयोग भी किया जाता है। इसके उन्मूलन के लिए कई शांतिपूर्ण समाधानों को खोजा गया है। जिनके द्वारा परिवार, समाज, देश एवं विश्व में शांति की स्थापना के लगातार प्रयत्न किए जा रहे है।

15-5 अभ्यास प्रश्न

1 संघर्ष के समाधान के सिद्धान्तो को समझाए ?

2- संसार के समाधान के सिद्धान्तो के व्यवहारिक प्रयोग बताइये ?

15.5 संदर्भ ग्रन्थ

(1) Collect Resolution Theory and practlce- Murton Deutsch

इकाई - 16

सामाजिक विरोधों के सुलझाने में पुलिस की भूमिका

इकाई की रूपरेखा

16.1 सामाजिक विरोध

16.2 सामाजिक विरोध के प्रकार

16.3 सामाजिक विरोध और पुलिस

16.4 कानून व्यवस्था

16.5 केस अध्ययन एव निष्कर्ष

16.6 सारांश

16.7 अभ्यास प्रश्न

16.1 सामाजिक विरोध

सामाजिक विरोध सामाजिक जीवन की एक सहज विशेषता है। ऐसा कोई मानव समाज हो ही नहीं सकता जिसमें मनु"यों के हित, विचार और व्यवहार आपस में न टकराते हों। ये टकराहटें या विरोध स्वस्थ एवं हानिकारक दोनों प्रकार की हो सकती है। प्रबन्ध विज्ञान की शोध यह संकेत देती है कि इन विरोधों का दबाना हानि कारक है। इन्हें स्वीकार कर इनसे निपटना होगा। । अत: सामाजिक विरोध उभरेंगे और ये उन समाजों में अधिक पाये जायेंगे जहाँ अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता है और समाज में विभिन्नतायें अधिक देखने को मिलती है। लोकतन्त्र में छोटे-छोटे मतभेद विरोध बन कर उभरते हैं और इनसे निपटने के लिए अलग-अलग स्तर पर प्रयत्न किये जाने चाहिए। पुलिस संगठन का जन्म ही इन विरोधों को सुलझाने के

लिए हुआ है। कानून के अनुसार पुलिस के चार कार्य सभी सम्य समाजों में प्रस्तावित किये जाते हैं। ये कार्य है :-

(1) कानून की क्रियान्विती

(2) सामाजिक सौहार्द और शान्ति का संरक्षण

(3) सतर्कता की दृष्टि से एतिहाती उपाय

(4) दुर्गुणों पर नियन्त्रण

ये कार्य इतने व्यापक और गम्भीर है कि समाज की लगभग सभी गतिविधियाँ इनके दायरे में ली जा सकती है। यहीं कारण है कि पुलिस का सिपाही अपनी वर्दी में गांव-गांव मं पहिचाना जा सकता है। सामाजिक अवरोधों विरोधों को छटाने के लिए वह हस्तक्षेप कर सकता है। जनता उसके थाने में शिकायतें दर्ज करवाती है और वह स्वयं भी किसी भी घटनाक्रम में सामाजिक शान्ति को खतरा मान कर कार्यवाही कर सकता है। वह सही है या गलत यह कानून का फैसला है जिसे न्यायालय देखता है। पुलिस

से तो सिर्फ यह अपेक्षा की जाती है कि वह समाज को कानून की सीमाओं में रखें और कानून तोड़ने वालों को न्यायपालिका से दण्डित करवायें। इस प्रकार पुलिस प्रशासन आपराधिक न्याय की पहली संस्था है जिसे Law and Order Agencyभी कहा जाता है। सिद्धान्त यह है कि कानून व्यवस्था स्थापित करता है और जो व्यक्ति कानून का भंजन करता है वह व्यवस्था के लिए खतरा है।

यह दृष्टि पुलिस को शासन की भुजा (Arms of Executlve)बनाती है जबकि आज का मानस अधिकार सिद्धान्त पुलिस से यह अपेक्षा करता है कि वह नागरिकों के अक्तिकारों की भी रक्षा करें जिन्हें सरकार के अधिकारी व्यवस्था के नाम पर प्राय: कुचलते रहते है।

16.2 सामाजिक विरोध के प्रकार

सामाजिक विरोध (Conflicts)नाना प्रकार के हो सकते है।

1. कोई भी एक अपराधी पूरे समाज के लिए खतरा हो सकता है।
2. समाज के कुछ समूह दूसरे समूहों से टकरा सकते हैं।
3. समाज के व्यक्ति और समूह राज्य का कानून तोड़ कर राज्य से टकरा सकते है। ये सभी विरोध हिंसक, अहिंसक, संगठित तथा लम्बे समय तक चलने वाले भी हो सकते है। कोई भी सामाजिक विरोध, सामाजिकता से आरम्भ होकर राजनीति, धर्म और संस्कृति की सीमाओं में आ सकता है। समाज के लोग या संगठन जान-बूझकर विरोध कर सकते हैं और इसी तरह अहिंसक और शान्तिपूर्ण ढंग से किया जाने वाला विरोध भी हिंसा और खून खच्चर में बदल सकता है। पुलिस और कानून की दृष्टि में सामाजिक विरोध नियन्त्रण में लिए जाने चाहिए जिससे समाज में शान्ति, सौहार्द और समरसता बनी रहें। पुलिस की चूक को भी पुलिस की असफलता माना जाता है और इसी प्रकार कानूनों का विरोध करना भी एक मूल अधिकार के रूप में देखा जा सकता है। स्वतन्त्रता संग्राम के सारे अहिंसक विरोध भी अंग्रेज शासन और पुलिस के लिए एक चुनौती थे और उन्हें कुचलने से जो हिंसा और अव्यवस्था जन्म लेती थी, उसे कानून की अवमानना माना जाता था। पुलिस को एक स्वामीभक्त (Loyal) संस्था के रूप में राज्य का तन्त्र मानकर देखा गया और अभी भी पुलिस दर्शन यहीं है कि सरकारी कानूनों की रक्षा की जायें, चाहें वे कितने भी दमनकारी क्यों न हों। लोकतन्त्र में यह स्थिति विवादास्पद इसलिए बनी है क्योंकि सरकारें जनता के प्रति उत्तरदायी है। इसी कारण से पुलिस को भी केवल जन प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी न होकर जन साधारण या जनता के प्रति उत्तरदायी बनाया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में यदि जनता और समूहों में टकराहट होती हो तो पुलिस को चाहिए कि वह कानून की रक्षा करें, पर यदि शासक, सरकार और जनता के बीच में द्वन्द्व उत्पन्न हो तो पुलिस के केवल सरकार को बचा कर जनता के साथ अन्याय कर सकती है। किन्तु कानून को यदि शासकों की दृष्टि से न देखा जायें तो कोई भीशासक शासन चला ही नहीं सकता। दूसरी ओर यदि पुलिस बल सरकार का कहना न मानकर विरोधियों का साथ देने लग जायें तो स्थिति हिंसक और अराजक बन सकती है। सेना के विद्रोह करने पर तो सरकारें ही बदल जाती है। पुलिस यदि सरकार का कहना न मानें तो पूरी जनता के मूल अधिकारों का ही अन्त हो सकता है जिसके लिए राज्य और पुलिस की व्यवस्था से बनाई गई है। स्वाभाविक है कि सन्तुलन का मध्य मार्ग एक बीच की स्थिति चाहता है।

16.3 सामाजिक विरोध और पुलिस

पुलिस सरकार और कानूनों को बचायें पर वह जन साधारण पर भी अत्याचार और अनाचार न करें। यह एक संवेदनशीलता का संतुलन कार्य है और पुलिस वाले तो यहाँ तक मानते है कि वे कितने ही ईमानदार और भले क्यों न बन जायें, लोग उन्हें ऐसा कभी मान ही नहीं सकते। पुलिस की इस छवि के साथ यदि विरोधी सत्ता में आते है। जिन्हें कल तक पुलिस पिटती रहती थी। तो वे उन पुलिस अधिकारियों को अपने शासन में कितना विश्वसनीय मानें यह उत्तर ईमानदारी चाहता है। विरोधी दल शासन में आने पर बदला लेते है। सामान्य ट्रान्सफर आदि तक तो यह ठीक है, किन्तु यदि एक शासन के अन्तर्गत कर्त्तव्य परायणता को विरोधी शासन में पुलिस अत्याचार कहा जायें, तो स्थिति विराम बनती है। यह कहना भी व्यावहारिक नहीं है कि पुलिस अधिकारी अपराधी के साथ सख्ती न करें और यह और भी मुश्किल है कि विरोधी नेता पुलिस ज्यादतियों को भूल जायें।

सामाजिक विरोध यदि गुण्डा गर्दी और अपराधी वृत्ति से जन्म लेकर समाज को जान माल की क्षति पहुँचाता है, तो पुलिस बल की ज्यादती भी क्षम्य लगती है। किन्तु यदि उसके पीछे बदलें की भावना या विचार धारा आदि है तो पुलिस के निष्पक्ष और विनम्र बनाना ही होगा। पुरानी पुलिस सामन्ती और औपनिवेशिक पुलिस थी, अत: वह नकारात्म्क कार्य (Negative)करती थी। सरकार और कानूनों को बचाना उसका कर्त्तव्य था। पर एक जनता की पुलिस उस सरकार को किसी सीमा तक बचायें जो एक दल विशेष के शासकों की रक्षा करने के लिए गोलियां चलाने लग जाती है। यहाँ तर्क यह दिया जायेगा कि कानून का शासन तो न्यायपालिका चलाती है और पुलिस तो एक कार्यकारी तन्त्र मात्र है। फिर यदि कानून और व्यवस्था पुलिस और न्यायपालिका दोनों की मिली-जुली जिम्मेदारी है तो पुलिस किस सीमा तक कितनी जिम्मेदार है और उसे कार्यकारी शासकों का कहना मानते समय किन-किन लोकतान्त्रिक तत्वों को ध्यान में रखना चाहिए। कानून की रक्षा द्वारा समाज में से विरोध हटाना और सामाजिक सौहार्द का संतुलन बनाये रखना एक पुलिस कार्य है, जो एक सरकार का उद्देश्य भी होना चाहिए। समाज और सरकार के सामने ऐसी स्थितियाँ आती रहती है जब व्यवस्था टूटती हुई नजर आती है और तब पुलिस बल को बुलाकर स्थिति को सामान्य बनवाया जाता है। यह स्थिति साम्प्रदायिक दंगों की भी हो सकती है और एक विश्वविद्यालय परिसर पर चुनाव करवाने में भी आ सकती है। इसी तरह सामाजिक विरोध को पुलिस और शासकों के साथ दुव्यवहार माना जा सकता है और रेल की पटरियों पर धरना देना भी विरोध प्रकट करने का एक तरीका हो सकता हे।

इस हिंसा की चपेट में निर्दोष स्कूली बच्चे और महिलायें भी आ सकती है और इस सामाजिक विरोध को घटाने के लिए एक नेता अमरण अनशन कर स्वयं मर सकता है और उसके साथ सहयोगी हजारों लोगों की जिन्दगी भी खतरे में डाल सकते हैं।

सभी समाज के हित की बातें करते है और अहिंसक संघर्षों के द्वारा अपना शक्ति प्रदर्शन करते रहते है। राज्य सरकारों को अपने पुलिस बल भी राज्य की अपनी शक्ति प्रदर्शन के लिए उसी अनुपात में लगाने पड़ते है। अखबार वाले इसे पुलिस और नागरिकों के बीच लाठी-भाटा जंग बतलाते रहते है। मीडिया

जनता की सहानुभूति बटोरने के लिए लाठी भांजने वाले सिपाही का फोटो छापता है और यह नहीं बतलाता कि अपनी तनख्वाह को सुरक्षित करने के लिए यह सिपाही कितने पत्थर खा चुका हे।

कहने का तात्पर्य यह है कि इसका दूसरा भी पहलू है पीटने के लिए कोई पुलिसकर्मी किसी को नहीं पीटता। शासक न पिटें इसलिए पुलिस पिटने से पहले ही जनता को पीटती है। अब कौन सी जनता किस से लड़ने के लिए कौन-सा कानून तोड़ती है यह तो वह न्यायपालिका बतलायेगी जो उस समय सीन पर ही नहीं होती। पुलिस कार्यों की संवेदनशीलता यह है कि -

(1) उसे तो सीन पर आकर कार्यवाही करनी ही पड़ेगी जबकि और अधिकारी बाद में कोटा में उस सीन पर चर्चा करेंगे।

(2) इस कार्य में सख्ती और दया दोनों ही जोखिम भरे है और जब भी एक उसकी रास्ता अपनाया जाता है तो दूसरी दृष्टि से आलोचना होती है।

(3) पुलिस जिस कार्य के लिए पिट रही है या पीट रही है उससे किसी सिपाही का कोई लेना-देना नहीं है वह तो उस व्यवस्था को बचा रहा है जिसे लोग हटाना चाहते है।

16.4 कानून व्यवस्था

कानून व्यवस्था की इन समस्याओं को जन साधारण और पुलिस अधिकारी दोनों ही नहीं समझते या यो कहिये कि समझना ही नहीं चाहते। पुलिस को केवल अनुशासन सिखलाया जाता है और मानव अधिकार का दर्शन उनके अनुसार भारत में सम्भव ही नहीं है। इसी प्रकार जनता यह मानकर चलती है कि पुलिस वाला खरीदा हुआ सरकारी गुलाम है वह नागरिकों का संरक्षक हो ही नहीं सकता। अपनी नौकरी बचाने के लिए वह स्वयं अपराध करता है और तब तक करता ही रहेगा जब तक उसे

सत्ता के दुरूपयोग करने पर समाज में सम्मान और स्टेटस मिला हुआ है। आगामी

पृष्ठों पर दो काल्पनिक केश में घटना वर्णित की जा रही हे। इनमें सामाजिक विरोध के अनेक पहलू अन्तर्निहित है। विद्यार्थी इन्हें गम्भीरता से पढ़कर उन प्रश्नों के उत्तर दें जिनसे एक लोकतन्त्र में पुलिस की सामाजिक विरोधों को सुलझाने की भूमिका को पहचाना जा सकें।

केस अध्ययन -

रामधन एक ग्रामीण परिवार का एकलौता पुत्र था। उसके एक चाचा पिछली विधान सभा में विधायक रहे थे। उसने देखा कि एक विधायक के रूप में उनका गांव में भारी सम्मान था और कम शिक्षित होते हुए भी उन्हें एक मंत्री जितनी सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी।

जिला कॉलेज से बी.एससी. पास करते ही रामधन के अशिक्षित पिता ने सोचा की आगे पढ़ने से वह एक मंत्री या कलेक्टर बन सकता है। अपने इस सपने को पूरा करने के लिए उन्होंने रामधन को जयपुर भेजा और कहा कि वे अपनी जमीन तथा सब कुछ बेचकर भी उसे एक बहुत बड़ा आदमी बनाना चाहते हैं।

रामधन ने शहर में पाया कि यहाँ पर वह अकेला हैं। इसलिए उसने अपनी सजातियों के साथ सम्पर्क बढ़ाने आरम्भ किये। उसका एडमिशन जूलोजी विभाग में सरलता से हो गया और वह एक होस्टल में रहने लगा। इसी वर्ष सात साल के अन्तराल के बाद लिंगदोह कमेटी की सिफारिश पर विश्वविद्यालय में

छात्र संघ के चुनाव की घोषणा हुई। होस्टल की इन चर्चाओं में रामधन के साथियों ने उसे समझाया कि यदि वह पैसों का इन्तजाम कर सकें तो वे उसे विश्वविद्यालय स्टूडेन्ट यूनियन का प्रेसीडेन्ट चुनवा सकते है। ग्रामीण परिवेश से आये रामधन को अपना सपना साकार करने वालों समर्थकों में उसके परिवार के लोगों ने और स्वयं पिता ने भी एक खेत बेचकर उसे चुनाव लड़ने के लिए प्रोत्साहित किया। धीरे-धीरे वह शिक्षा के सपने को छोड़ कर राजनीति की ओर मुड़ने में अपनी सफलता देखने लगा।

कुछ ही सप्ताह में उसने एक छोटी-सी मित्र मण्डली बना ली, जो उसके पैसों से उसके चुनाव प्रचार में अपना सहयोग देने लगी। पुराने छात्रों ने उसे शहरी राजनीतिक दलों और विद्यार्थ संगठनों के नेताओं से मिलवाया और उसके चुनावी टिकिट मिलने के आसार बढ़ने लगे। राज्य के जातिवादी नेताओं ने उसकी पीठ थपथपायी और कुछ विधायकों ने भी अपना सहयोग और समर्थन देने का आश्वासन

दिया।

जैसे-जैसे विद्यार्थी यूनियन चुनाव रंग पकड़ने लगा उम्मीदवारों के समर्थकों में आपस में झगड़े और पमारपीट होने लगी। पुलिस थाने में जाने पर उन्हें समझा बुझाकर लौटा दिया गया।

एक दिन जब रामधन के समर्थक उसके पोस्टर चिपका रहे थे, विरोधी छात्रों ने हमलाकर उसके पोस्टर फाड़ दिये और रामधन को घायल कर दिया। पुलिस ने एफआईअर दर्ज तो की, किन्तु प्रभारी एक्शन नहीं लिया। उत्तर में रामधन के एक साथी ने विरोधी खेमे की एक छात्रा के साथ अभद्रता की और छात्रों में कटुता और हिंसा बढ़ने लगी। पुलिस ने कैम्पस को छावनी में बदल दिया और उधर बदलें में राधन ने भी पैसे बहाकर धुआँ धार प्रचार द्वारा हंगामों के रिकॉर्ड तोड़ डालें।

चुनाव खर्च के लिए रामधन अपने साथियों के साथ बाजार की दुकानों से चन्दा मांगलने निकला। साथी विद्यार्थी ने दुकानदारों से जबरदती की और मना करने पर उनका सामान सड़क पर फेंक दिया। पुलिस मौके पर पहुंची और व्यवस्था कड़ी कर दी गइ्र। किन्तु व्यापार मण्डल ने एक प्रस्ताव पारित कर रामधन समर्थकों पर मुकदमा चलाने का दबाव डाला। इस स्थिति में राजनीतिक दल सक्रिय होकर पुलिस का विरोध करने लगे। पुलिस प्रशासन ने सम्बन्धित थानेदार का ट्रांसफर कर दिया जिसे छात्रों के गुटों ने अपनी हार और जीत बतलाना शुरू कर दिया। कैम्पस पर मारपीट की घटनाऐं बढ़ने लगी और होस्टलों में खुल्लम खुल्ला राजनीतिक उपद्रवों और हिंसा का माहौल पैदा हो गया।

विश्वविद्यालय प्रशासन स्थिति पर नजर रखें रहा पर कोई भी प्रभावशाली कार्यवाही करना उचित नहीं माना गया। रामधन अब घबराने भी लगा पर इस चक्रव्यूह में से वापस निकलना भी इस स्थिति में उसके लिए आसान नहीं था। चुनाव में उसकी भी शक्ति इतनी बढ़ गई थी कि उसे अपराधी तत्वों से समझौता करना पड रहा था। उसने कुछ पैसे देकर अपने विरोधियों को चुप करने के प्रयत्न भी किये।

छात्र गुटों में तनाव बढ़ता गया और एक दिन रामधन के प्रचारकों पर एक युवा भीड़ ने भारी सशस्त्र हमला कर दिया जिसमें पांच छात्र गम्भीर रूप से घायल हो गये। इस स्थिति में मीडिया के प्रवेश से स्थिति नियन्त्र से बाहर होती चली गई। विद्यार्थियों के नाम पर कुछ बाहरी तत्वों ने पत्रकारों के कैमरे फोड़ दिये और कई पत्रकार घायल होने के कारण अस्पताल में भर्ती कराये गये।

प्रेस के व्यवहार के शत्रुतापूर्ण होते ही रामधन की छवि बिगड़ने लगी। उसे व्यक्तिगत रूप से भ्रष्ट तरीकों का दोषी बतलाया गया। एक पत्र ने तो भ्रष्टाचार निरोधक विभाग को एक खुला पत्र लिखकर रामधन के विरूद्ध जांच की मांग की।

सभी लोगों की अपील करने के बावजूद भी हालात बिगड़ते गये ओर एक दिन सुबह जब रामधन समर्थकों ने कैम्पस पर रैली निकाली तो एक विरोधी छात्र ने अपने पर पेट्रोल डालकर आग लगा ली। पुलिस के प्रयासों के बाद भी उसे बचाया नहीं जा सका।

दूसरे दिन शव यात्रा के दौरान स्थिति इतनी नाजुक हो गई कि सरकार ने कार्यवाही करते हुए शव यात्रा पर प्रतिबन्ध लगा दिया और विश्वविद्यालय छात्र संघ के चुनावों को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया।

रामधन चुपचाप अपने गांव लौट गया और रास्ते भर यह सोचता रहा कि लाखों रूपये खर्च करने के बाद यह सब क्यों और कैसे हुवा और अब आगे क्या होगा?

बोध प्रश्न

(1) इस पूरी कहानी में सामाजिक विरोधों के लिए कौन उत्तरदायी है और क्यों? विवेचना कीजिए।

(2) पुलिस द्वारा अपनी भूमिका निभाने में यहाँ किन-किन स्थितियों में क्या-क्या गलतियाँ हुई, समझा कर लिखिये।

(3) लोकतन्त्र में विरोधियों में झगड़े होना एक स्वाभाविकता है। क्या पुलिस को पहले से ही हस्तक्षेप करना चाहिए था अथवा स्थिति के बिगड़ने तक देखने रहना चाहिए था अथवा स्थिति के बिगड़ने तक देखते रहना चाहिए था।

(4) रामधन ने सामाजिक विरोध को किस तरह बढ़ाया और इसके लिए पुलिस अधिकारी कितने जिम्मेदार माना जा सकता है?

(5) राजनीतिक दल और नेता जातिगत समीकरणों को बढ़ावा देते है। पुलिस इस क्षेत्र में परिणाम भुगतती है। क्या इन्हें रोकने में भी पुलिस की कोई भूमिका है या हो सकती है।

(6) इस केस में ''आत्मदाह'' के कारण क्या-क्या हो सकते हैं? यदि आप एक पुलिस अधिकारी होते तो क्या यह दुर्घटना टल सकती थी।

(7) क्या विश्वविद्यालय को छात्र संघ चुनाव स्थगित करने चाहिए थे या दुर्घटना के बाद भी पुलिस तन्त्र को बदलकर चुनाव करवाना उचित होता?

(8) इस केस में पुलिस क्या-क्या कर सकती थी? उसने क्या कुछ नहीं किया और उसे क्या करना चाहिए था? विस्तार से लिखिये।

16.5 केस अध्ययन एव निष्कर्ष

एक दिन शाम के समय वाहन चालकों और जनता ने देखा कि पुलिस ट्रकों में भरकर अपने सिपाहियों को एयरपोर्ट रोड़ पर उतार रही है। थोड़ी ही देर में इन सिपाहियों ने सड़क के ट्रेफिक को रोककर जनता को दूसरे रास्तों से जाने को कहा क्योंकि कोई केन्द्रीय मंत्री इस रास्ते से आने वाला है। भीड़ भरे रास्ते में वाहन चालकों की कतारें लग गई और लोग आधे घण्टे तक अपने-अपने वाहनों में प्रतीक्षा करते रहें।

फिर कुछ लोगों ने पुलिस से पूछना शुरू किया कि वे वी.आई.पी. जिनकी सुरक्षा के लिए जनता को परेशान किया जा रहा है ''कौन है? और आ क्यों नहीं रहे है?'' पुलिस मैनों के पास कोई उत्तर नहीं था और और न ही वह आने वाले वी.आईपी. का नाम जानते थे। थोड़ी देर में दो लाल बत्ती धारी गाड़ियाँ आई और पुलिस ने उन्हें बिना विरोध निकल जाने दिया।

फिर वाहन चालक पुलिस से उलझने लगे और पुलिस ने बलपूर्वक उन्हें धकेल कर आगे आने से रोक दिया। जनता में आक्रोध बढ़ता रहा और कुछ देर में उनके सब्र के सभी बांध टूट गये। एक वरिष्ठ अधिकारी ने हवाई जहाज के लेट होने के कारण बतलाने चाहें, पर एक घण्टे की प्रतीक्षा से थके लोग कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थे। हंगामा बढ़ता गया और ट्रेफिक जैम में सैकड़ों वाहन फंस गये, जिनमें दो एम्बुलेंसे भी थी।

भीड़ में एक अफवाह यह फैली की कोई आतंकवादी प्लेन से आ रहा है और पुलिस उसे वी.आई.पी. बतला कर चुपचाप ले जाना चाहती है। पुलिस अधिकारी फोन पर बातें कर रहे थे और जनता रास्ता रूक जाने के कारण तरह-तरह की अफवाहों पर बहसकर वी.आई.पी. सुरक्षा के प्रश्नों पर पुलिस को गालियाँ दे रही थी। पुलिस बल भी पर्याप्त संख्या में नहीं था और वी.आई.पी. सुरक्षा के नियम मानने वाली पुलिस जनता से बात करने को भी तैयार नहीं थी। थोड़ी ही देर में पांच खाली गाड़ियाँ रास्ते से गुजरी और पुलिस ने सड़क को खाली कर ट्रेफिक को सड़क पर चलने के लिए अपने आप को हटा लिया।

16.6 सारांश

सामाजिक विरोध सामाजिक जीवन की एक सहज विशेषता है। ऐसा कोई मानव समाज हो ही नहीं सकता जिसमें मनु'यों के हित, विचार और व्यवहार आपस में न टकराते हों। ये टकराहटें या विरोध स्वस्थ एवं हानिकारक दोनों प्रकार की हो सकती है। प्रबन्ध विज्ञान की शोध यह संकेत देती है कि इन विरोधों का दबाना हानि कारक है। इन्हें स्वीकार कर इनसे निपटना होगा।

16.7 अभ्यास प्रश्न

(1) इस केस में सामाजिक विरोध की स्थितियाँ पैदा हो रही थी पर किसी तरह टल गई। क्या इन संघर्ष को पैदा करने के लिए पुलिस को उत्तरदायी माना जा सकता है?

(2) पुलिस को गोपनीय और संवेदनशील कार्य करने पड़ते है। क्या वह इन सारे तथ्यों को जनता को बतलायें, जिससे सामाजिक संघर्ष घट सकें?

(3) वी.आई.पी. सुरक्षा में लगे पुलिसकर्मी जनता के लिए परेशानी पैदा करते है। क्या वी.आई.पी. सुरक्षा के प्रबन्ध कड़ाई से किये जायें या जनता को यह बतलाया ही न जायें कि कोई वी.आई.पी. यात्रा कर रहा है?

(4) क्या जनता को इस केस की स्थिति में पुलिस का कहना मानना चाहिए या पुलिस को विधिवत सूचना न होने पर ट्रेफिक को रोकना ही नहीं चाहिए?

(5) पुलिस इस प्रकार की घटना से सामाजिक विरोध बढ़ाती है या घटाती है? सोचकर एक गम्भीर उत्तर लिखिये।

इकाई - 17

प्रतिद्वन्द्व का तात्पर्य

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रतिद्वन्द के प्रबंधन का तात्पर्य

17.2 प्रतिद्वन्द की प्रकृति

17.3 प्रतिद्वन्दता के प्रकार

17.4 पुलिस चुनौतियां

17.5 प्रतिद्वन्द का नियंत्रण / प्रतिद्वन्द का समाधान

17.6 प्रतिद्वन्द को हल करने के लिए रणनीति

17.7 प्रतिद्वन्द प्रबंधन तकनीक / शैलियों

17.8 पुलिस कार्यशैली में प्रतिद्वन्द प्रबंधन

17.9 सारांश

17.10 अभ्यास प्रश्न

प्रतिद्वन्द का तात्पर्य व्यवहार के परिणाम होने की अवधारणा है जो मानव जीवन का एक अभिन्न हिस्सा है। जहाँ भी बातचीत होगी वहाँ संघर्ष होगा और इसे कई तरह से परिभाषित किया जा सकता है और दुश्मनी, नकारात्मक दृष्टिकोण, विरोध, आक्रामकता, प्रतिद्वंद्विता और गलतफहमी के एक अभिव्यक्ति के रूप में, विचार किया जा सकता है।

यह दो विरोधी गुटों के बीच विरोधाभासी या कट्टर विरोधी हितों की स्थितियों के साथ जुड़ा हुआ है।

17.1 प्रतिद्वन्द के प्रबंधन का तात्पर्य

प्रतिद्वन्द व्यक्तियों या संगठन में समूहों के बीच असहमति का मतलब है। यह प्रतिद्वंद्विता या प्रतियोगिता का मतलब भी हो सकता है या व्यक्तियों में असहमति की धारणा के रूप में देखा जा सकता है।

"प्रतिद्वन्द ऐसी स्थिति है जहाँ दो या अधिक दलों अनपे आप को एक दूसरे के विपरीत समझते है - यह एक पारस्परिक प्रक्रिया है जो लक्ष्य या लक्ष्य प्राप्ति के तरीकों पर असहमति से उत्पन्न होती है।

बुनयादी पुलिसिंग -

एक उपभोक्ता को संभवतः कभी भी संतुष्ट नहीं कर सकने वाली सार्वजनिक सेवाओं में से एक पुलिस है।

दुनिया भर में यह शिकायत है कि एक औसत पुलिसकर्मी, विशेष रूप से वह जो सपाधन छोर पे होता है, वह सत्तावादी है।

अधिकांश समय वह समुदाय की जरूरत क्या है, के साथ सामंजस्य नहीं रखता और वह अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करता है।

"अंतर की उपस्थिति, हितों में अंतर होता है ।" - द्वारा Follett (फोल्लेट)

लुइस आर पॉन्डी ने परिभाषित किया है-

1) पूर्ववर्ती शर्तों, उदाहरण के लिए! व्यक्तियों के बीच संसाधनों, नीतिगत मतभेद आदि की कमी।

2) शामिल व्यक्तियों की प्रभावी स्तिथि उदाहरण तनाव, तनाव, दुश्मनी, चिंता, आदि

3) व्यक्तियों की संज्ञानात्मक स्तिथि जो कि उनकी जागरूकता की धारणा Conflict ful स्थितियों के बारे में और

4) परिवर्तित व्यवहार निष्क्रिय प्रतिरोध से अधिक आक्रामकता तक।

17.2 प्रतिद्वन्द की प्रकृति

ए) प्रतिद्वन्दता होती है जब व्यक्ति उपलब्ध वैकल्पिक पाठ्यक्रमों के बीच चयन करने में सक्षम नहीं होता।

बी) दो व्यक्तियों के बीच प्रतिद्वन्द का मतलब है कि वे परस्पर विरोधी विचारों, मूल्यों और लक्ष्यों रखते है।

सी) प्रतिद्वन्द एक गतिशील प्रक्रिया है । यह घटनाओं की एक श्रृंखला को इंगित करती है प्रत्येक प्रतिद्वन्द lnter locking श्रृंखला के प्रतिद्वन्द से बना है।

डी) प्रतिद्वन्द पार्टियों के द्वारा माना जाना चाहिए। यदि नहीं, तो यह आम तौर पर सहमत है कि एक प्रतिद्वन्द है , कोई विवाद मौजूद नहीं है ।

प्रतिद्वन्द एक नज़र : -

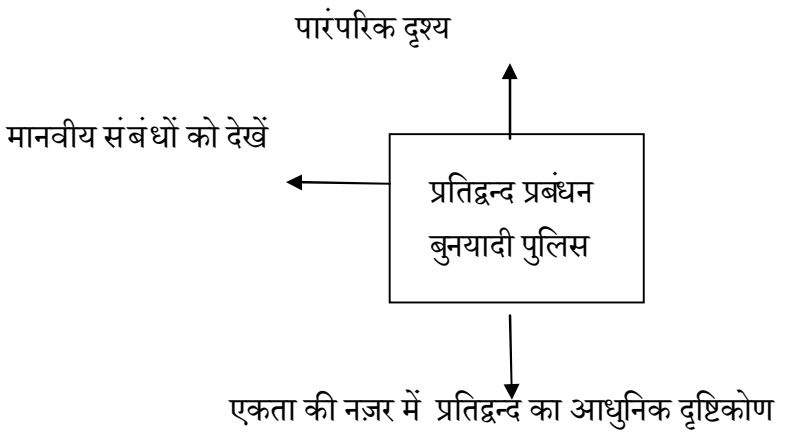

1) **पारंपरिक नज़र:-**

प्रतिद्वन्द करने के लिए सबसे पहले जो दृष्टिकोण आता है वह है कि प्रतिद्वन्द बुरा था। प्रतिद्वन्द को नकारात्मक देखा गया था और इसे अपनी नकारात्मक अर्थ को सुदृढ़ करने के लिए हिंसा और तर्कहीनता जैसे शब्दों के साथ प्रयोग किया जाता था

2) मानव संबंधों कि नज़र से: -

मानव संबंधों की स्थिति प्रतिद्वन्द को सभी समूहों और संगठनों में एक प्राकृतिक घटना मानने की बहस की। चूँकि प्रतिद्वन्द अपरिहार्य था। मानवीय संबंधों स्कूल प्रतिद्वन्द को स्वीकार करने की वकालत की। समर्थकों ने इसके अस्तित्व को युक्तिसंगत बनाया। यह समाप्त नहीं किया जा सकता है और कई बार प्रतिद्वन्द एक समूह के प्रदर्शन को लाभ भी पहुंचा सकता है ।

मानवीय संबंधों के के माध्यम ने 1970 के मध्य से 1940 तक प्रतिद्वन्द सिद्धांत पर अपना बोलबाला रखा।

3) इंटरेक्शन नज़र से प्रतिद्वन्द का आधुनिक दृष्टिकोण : -

यह मत इस विश्वास पर आधारित है कि प्रतिद्वन्द एक समूह के लिए न केवल एक सकारात्मक फ़ोर्स है , लेकिन एक समूह को प्रभावी ढंग से प्रदर्शन करने के लिए भी आवश्यक है।

यह पदात्ति एक सामंजस्यपूर्ण शांतिपूर्ण शांत और सहकारी समूह, का स्थिर उदासीन और परिवर्तन की ओर गैर जिम्मेदार बनने की संभावना से बचाने के लिए प्रतिद्वन्द को प्रोत्साहित करती है । Interaction।st दृष्टिकोण का प्रमुख योगदान। व्यवहार्य समूह को चल रहे प्रतिद्वन्द को एक न्यूनतम स्तर पर बनाए रखने के लिए जो कि समूह को पर्याप्त, महत्वपूर्ण और रचनात्मक बने रखे के लिए प्रोत्साहित करता है।

प्रतिद्वन्द या प्रतिद्वन्द के चरणों की प्रक्रिया

अव्यक्त प्रतिद्वन्द	चरण-I
कथित प्रतिद्वन्द	चरण-II
फेल्ट प्रतिद्वन्द	चरण-III
मैनिफ़ेस्ट प्रतिद्वन्द	चरण –IV
प्रतिद्वन्द परिणाम	चरण-v

चरण 1 - (नवीनतम प्रतिद्वन्द)

जब दो या अधिक दलों को वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए एक दूसरे की जरूरत पड़ती है तब संभावित दू प्रतिद्वन्द, अन्य पूर्ववृत्त के प्रतिद्वन्द अन्योन्याश्रय है । विभिन्न लक्ष्यों, और जिम्मेदारी की अस्पष्टता। वे अपने आप में एक प्रतिद्वन्द नहीं उत्पन करते जब वह मौजूद होते है, वे इसे संभव करते है कि नवीनतम प्रतिद्वन्द तब उठे जब कोई परिवर्तन हो , प्रतिद्वन्द के बजट में कटौती के कारण, संगठनात्मक दिशा में एक परिवर्तन से, व्यक्तिगत लक्ष्यों में एक परिवर्तन या पहले से ही अतिभारित टीम को एक नई परियोजना का काम देने से होने की संभावना होती है ।

चरण 2 - (कथित प्रतिद्वन्द)

यह वह स्तर है जहाँ पर सदस्यों को एक समस्या के बारे में पता चलता है , आवश्यकताओं की असंगति को माना जाता है और तनाव शुरू होता है जब पार्टियों क्या होगा के बारे में चिंता करना शुरू करती है , लेकिन किसी पार्टी को यह खुलकर नहीं लगता कि उन्हें धमकी दी जा रही है ।

चरण 3 - (संवेदित प्रतिद्वन्द)

इस स्तर पर पार्टियों भावनात्मक रूप से शामिल हो जाते हैं और मतभेद और विरोध हितों पर ध्यान केंद्रित करना शुरू करते हैं और कथित आंतरिक तनाव प्रतिद्वन्द को sharpen का विरोध करना शुरू कर देते है, और आसपास विशिष्ट,परिभाषित मुद्दों , और लोगों कि अपनी स्थिति के लिए एक भावनात्मक प्रतिबद्धता का निर्माण शुरू करने को ले कर कुंठा मणिभ शुरू हो जाता है ।

चरण 4 - (प्रकट प्रतिद्वन्द)

इस स्तर पर पार्टियों स्वयं के उद्देश्यों को प्राप्त करने और अन्य के विफल करने में, प्रतिद्वन्द व्यवहार, आक्रामक, हिंसक और अनियंत्रित संघर्ष निर्देशित करने के लिए हस्तक्षेप की सूक्ष्म अप्रत्यक्ष और अत्यधिक नियंत्रित शर्तों से भिन्न को मदद कि कार्यों में संलग्न है । संगठनात्मक स्तर पर, हड़ताल या तालाबंदी परिणाम है।

चरण 5 - (प्रतिद्वन्द परिणाम)

प्रतिद्वन्द का परिणाम अंत में या तो कार्यात्मक या बेकार प्रतिद्वन्द हो सकता है । जैसे प्रतिद्वन्द चरणों में से निकलता है समाधान अधिक कठिन हो जाता है दल अपने स्थान पर और बंद हो जाते है और अधिक आश्वस्त हो जाते हैं कि प्रतिद्वन्द जीत रहा है । जीत-जीत का परिणाम लाना आसान हो जाता है जब प्रतिद्वन्द का हताशा और नकारात्मक भावनाओं का सेट होने से पहेले पता लग जाता है ।

17.3 प्रतिद्वन्दता के प्रकार

1 **व्यक्तिगत स्तर पर प्रतिद्वन्दता**

मानव व्यवहार को प्रेरणा की जरूरत होती है । एक व्यक्ति को अपने बदलती जरूरतों को पूरा करने के लिए मूल रूप से किसी भी संगठन से जुड़ जाता है । वह खुद के भीतर एक प्रतिद्वन्द महसूस करता है जब उसे पता चलता है कि संगठन उसकी कथित मानकों के अनुसार उनकी जरूरतों को संतोषजनक तरीके से पूरा नहीं कर पा रही है । कीथ डेविस के शब्दों में, "संगठन एक मध्ययुगीन व्यवस्था है जो यातना देने के लिए स्थापित किये गए थे जो अपने व्यक्तिगत शिकार को दबाने और वशीभूत कर रहे है । वह एक असहाय अनुरूपता में रहता है, मनोवैज्ञानिक पूर्ति के लिए छीनी हुई चुनौती"। इसी तरह, क्रिस Argyls, लिखते हैं,"स्वस्थ व्यक्तियों की जरूरतों के बीच congrulty की कमी है" और संगठन की मांगों में " इस प्रतिकूल स्तिथि में वह एक महान मनोवैज्ञानिक प्रतिद्वन्द को महसूस करता है क्योंकि वह ना तो संगठन को छोड़ सकता है ना ही उसको सुधारने की स्थिति में है और ना ही वह संतुष्ट रहता है । नतीजतन, वह तनाव ग्रस्त हो जाता है और हताश रहता है । व्यक्तिगत स्तर प्रतिद्वन्द को, दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है -:

प्रथम) आंतर व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द।

द्वितीय) अंतर व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द।

I) आंतर व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द: - आंतर व्यक्तिगत

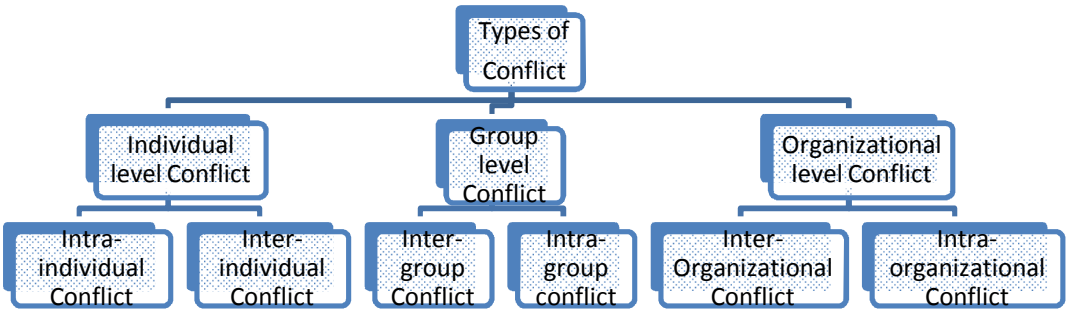

प्रतिद्वन्द एक व्यक्ति के भीतर पैदा होते है और मनोवैज्ञानिक प्रकृति के है। अनेको बार, व्यक्ति प्रतिद्वन्द से भरा रहता है, लेकिन वह यह अनुभव करने में विफल रहता है। हालांकि, वे अव्यक्त या प्रत्यक्ष हो सकते है। इस तरह के प्रतिद्वन्द आम तौर एक व्यक्ति के लक्ष्यों या भूमिकाओं से जुड़े हुए होते है और वह उन्हें कैसे हासिल या प्राप्त करना चाहता के ढंग से जुड़े होते है। इसलिए, अंतर व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द तीन प्रकार के होते हैं

क) हताशा के कारण प्रतिद्वन्द ख) लक्ष्य प्रतिद्वन्द ग) भूमिका प्रतिद्वन्द

1) **हताशा के कारण प्रतिद्वन्द**: - जब एक प्रेरित ड्राइव व्यक्ति के वांछित लक्ष्य पर, पहुंचने से पहले ही अवरुद्ध हो जाती है तब हताशा होती है। नीचे दिया गया आंकड़ा दिखाता है की क्या होता है। बाधा प्रत्यक्ष (बाहरी,या शारीरिक) या गुप्त (आवक, या मानसिक सामाजिक, मनोवैज्ञानिक) हो सकती है। हताशा मॉडल व्यवहार के को सामान्य रूप में ही नहीं, अपितु काम पर भी व्यवहार के विशिष्ट पहलुओं के बारे विश्लेषण करने में उपयोगी हो सकता है। कंपनी की संपत्ति की चोरी और काम पर हिंसा भी नौकरी हताशा को एक आक्रामक परिणाम रूप हो सकता है।

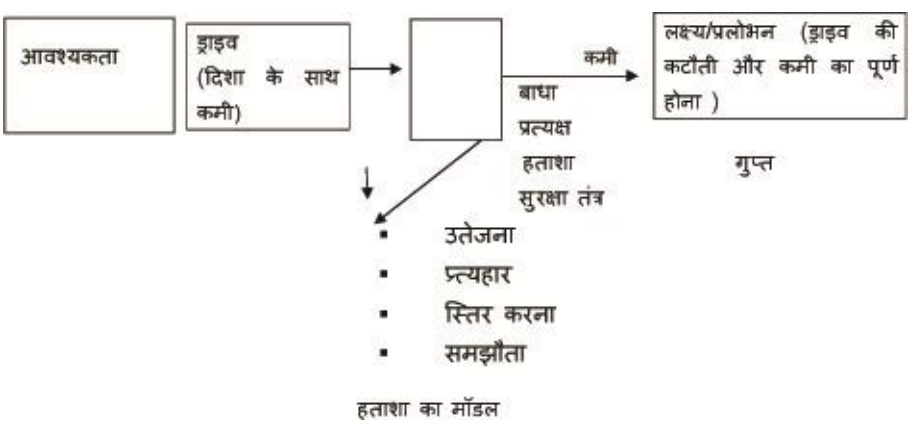

हताशा का मॉडल

एक हजार अमेरिकी कि काम पर हत्या कर दी गई, हालाकिं इन मौतों में विशाल बहुमत से काम से जुड़ी घटनाओं के परिणाम नहीं थी, नर हत्या अभी भी कार्यस्थल में मृत्यु का दूसरा प्रमुख कारण मन जाता है (परिवहन दुर्घटनाओं के पीछे) और महिलाओं के लिए कार्यस्थल मौत का प्रमुख कारण माना जाता है, और यह सुझाव दिया गया है कि कार्यस्थल नरहत्या संयुक्त राज्य अमेरिका में हत्या का सबसे तेजी से बढ़ता वर्ग है।

ख) लक्ष्य प्रतिद्वन्द: - एक व्यक्ति के लिए प्रतिद्वन्द का आम स्रोत है लक्ष्य जो की सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही पहलू रखता है और दो या अधिक प्रतिस्पर्धा लक्ष्य। हताशा में लक्ष्य प्राप्त करने से पहले ही अवरुद्ध हो जाते हैं, लक्ष्य प्रतिद्वन्द में दो या दो से अधिक प्रेरणा एक दूसरे ब्लॉक कर देते है । आम तौर पर लक्ष्य प्रतिद्वन्द के तीन अलग प्रकार से पहचाने जाते हैं-

1) पद्दति-पद्दति प्रतिद्वन्द- जहाँ पर व्यक्ति को दो या दो से अधिक सकारत्मक लेकिन भिन्न लक्ष्यों के दृष्टिकोण रखने के लिए प्रेरित किया जाता है उदाहरण के लिए, व्यक्ति दो आकर्षक नौकरियों के बीच फ़स सकता है।

2) पद्दति- आनाकानी प्रतिद्वंद – जहाँ कि एक ही समय में एक व्यक्ति को लक्ष्य की ओर प्रेरित किया जाता है और इसे दूर रहने के लिए भी प्रेरित किया जाता है । एकल लक्ष्य में ही व्यक्ति के लिए सकारात्मक और नकारात्मक दोनों विशेषताऐ शामिल होते है । उदाहरण के लिए , दिल्ली विश्वविद्यालय में एक शिक्षक बहुत अच्छा काम की पेशकश की जा सकती है।

3) बचाव - बचाव प्रतिद्वन्द - जहां व्यक्ति को दो या अधिक नकारात्मक लेकिन परस्पर अनन्य लक्ष्यों से बचने के लिए प्रेरित किया जाता है, उदाहरण के लिए, एक कर्मचारी को अपनी वर्तमान नौकरी नापसंद हो लेकिन और दूसरी नौकरी छोड़ने का विकल्प ओर दूसरी नौकरी देखने का विकल्प और भी कम आकर्षक हो सकता है।

घटती-बढती मात्रा में लक्ष्य प्रतिद्वन्द के इन रूपों में से प्रत्येक आधुनिक संगठन में मौजूद है । लेकिन पद्दति -परिहार प्रतिद्वन्द विश्लेषण करने के लिए सबसे अधिक प्रासंगिक है।

ग) **भूमिका प्रतिद्वन्द:** - एक व्यक्ति काफी भूमिकाओं को निभाता है लेकिन जो सभी भूमिकाओं वह संगठन में लाता है, उसके व्यवहार के प्रासंगिक हैं, संगठनात्मक व्यवहार के अध्ययन में, हालांकि, उसकी संगठनात्मक भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है । एक संगठन में हर व्यक्ति को एक विशिष्ट भूमिका का प्रदर्शन करते हुए एक विशेष तरीके से व्यवहार करने की उम्मीद की जाती है । जब एक भूमिका की उम्मीद महत्वपूर्ण ढंग से व्यक्ति द्वारा प्रत्याशित व्यवहार से अलग या विपरीत होती हैं, तो वह भूमिका प्रतिद्वन्द में पड जाता है। एक उम्मीद को पूरा करने के लिए अन्य को खारिज किए बिना कोई और रास्ता नहीं है।

भूमिका प्रतिद्वन्द चार प्रकार के हो सकते हैं:

I) आंतर प्रेषक भूमिका प्रतिद्वन्द: अंतर प्रेषक भूमिका विरोधाभास वहां हो सकता है जहाँ एक सदस्य से उम्मीदें असंगत हो। यह होता है जब एक व्यक्ति को निर्दिष्ट सीमा के भीतर एक कार्य प्रदर्शन करने का आह्वान किया जाता है, लेकिन सीमा के भीतर काम करना संभव ना हो

II) भीतरी-प्रेषक भूमिका प्रतिद्वन्द: - अंतर - प्रेषक भूमिका विरोधाभास होता है जहाँ पर एक प्रेषक से उम्मीदों एक या एक से अधिक अन्य प्रेषकों से प्रतिद्वंदित हो

III) इंटर भूमिका प्रतिद्वन्द : इंटर भूमिका प्रतिद्वन्द होता है जब व्यक्ति एक साथ दो या अधिक भूमिकाओं में रहे रहा हो और उन विभिन्न भूमिकाओं के साथ जुड़े उम्मीदों असंगत हो

Iv) आत्म- भूमिका संघर्ष: - यह तब होता जब भूमिका अवशाक्तएं, मूल्य व्यक्ति की क्षमता को पर कर जाती है।

2) अंतर व्यक्तिगत (व्यक्तिगत) प्रतिद्वन्द:- अंतर व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द उत्पन्न होता है जब दो व्यक्तियों के बीच प्रतिस्पर्धा डराने की चीजों को प्राप्त करने के लिए होती है जैसे बिजली, स्थिति, पदोन्नति या संसाधनों के रूप में या उनके अलग राय, दृष्टिकोण के कारण।एक संगठन में व्यक्तियों के बीच असहमति कई विविध कारणों से उत्पन्न हो सकती है:

एक) व्यक्तिगत मतभेद : हर किसी की उसके या उसकी परवरिश , सांस्कृतिक और परिवार की परंपराओं , और समाजीकरण की प्रक्रिया की वजह से का एक अनूठा पृष्ठभूमि है । कोई भी एक ही परिवार की पृष्ठभूमि , शिक्षा , और मूल्यों है , का नहीं है यह मतभेद प्रतिद्वन्द का एक प्रमुख स्रोत हो सकता है । असहमति stemming से मतभेद "अक्सर अत्यधिक भावुक हो जाते हैं और नैतिक आयाम ले लेते है । "एक मतभेद कि तथ्यात्मक रूप से कौन सही है , आसानी से एक कड़वी बहस में बदल जाता है जो नैतिक रूप से सही कौन है पर होता है।

क) **सूचना की कमी:** यह प्रतिद्वन्द का सोत्र संगठन में संचार टूटने का परिणाम है। इस प्रतिद्वन्द में हो सकता है कि दो लोगों अलग अलग जानकारी का उपयोग कर रहे हो या और दोनों को ही गलत सूचना हो। व्यक्तिगत मतभेदों के विपरीत , इस प्रतिद्वन्द का स्रोत भावनात्मक रूप से प्रभारित है और थोड़ा असंतोष है।

ग) **भूमिका असंगति : -** इस प्रकार का प्रतिद्वन्द इंट्रा व्यक्तिगत भूमिका प्रतिद्वन्द और अंतर समूह प्रतिद्वन्द दोनों से तैयार पारस्परिक प्रतिद्वन्द है ।विशेष रूप से, आज की क्षैतिज संगठनों में, प्रबंधकों के कार्यों और कर्त्तव्य अत्यधिक अन्योन्याश्रित है । हालांकि, इन प्रबंधकों की व्यक्तिगत भूमिका असंगत हो सकती है।

घ) **पर्यावरण तनाव :** इस प्रकार का प्रतिद्वन्द के एक तनावपूर्ण माहौल से परिलक्षित किया जा सकता है। वातावरण में दुर्लभ या सिकुड़ते संसाधनों , आकार घटाने , प्रतिस्पर्धी दबाव , या uncertalnly की उच्च डिग्री के द्वारा विशेषता, सभी प्रकार के प्रतिद्वन्द होने कि अधिक संभावना हो होती है।

2) **समूह स्तर प्रतिद्वन्द:-**

प्रतिद्वन्द समूह स्तर पर हो सकता है । एक समूह दो या दो से अधिक व्यक्तियों जो कि इस तरह से बातचीत करते है ताकि प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करे और दूसरों से प्रभावित हो। समूह हर संगठन में मौजूद हैं और वे अपने सदस्यों के व्यवहार को प्रभावित करते है । वे अपने सदस्यों के व्यवहार को प्रभावित ही नहीं करते, बल्कि वे अन्य समूहों पर और पूरे संगठन को प्रभावित करते है । इस बातचीत

की प्रक्रिया में दो प्रकार के प्रतिद्वन्द होते है: अंतर समूह (समूह के भीतर ही) और अंतर – समूह (समूह के बीच)।

I) अंतर समूह प्रतिद्वन्द: अंतर समूह को समूह की विशेषताओं के रूप में और कुछ हद तक पारस्परिक प्रतिद्वन्द के रूप में सोचा जा सकता है खासकर अगर जब की दो व्यक्ति एक ही संघ से हो। एक समूह मैं ऐसे व्यक्तियों कि संख्या होती है जिनकी बातचीत एक निश्चित समय पर उचित मूल्यों, मानदंडों, और प्रतिबंधों की एक प्रणाली को उत्पन्न करती है जो कि उनके कार्य पर जिस पर वे काम कर रहे हैं के उपयुक्त होता है । जिसने अच्छी तरह से परिभाषित भूमिका और स्थिति संबंधों का एक सेट बनाया है, जो की अन्योन्याश्रित है। अंतर समूह प्रतिद्वन्द तीन स्थितियों में उत्पन्न हो सकते है:

क) जब समूह कार्य के दौरान एक नवीन समस्या का सामना करता है।

ख) जब समूह में नए मूल्यों सामाजिक परिवेश से आयात किये जाते हैं, और

ग) एक व्यक्ति के अतिरिक्त समूह भूमिका उसके अंतर समूह की भूमिका के साथ प्रतिद्वन्द में आती है। लोगों जब विभिन्न सामाजिक - आर्थिक पृष्ठभूमि से और और विभिन्न राजनीतिक और धार्मिक विचारों से आते हैं तब अंतर समूह प्रतिद्वन्द अधिक हो जाता है ।

II) **अंतर समूह प्रतिद्वन्द:** अंतर समूह प्रतिद्वन्द विभिन्न समूहों की बातचीत से उत्पन्न होता है । संगठन में कई कारक हैं जो अंतर - समूह संबंधों को निर्धारित करते है। यह कारक दो या अधिक समूहों के बीच संबंधों को प्रभावित कर सकते है। अगर ये कारक सकारात्मक नहीं हैं, तो वे समूहों के बीच प्रतिद्वन्द पैदा करते है। ये कारक हैं ;

क) संसाधन के लिए प्रतियोगिता : अधिकांश संगठन के पास आज बहुत सीमित संसाधन है। संगठन के भीतर समूहों बजट धन , अंतरिक्ष , आपूर्ति , कर्मियों , और सहायता सेवाओं के लिए होड़ करते है।

ख) कार्य अन्योन्याश्रय : संगठन में दो समूहों आपसी रूप से एक दूसरे पर निर्भर हैं या एक तरफा ही (अनुक्रमिक तकनीकी प्रक्रिया में) तो अधिक से अधिक प्रतिद्वन्द हो जाता है, यदि समूहों को एक दूसरे से स्वतंत्र हैं जितने समूहों के अधिक विविध उद्देश्य, प्राथमिकताएँ, और अन्योन्याश्रित कर्मियों के समूह, (उदाहरण के लिए , अनुसंधान और उत्पादन), और अधिक प्रतिद्वन्द होने कि संभावना हो जाती है।

ग) क्षेत्राधिकार अस्पष्टता : में "मैदानी" समस्या या अतिव्यापी जिम्मेदारियों शामिल हो सकती है। उदाहरण के लिए, जब एक समूह और अधिक नियंत्रण या वांछनीय गतिविधियों के लिए ऋण, या उसके भाग और अवांछनीय गतिविधियों के लिए किसी भी जिम्मेदारी को देने के लिए प्रयास करता हैं, तो प्रतिद्वन्द उत्पन्न हो सकता है।

घ) प्रतिष्ठा संघर्ष: जब एक समूह अपनी स्थिति में सुधार करने का प्रयास करता हैं और दूसरा समहू इसे पदानुक्रम में अपनी स्थिति के लिए एक खतरे के रूप देकता है तब प्रतिष्ठा संघर्ष होता है । एक समूह को यह महसूस हो सकता है कि उसेके साथ दूसरे समूह कि तुलना में Inequltably व्यवहार किया जा रहा हैं जो समहू पुरस्कार , नौकरी कार्य, काम करने की

स्थिति , विशेषाधिकार , या स्थिति के प्रतीक के मामले में बराबर का दर्जा रखता है ।मानव संसाधन विभागों द्वारा न्यायसंगत रूप से अक्सर महसूस होता है कि उनेह विपणन, वित्त , और संचालन विभाग के संबंध मेंnequltably व्यवहार मिलता है।

4) संगठनात्मक प्रतिद्वन्द:-

एक संगठनात्मक स्थिति में, प्रतिद्वन्द अलग अलग प्रकार से प्रकट हो सकता है । इस तरह के प्रतिद्वन्द संगठन में ही (अंतर - संगठनात्मक) या विभिन्न संगठनों के बीच (इंट्रा संगठनात्मक) के भीतर हो सकता है। अंतरराज्यीय संगठनात्मक प्रतिद्वन्द फिर से विभिन्न रूपों में हो सकता है- उदाहरण के लिए व्यक्तिगत स्तर पर और समूह स्तर पर. चूंकि, यह सभी भाग संगठन के भाग रहे हैं, उन के बीच प्रतिद्वन्द संगठन के लिए ज्यादा चिंता का विषय है।

।) आंतर संगठनात्मक प्रतिद्वन्द: एक संगठन में संघर्ष के कारण कई हैं, लेकिन आंतरिक उपभेदों की मुख्य रूप से तीन प्रकार से पहचान की जा सकती है:

क) क्षैतिज प्रतिद्वन्द: क्षैतिज प्रतिद्वन्द एक संगठन में एक ही पदानुक्रम स्तर पर कर्मचारियों या विभागों के बीच प्रतिद्वन्द को दर्शाता है। विभागों के बीच प्रतिद्वन्द का स्रोत उप अनुकूलन की ओर दबावों का होता है । प्रत्येक विभाग स्वतंत्र रूप से अपनी ही विभागीय लक्ष्यों को प्राप्त करने की कोशिश में उप अनुकूलन कर सकते है । उदाहरण के लिए, उत्पादन विभाग में लंबे समय तक किफायती रन पसंद कर सकते हैं लेकिन बिक्री विभाग त्वरित प्रसव पर जोर देते हैं, जब फिर दो विभागों के कार्यात्मक एक दूसरे पर निर्भर हैं, एक विभाग के प्रदर्शन में गिरावट गंभीर प्रतिद्वन्द को जन्म दे सकती है।

ख) लम्बवत प्रतिद्वन्द : लम्बवत प्रतिद्वन्द संगठन में व्यावसायिक सीढ़ी के विभिन्न स्तर के लोगों को अलग करती है । यह एक संगठन में विभिन्न स्तरों के बीच किसी भी प्रतिद्वन्द को दर्शाता है । यह आम तौर पर उच्चतर-अधीनस्थ संबंध में होता है। सी.जी.स्मिथ ने लम्बवत खड़ी प्रतिद्वन्द के लिए तीन कारणों की पहचान कि:

।) स्तरों के बीच अपर्याप्त संचार।

।।) संगठनात्मक पदानुक्रम में अलग स्थिति कब्जे में स्थिति धारकों के बीच के मतभेद से अनिवार्य रूप से प्रतिद्वन्द उठता है, और

।।।) विभिन्न स्तरों में सदस्यों के बीच साझा धारणाओं और व्यवहार की एक विशिष्ट कमी है

ग) लाइन और कर्मचारियों के प्रतिद्वन्द : विवाद और प्रतिद्वन्द लाइन और कर्मचारियों की अवधारणा में निहित है । लाइन सामान्य और कर्मचारियों विशेषज्ञों के बीच न्यायसंगत मात्रा में विशेषज्ञता, और अधिकार भूमिकाओं को विभाजित करना और वितरित करना आसान काम नहीं है । अवधारणा विभिन्न कार्यों को दो श्रेणियों में बाटने के लिए अधिकृत करता है: पदानुक्रम और गैर श्रेणीबद्ध, कम और उच्च स्तर के पदों का सृजन अपेक्षित और वास्तविक अधिकार के बीच विसंगति का सृजन सभी पार्टियों में असंतोष और निराशा प्रधान करने के लिए

।।) अंतर संगठनात्मक प्रतिद्वन्द: अंतर संगठनात्मक बातचीत विभिन्न संगठनों के बीच प्रतिद्वन्द कराती है । हालांकि, यह जरूरी नहीं है कि इस तरह की बातचीत का परिणाम प्रतिद्वन्द में हो।

अंतर संगठनात्मक प्रतिद्वन्द में शामिल हो सकते हैं:

क) समान उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के संगठनों के बीच प्रतिद्वन्द ;

ख) सरकारी एजेंसी और संगठन के बीच प्रतिद्वन्द ;

ग) प्रधान कार्यालय और एक विनिर्माण इकाई के बीच प्रतिद्वन्द

आखरी वाली को संगठनात्मक नियमों और प्रक्रियाओं के द्वारा नियमित किया जाता है, अन्य प्रकार के प्रतिद्वन्द विशेष रूप से राज्य के कानूनों, प्रशासनिक एजेंसियों, अदालतों, और विनियामक आयोग द्वारा, सामाजिक कार्यों से नियंत्रित होते है ।

प्रतिद्वन्द(कारण) के लिए प्रतिद्वन्द में शामिल मुद्दे:

1) तथ्य: - लोगों की समस्या की परिभाषा पर असहमति से विरोध हो सकता है , प्रासंगिक समस्या से संबंधित तथ्यों, या उनके अधिकार और शक्ति प्रतिद्वन्द का कारण हो सकते है ।

2) लक्ष्य: - कभी कभी, दो पार्टियों जो लक्ष्यों को हासिल करना चाहते हैं उन पर असहमति हो सकती है । पार्टियों के लक्ष्यों के बीच संबंध को असंगत के रूप में देखा जा सकता है परिणाम कि एक पार्टी लक्ष्य को प्राप्त कर सकती है आदेश की कीमत पर।

3) विधि: - यदि लक्ष्यों को एक ही माना जाता है तो भी लक्ष्यों को प्राप्त किया जाने वाले माध्यम में, प्रक्रियाओं, रणनीति, आदि में अंतर हो सकता है

4) मुल्य: - मूल्यों-नैतिक मानक, निष्पक्षता के लिए विचार, न्याय आदि को लेकर मतभेद हो सकते है । ये मतभेद व्यक्तियों में अधिक स्वभाव के हैं और लक्ष्य या उन्हें प्राप्त करने के तरीकों के चुनाव को प्रभावित कर सकते है ।

एक संगठन में प्रतिद्वन्द व्यक्तिगत स्तर पर हो सकता है अंतर वैयक्तिक और अंतर व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द के रूप में , समूह स्तर पर इंट्रा समूह और अंतर समूह प्रतिद्वन्द के रूप में , और संगठन के स्तर पर इंट्रा संगठनात्मक और अंतर संगठनात्मक प्रतिद्वन्द के रूप में। इन सभी स्तरों पर प्रतिद्वन्द को समझना इसके प्रभावी प्रबंधन के लिए आवश्यक है ।

17.4 पुलिस चुनौतियां

बहुत से इस जटिल स्थिति को समझने में सक्षम नहीं है । और यह पुलिस की कठोर और निराधार आलोचना को समझाता है । कुछ जो शामिल जटिलताओं को समझते है वे स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं कि भारतीय पुलिस काफी अच्छा प्रदर्शन कर रही है अगर महान बाधाओं पर विचार करे जो कि बाहरी नियंत्रण और प्रभाव से कंट्रोल की जाती है ।

देश में पुलिस सेवा के औसत उपभोक्ता पुलिसकर्मी से सचमुच चंद्रमा की मांग करते या रखते है । उम्मीद : उकसाया जाये तब भी न्यूनतम बल के साथ शांति बनाए रखें। दुनिया में सर्वश्रेष्ठ पुलिस बल भी इस लक्ष्य को हासिल नहीं कर सकते है । जैसे एक शाकाहारी बाघ नहीं हो सकता, उसी तरह अवसर की

मांग पर बल प्रयोग नहीं करे ऐसा पुलिस बल नहीं हो सकता। मैं विश्वास करने के लिए इच्छुक हूँ कि एक भ्रष्ट राजनीति और एक विशाल आबादी-जिसका की एक बड़ा हिस्सा अर्द्ध –साक्षर है यदि असाक्षर नहीं है द्वारा थोपे गए दबाव में तो पुलिस ने खुद का एक उचित स्पष्टीकरण दे दिया है और देश को एक साथ रखा है।

उसी समय, मेरी अपील उन पुलिसकर्मियों को इनाम देने की है -खासतोर पे जमीनी स्तर पर- जिन्होंने विशेष रूप से अपना सर्वश्रेष्ठ दिया है और प्रभावशाली depredators को रोकने की हिम्मत कि है, चाहे वे अपनी खानों को लूटने वाले या जो लोग रेत चोरी करते है, क्यूंकि दोनों संसाधनों राज्य के है।

मैंने हमेशा से ये वकालत की है कि भारतीय पुलिस को सौंपें कार्यों की जटिलताओं की समझने की जरूरत है। हाल के कुछ घटनाओं ने मुझे विस्वास दिलाया है कि प्रभावी और पेशेवर पुलिस के लिए चुनौतियों सिस्टम पर ही हमला कर सकती है। इस दर से पोलिसिंग खत्म हो जायेगी, विशेष रूप से चार महानगरों में, जो कि राजनीतिक साज़िश का एक बड़ा केंद्र बन गए है।

महानगरों में हाल के कुछ उदाहरणों ले, जहाँ पुलिस को लगभग एक असंभव भूमिका को पूरा करना पड़ा भीड़ और समाज विरोधी तत्वों की वृद्धि के कारण जो स्थापना या विरोध करने वालो के द्वारा समर्थित था।

ए) दिल्ली पुलिस की रामलीला मैदान से आंदोलनकारियों को साफ करने के लिए आलोचना की गई थी जब एक ही समूह से वहां कानून और व्यवस्था के लिए खतरा था। बिंदु ये बनाया गया कि पुलिस ने एक शांतिपूर्ण भीड़ के खिलाफ बेकार में काम किया। इस तर्क ने अगली सुबह भीड़ और अधिकारियों के बीच आयोजित एक तसलीम की संभावित स्थिति कि ओर ध्यान नहीं दिया। मैं यहां बाबा जिसके लिए कारण खड़ा है,उसकी की खूबियों पर चर्चा नहीं कर रहा हूं। मैं पूरी तरह से बाबा और उनके अनुयायियों द्वारा पुलिस, के समक्ष रखी दुर्दशा पर ध्यान केंद्रित कर रहा हूँ हिंसा के लिए आखिरकार जवाबदेह कौन होगा जो अनियंत्रित भीड़ के गद्दीदार उपचार से बहती है।

बी) मुंबई कि तरफ चले तो, 11 अगस्त को असम में हाल के जातीय हिंसा के खिलाफ एक लोकतांत्रिक विरोध को बाधित किया गया और बड़े पैमाने पर हिंसा हावी हो गई। नतीजतन, कम से कम दो की जान चली गई थी और कई पुलिसकर्मियों सहित कई लोग घायल हो गए थे। हिंसा, अप्रत्याशित थी यद्यपि कुछ रिपोर्टों ने सुझाव दिया कि खुफिया पुलिस विपरीत कि ओर ओर इशारा कर रही है। मुंबई के पुलिस आयुक्त ने किसी भी खुफिया विफलता से इनकार किया।

बैठक के आयोजकों ने दावे के साथ कहा की उनके शांतिपूर्ण सभा में कुछ असामाजिक तत्वों द्वारा घुसपैठ की गई थी। (एक रिपोर्ट के अनुसार, लाठी, डंडे और तलवार से लैस एक भीड़ कुर्ला स्टेशन से यात्रा की थी और आजाद मैदान पर उतरे) सत्य कभी नहीं उभरेगा। बिंदु है कि कैसे पुलिस एक ऐसी स्थिति का सामना कैसे करे जहाँ वह एक लोकतांत्रिक विरोध की अनुमति देती है, लेकिन यह एक शरारती आयोजक द्वारा या विरोधी तत्वों द्वारा हताश कर दिया जाता है। क्या होगा अगर पुलिस समान रूप से बिना डर या कानून और व्यवस्था बनाए रखने के पक्ष में बल का उपयोग करे? क्या यह उस दिन की सरकार द्वारा समर्थित हो जाएगा? कहा जाता है कि महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री इस मुद्दे पर व्यक्तिगत रूप

से प्रधानमंत्री को जानकारी देने के लिए राजधानी गए थे। यह तथ्य कि उन्होंने ऐसा किया इतना साफ संकेत था कि 11 अगस्त को हिंसा में ऐसे बहुत कुछ पहलुओं हैं जोकि सार्वजनिक डोमेन में नहीं लाए जा सकते थे। एक संदेह है कि जो तत्व चीख़-साफ मुख्यमंत्री के सामने नहीं लाये गए थे हिंसा के पीछे थे। मामला जो भी हो, मुंबई जैसे विशाल महानगर की पोलिसिंग करना अब किसी भी पेशेवर लाइनों पर नहीं किया जा सकता है, लेकिन राजनीति की जरूरतों के अनुरूप किया जाना होगा

सी) दक्षिण कि तरफ चले तो, अब चेन्नई में एक उत्कृष्ट पुलिस आयुक्त आया है , जो बहुत नवाचार लाए है, वह सफल होने के लिए योग्य है । उसके नेतृत्व के तहत, शहर पुलिस ने हाल ही में एक तमिल एलाम समर्थकों संगठन (TESO) को रोयापेट्टा वाईएमसीए मैदान पर सम्मेलन के आयोजन के लिए अनुमति से इनकार किया। मैं सोचता हूँ कि यह एक समझदार कदम था क्योंकि शामिल भावनाएँ विस्फोटक थी हालांकि पुलिस ने इनकार के लिए अन्य कारणों का हवाला दिया जैसे कि स्थल की सरकारी अस्पताल से निकटता। मद्रास उच्च न्यायालय ने हालांकि, इस तरह के एक आदेश को अनियमित बताया और एक ही जगह पर मिलने के साथ आगे जाने के लिए आयोजकों को अनुमति दी। बेशक, इस प्रक्रिया में, यह क्रम बनाए रखने के लिए जिम्मेदारी सहित, आयोजकों पर कुछ शर्तों को लगायापरिकल्पित रूप से बोलने पर , क्या होता अगर उच्च न्यायालय ने पुलिस के आदेश का समर्थन किया होता और आयोजकों प्रतिबंध को धता देते ? हंगामा और हिंसा हो गई होती। यह दुविधा है जो सारी दुनिया कि पुलिस झेलती है । राजनीतिक दल जब तक, संयम और अनुग्रह नहीं प्रदर्शित करती पुलिस उनके बीच sandwlched, पुलिस, की अशुद्धि होती। मेरे मामले में ऐसा नहीं है कि ऐसी दुविधाओं अकेले भारतीय पुलिस के लिए समस्या है , हमें और कई लोकतंत्रों के बीच के अंतर है कि राजनीति और पुलिस अलग क्षेत्र है अधिकांश पश्चिम में। यह संकट की बात है कि भारत में किसी भी हस्ताक्षर के शायद ही संकेत है कि जो सत्तारूढ़ बसेरा वोह दुर्व्यवहारित - पुलिस पर नियंत्रण की बागडोर देने के लिए तैयार है

17.5 प्रतिद्वन्द का नियंत्रण / प्रतिद्वन्द का समाधान

प्रतिद्वन्द के समाधान के लिए प्रक्रिया

निम्नलिखित कदम पहले से ही पैदा हुई एक प्रतिद्वन्द को हल करने में लिया जाना चाहिए :

1) प्रारंभिक कदम : यह कदम प्रतिद्वन्द की पूरी जानकारी का ज्ञान और प्रतिद्वन्द कि स्थिति नोट करने के लिए पहली बात है । अधिक अग्रिम प्रतिद्वन्द कि स्थिति, अधिक उसको रोकने के प्रयासों की जरूरत इसके अलावा इस्तेमाल कि गई रणनीति भी प्रतिद्वन्द के चरण पर निर्भर है ।

2) समस्या निदान : इस चरण के तहत, शामिल मुद्दों का विश्लेषण किया जाता है और प्रतिद्वन्द किस के बारे में है यह समझ में आ जाना चाहिए। यह कारण, तथ्यों , लक्ष्य, तरीकों और मूल्यों से पैदा हो सकता है । निदान में अगली बात है कि क्यों इन मतभेदों से समस्य पैदा हुई है । तो अंतर , अनौपचारिक, अवधारणात्मक, भूमिका कारकों और की तरह हो सकते है ।

3) विरोध नियंत्रण मोड: कई प्रतिद्वन्द से निपटने के तरीके और को इन पांच में वर्गीकृत किया गया है:

I) प्रतिद्वन्द की उपस्थिति से बचने के लिए और इस उद्देश्य के लिए समान विचारधारा वाले लोगों को नियुक्त किया जाना चाहिए

II) दोनों दलों के लिए निराशा पैदा करने वाले दलों की भावनाओं को दबाने के लिए यानी, सतह के लिए प्रतिद्वन्द की अनुमति नहीं है । इस दृष्टिकोण के अंतर्गत , नेता सर्वोच्च है और समूह के लिए और नेता के प्रति वफादारी वांछित है।

III) मध्यस्थता: मध्यस्थता के मध्यम से मतभेदों को व्यापक रूप खत्म करके उनके मामले के गुण और दोष पर प्रकाश डालना,

Iv) पार्टियों को उनके हिसाब बराबर करने के लिए मौका दे: यह बेहतर है जब दोनों दल अपने विचार के लिए एक कठोर रुख अपनाएँ

v) म्युचुअल समस्या को सुलझाना : अगर दोनों दल प्रतिद्वन्द को हल करने में रुचि रखते हैं और उनके रुख को कठोर नहीं हैं जब यह दृष्टिकोण उपयुक्त है ।

17.6 प्रतिद्वन्द को हल करने के लिए रणनीति

प्रतिद्वन्द को हल करने के लिए विभिन्न रणनीतियों को इस तरह दिखाया जा सकता है:

1) **आंतर निजी प्रतिद्वन्द को हल करने के लिए रणनीति:** अंतर व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द हताशा से उत्पन्न होती है, प्रतिस्पर्धा भूमिकाओं, या लक्ष्यों के सकारात्मक या नकारात्मक पहलुओं होने से, हताशा से प्रतिद्वन्द अवरुद्ध लक्ष्य प्राप्ति, बाधाओं (गुप्त या प्रकट) को हटाने से बाहर होने वाली हद तक इस प्रतिद्वन्द को सुलझाने में मदद मिलेगी। यह अपने कैरियर में उन्नति के लिए अपने कर्मचारी का रास्ता साफ करने के लिए प्रबंधक की जिम्मेदारी है ।

I) संज्ञानात्मक मतभेद के प्रसिद्ध सिद्धांत व्यक्तिगत दृष्टिकोण प्रतिद्वन्द को हल करने में मदद करते है। सरल शब्दों में , मतभेद लोगों में बनाए गए मनोवैज्ञानिक परेशानी या प्रतिद्वन्द की स्थिति है ।जब वे एक निर्णय करने के लिए दो या अधिक लक्ष्यों या विकल्प के साथ सामना करते हैं

II) परिहार परिहार प्रतिद्वन्द - प्रतिद्वन्द के कारण की जांच और समस्याओं को हल करके हल किया जा सकता है ।

III) भूमिका प्रतिद्वन्द - भूमिकाओं की संख्या को कम करके और उनके लिए प्राथमिकताएं तय करके हल किया जा सकता है । एक बार प्राथमिकताओं निर्धारित कर दी, भूमिकाओं में से कोई अतिव्यापी नहीं होना चाहिए

Iv) एक संगठनात्मक सदस्य में अंतर व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द की ज्यादातर अपने या अपने व्यक्तिगत और संगठनात्मक लक्ष्यों के बीच अनुकूलता विकसित करके हल किया जा सकता है।

2) **अंतर व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द का हल**: भीतर व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द को कम करने के लिए सुझाव रणनीतियों भी व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द को हल करने के लिए उपयोगी हो सकती है । पारस्परिक प्रतिद्वन्द को हल करने के लिए अतिरिक्त दृष्टिकोण निम्न हैं :

I) हार-हार: विवाद सुलझाने के लिए एक दृष्टिकोण में, दोनों पार्टियों खोने के लिए कड़ी हो जाती है। यह दृष्टिकोण कई रूप ले सकता है। कई तरीकों में से एक है विवाद को एक समझौता या मध्यम जगह ले जाना। एक दूसरा दृष्टिकोण है एक पार्टी को भुगतान देना । एक तीसरा दृष्टिकोण है मध्यस्थ के रूप में एक तीसरी पार्टी को शामिल करना। अंतिम दृष्टिकोण है दोनों दलों के विरोध को हल करने के लिए मौजूदा नियमों या नौकरशाही के नियमों का सहारा लेना

II) जीत-हार: इस रणनीति में प्रतिद्वन्द में एक पार्टी जीतने के लिए सभी संसाधनों को मार्शल करने कोशिश करता है, और अन्य पार्टी हार जाती है । जीत हार की रणनीति के बेहतर उदाहरण अधीनस्थ संबंधों, लाइन स्टाफ टकराव , यूनियन प्रबंधन संबंधों में पाए जा सकते है।

III) जीत-जीत: विवाद सुलझाने की एक जीत की रणनीति शायद मानव और संगठनात्मक दृष्टि से सबसे अधिक वांछनीय है। ऊर्जा और रचनात्मकता समस्याओं को सुलझाने में लगाये जाते है बजाय अन्य पार्टी कि पिटाई करने के उद्देश्य से। प्रतिद्वन्द स्थितियों में दोनों दलों की जरूरतें पूरी होती हैं, और दोनों पार्टियों पुरस्कृत परिणामो को प्राप्त करती है ।

Iv) **व्यवहार विश्लेषण:** इंटर व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द, प्रतिद्वन्द के दलों के बीच यथासंभव अधिक से अधिक मानार्थ लेनदेन को बढ़ावा देकर हल किया जा सकता है । प्रतिद्वन्द के प्रबंधन के लिए अधिक महत्व पार्टियों के बीच वयस्क लेन - देन करने के लिए वयस्क है । संचार दो वयस्क अहंकार राज्यों के बीच बातचीत में सुधार लाएगा ।

v) **व्यवहार आदानों फेरबदल:** अंत में, अंतर - व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द शामिल व्यक्ति के व्यवहार पर ध्यान केंद्रित करके हल किया जा सकता है । प्रतिद्वन्द लोगों की धारणाओं और व्यवहार से उठता है । इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से ये बदला जा सकता है । टी समूह या संवेदनशीलता प्रशिक्षण इस संदर्भ में प्रासंगिकता रखती है।

3) **अंतर समूह प्रतिद्वन्द का हल:** - परिवार के भीतर प्रतिद्वन्द का समाधान किया जा सकता है अगर सदस्य समझते हैं और परिवार के सदस्यों की भूमिका का सम्मान करते है । सभी सदस्यों को, महसूस करने की जरूरत है कि विभाजित वे असफल है और एकजुट सफल, एक पारिवारिक मित्र विवाद को सुलझाने के लिए हस्तक्षेप कर सकता हैं अगर सदस्य प्रतिद्वन्द को खुद हल करने में विफल रहते है । संकटग्रस्त बजाज परिवार में एक प्रतिद्वन्द विराम लाने के लिए शरद पवार को मध्यस्थता करनी पड़ी थी

4) **इंटर समूह प्रतिद्वन्द का हल:** - इंट्रा व्यक्तिगत और अंतर - व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द को हल करने के लिए उपलब्ध दृष्टिकोण भी अंतर - समूह विवादों को हल करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है । हालांकि, कुछ अद्वितीय दृष्टिकोण अंतर समूह प्रतिद्वन्द को हल करने के लिए उपलब्ध है। वे हैं: -

I) समस्या के समाधान: - समस्या हल यह परस्पर विरोधी दलों दोनों की साझा हितों की प्राप्ति पर जोर देने के रूप में उपलब्ध सबसे प्रभावी तरीका माना जाता है । समस्या का हल करने की रणनीति में, प्रयास किये जाते है कि एक ऐसा हल निकला जाए जो दोनों दलों की जरूरत को समझे " एकीकृत "। दो पक्ष समस्या को परिभाषित करने और परस्पर संतोषजनक समाधान की पहचान करने के लिए एक साथ काम करते है ।

II) **संगठन को नया स्वरूप:** - संगठनात्मक संरचना को बदलने से प्रतिद्वन्द हल होता है खासकर जब प्रतिद्वन्द के सूत्रों विभिन्न विभागों या डिवीजनों के बीच कार्य के समन्वय से आते हैं, प्रतिद्वन्द को हल करने के लिए एक और दृष्टिकोण है संगठन redesIgning करने का एक तरीका है समूहों के बीच कार्य अन्योन्याश्रय को कम करने और प्रत्येक समूह स्पष्ट जिम्मेदारियां देने का। एक अन्य तरीका है विरोधी गुटों के सदस्यों को हस्तांतरण या परस्पर आदान प्रदान का है।

III) **superordInate लक्ष्य:** - लक्ष्यों superordIante के लिए अपील प्रतिद्वन्द को हल करने का एक और तरीका है। उच्चकोटी का लक्ष्य परस्पर विरोधी दलों दोनों का एक समान लक्ष्य है और दोनों दलों के संयुक्त प्रयासों लक्ष्य को महसूस करने की जरूरत होगी

Iv) **संसाधनों का विस्तार:** - दुर्लभ संसाधनों की कमी से प्रतिद्वन्द होता है और इसको दूर करने के लिए, संसाधनों की कमी को दूर करने से प्रतिद्वन्दता को रोकने में सहायता मिलेगी एक की स्थिति का उन्नयन चर्चित कारण बना हुआ है, तो कुछ अधिक नौकरियों को इसी तरह उन्नत किया जा सकता है।

v) **बचाव: -** जब ये मुद्दे तुच्छ हो तब परिहार रणनीति उपयोगी हो जायेगी। परिहार रणनीति में, प्रतिद्वन्द के लिए पार्टी प्रतिद्वन्द से पीछे हट सकती है या असंगति छिपाना छोड़ सकती है।

vI) **smoothen:**- व्यक्तियों या समूह के बीच मतभेद और उनके साझा हितों पर प्रकाश डालने को smoothening कहा जाता है। पता लगाना और उनकी समानताओं का एहसास करना विरोधी दलों के बीच अंततः प्रतिद्वन्द मिटा सकता है और उनके द्वारा पहले माना जा रहा प्रतिद्वन्द हट सकता है।

17.7 प्रतिद्वन्द प्रबंधन तकनीक / शैलियों

प्रतिद्वन्द विशेषज्ञ केनेथ थॉमस यह नोट करते है कि प्रतिद्वन्द से निपटने के लिए कई बुनियादी प्रतिक्रियाओं को शैलियों, रणनीति या इरादों में बदला जा सकता है जो प्रतिद्वन्द को खतम करने में सहायक सिद्ध होंगी। प्रतिद्वन्द के प्रबंधन के लिए इन तरीकों नीचे दिए गए आंकड़े में दिखाया गया है कि कैसे मुखर एक है एक ही संतुष्ट करने की कोशिश में है या एक समूह की चिंताओं और भी कैसे सहकारी एक भी एक के अपने या एक समूह की चिंताओं को संतुष्ट करने की कोशिश में है और दोनों के एक समारोह कर रहे हैं कि कैसे सहकारी एक अन्य पार्टी या समूह के उन लोगों को संतुष्ट करने की कोशिश में है।

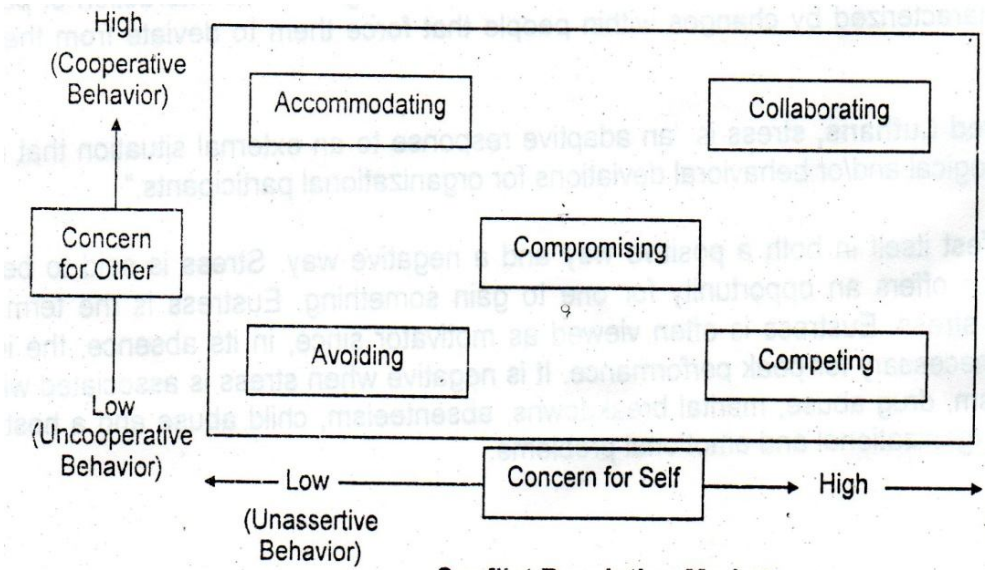

Conflict Resolution Modes

1) बचाना (वापसी): बचाव शैली का चरित्र है अपने हितों का परिहार और अन्य पार्टी के साथ कम से कम सहयोग करना। बचाव कुछ देर के लिए तनाव से मुक्ति दे सकता है लेकिन प्रतिद्वन्द के मुखरता से नहीं। ये स्थिति को बदलता नहीं है।

2) सामंजस्य (स्मूथिंग): यह शैली मुखरता में कम और सह cooperatlveness पर ज्यादा है। दल, उदार, सहकारी और प्रतिद्वन्द को हल करने के लिए उचित त्याग करने को तैयार हैं जोर परस्पर विरोधी गुटों जोर के साझा हित पर है और उनके मतभेदों पर है कम- जोर है। यह तकनीक कम समय में की जरूरत है जो एक अस्थायी समाधान के साथ प्रयोग की जा सकती है।

3) प्रतिस्पर्धा (प्रभुत्व): एक प्रतिस्पर्धा शैली अपने पद के लिए मुखरता को अधिकतम और सहकारी प्रतिक्रियाओं को कम करने के लिए जाना जाता है। ऐसा करने से प्रतिद्वन्द को एक सख्त जीत-हार शर्तें पर ला देता है। पूर्ण प्राथमिकता अपने ही लक्ष्य, तथ्यों या प्रक्रियाओं को दी जाती है।

प्रतिस्पर्धा शैली जब वादा करती है जब किसी के पास बहुत शक्ति है आप को भविष्य में अन्य पार्टी के साथ बातचीत करने की जरुरत नहीं है।

4) समझौता: समझौता मुखरता और सहयोग की तत्काल स्तर को जोड़ती है। इस प्रकार यह शुद्ध प्रतियोगिता और शुद्ध आवास के बीच एक समझौता ही है। शक्ति विषमता से स्टेम प्रतिद्वन्द को हल करने के लिए बहुत उपयोगी नहीं है, क्योंकि कमजोर पक्ष मजबूत पार्टी को कुछ पेश करने के लिए छोटी पड़ सकती है। अन्य रणनीतियों के विफल होने पर यह एक अच्छा विकल्प है।

5) सहयोग: सहयोग मोड में, मुखरता और सहयोग दोनों को अधिकतम कर दिया जाता है इस उम्मीद में कि एक एकीकृत समझौता उभरेगा जो पूरी तरह से दोनों पक्षों के हितों को संतुष्ट करता होगा

जब प्रतिद्वन्द तीव्र नहीं है और हर पार्टी के पास दूसरे के लिए उपयोगी जानकारी होती है तब शायद ये सबसे अच्छा काम करता है।

प्रभावी सहयोग विकसित होने के लिए समय और अभ्यास ले सकता हैं, यह अक्सर उत्पादकता और उपलब्धि को बढ़ाता है। सहयोग संगठन के भीतर भी प्रतिद्वन्द का प्रबंधन करने में मदद करता है।

17.8 पुलिस कार्यशैली में प्रतिद्वन्द प्रबंधन

ये वह आकलन था जिससे कुछ दशक पहले " समुदाय पोलिसिंग " (COP) नामक एक सुधार आंदोलन को उत्पन्न करने वाला राज्य का एक महत्वपूर्ण समारोह हुआ। यह इस प्रस्ताव के साथ शुरू हुआ की एक आवश्यकता है कि पुलिस सेवा के उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच एक पूल बनाया जाय। विश्वास एक ऐसी व्यवस्था स्थापित करने में था जो लोगों के अनुकूल पुलिस बल के बारे में था और जहां आपसी विश्वास को मौजूदा अविश्वास फीकाकर दे।अच्छी तरह प्रेरित कोशिश पुलिस प्रतिरोध के रूप में बड़ी बाधाओं के बावजूद , पिछले कुछ वर्षों में शक्ति प्राप्त की है जोकि पॉवर के खतम होने के डर से उत्पन्न होता था

पिछले एक दशक में, मूल पुलिस अवधारणा में कॉस्मेटिक बदलाव से कुछ अधिक आया है । "लोकतंत्र" की तरह, (COP) अलग अलग लोगों के लिए अलग अलग मतलब रखता है । हालांकि,परंपरावादी और सख्त constructionlsts, भ्रूभंग करते है उस पर जिसे वह मूल अवधारणा का एक ढीला आवेदन कहते है । वे कहते कि (COP) मात्र पुलिस सामुदायिक संबंधों के बारे में नहीं है। यह मूल रूप से एक एक प्रणाली है जो उपभोक्ताओं को खुद पुलिस के कुछ पहलुओं पर हक़ लेने का काम करेगी

उदाहरण के लिए , संयुक्त राज्य अमेरिका पुलिस द्वारा विकसित मॉडल में , स्थानीय नागरिकों ने पुलिस घटक शायद ही एक या दो अधिकारी शामिल हैं जिसमें मिनी पुलिस स्टेशनों पर कामकाज के बहुमत प्रदर्शन करते है । पुलिसकर्मियों fleldwork पर बाहर जाना पड़ा तब नागरिक स्वयंसेवकों ने उन्हें चलाने के लिए की पेशकश की थी। अगर हमारे पुलिस चौकियों के समान हैं , , के बारे में ही नहीं आ पाता । मैं , हालांकि, जनता ही के रूप में अतिरिक्त श्रम में लाया जाता है , जिसमें इस मॉडल को पुलिस किनारा कि एक पाखंडी दृष्टिकोण का समर्थन नहीं करते । एक और सामुदायिक पुलिस की जटिलताओं की प्रशंसा करने के बजाय पुलिसकर्मियों के काम का बोझ कम करने के क्रम में कुछ पुलिस कार्यों प्रदर्शन कर रहा है देखने की जरूरत है कि क्या इसका कारण यह है।

RKRaghavan के अनुसार - मैं केरल में कोच्चि के खूबसूरत शहर में हाल ही में आयोजित (COP) पर वास्तव में एक वैश्विक सम्मेलन के लिए आमंत्रित किया गया था, पहल शिक्षाविदों और अंतर्राष्ट्रीय पुलिस कार्यकारी संगोष्ठी द्वारा कि गई थी जो खुद को (lPES) कहते हैं, और यह उदार प्रतिक्रिया वार्ड-लूकिंग करेला पुलिस से आई। यह वास्तव में दिमाग की एक स्वागत मेल था। आतिथ्य भारी था। आयोजन समिति की अध्यक्षता याकूब Punnoose , पुलिस महानिदेशक , एक ईमानदार और नो बकवास पुलिस नेता, सहायता मनोज अब्राहम ने प्रदान की, कोच्चि आयुक्त, और बी संध्या, पुलिस महानिरीक्षक, और नोडल अधिकारी है केरल (COP) परियोजना Janamalthr। सुरक्षा – lalldon एक प्रोग्राम जो कि पेशेवर प्राणपोषक था

AFGHAN उपस्थिति

40 से अधिक देशों से लगभग 130 प्रतिनिधियों ने कार्यवाही को चमक दी। गृह अफ़ग़ान मंत्रालय और संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम समन्वयक के सलाहकार के साथ अफगानिस्तान के पुलिस बल से एक प्रतिनिधिमंडल की उपस्थिति सोने पर सुहागा थी। कुछ और के लिए नहीं, तो ।PES द्वारा अफगान समूह को लेन में और उसे काफी समय से अपेक्षित विवरण देने के लिए विशेषकर उस समय पर जब वह विद्रोह के साथ संघर्ष कर रहा है बधाई का पात्र है। समान रूप से दिल वार्मिंग अवसर था कब केंद्रीय गृह मंत्री पी। चिदंबरम और राज्य के गृह मंत्री Kodiyer। Balakirshana उपस्थिति हुए ।अगर केरल पुलिस ने गर्व से अपने Janamaithri सुरक्षा परियोजना (JSP), (COP) के लिए एक मॉडल का प्रदर्शन किया है, यह कुछ औचित्य के साथ था। न्यायमूर्ति के.टी. की सिफारिशों को एक अनुवर्ती के रूप में अधिक से अधिक दो साल पहले शुरू थॉमस आयोग केरल पुलिस का प्रदर्शन और जवाबदेही पर, JSP एक बीट कांस्टेबल की पहचान पर चिंतन प्रकट करता है जो की रोज़ाना लगभग1,000 स्थानीय परिवारों के साथ दैनिक संपर्क में रहेगा, एक खास इलाके में, ताकि उनकी फर्स्ट हैण्ड सुरक्षा समस्याओं का पता लगा सके

केरल: JANAMA।THR। पुलिस

2009 में, अडूर में गांधी जयंती के दिन, सड़कों और नहरों की सफाई में लोग शामिल हुए और Vadakara में पीने के पानी की आपूर्ति की ,विभिन्न मंचों पर घिसा , दोनों राजनीतिक और समुदाय के स्तर पर अपनाने और लागू किया जाने से पहले । जब तक समाज में एक आम सहमति ना बने कि पोलके का श्रेष्ट कैसे निकला जाए सेवा की गुणवत्ता के बारे में लगातार शिकायतें होती रहेंगीजहाँ नीतियों के राजनीतिकरण के खिलाफ रक्षा करनी है वहीं पर हमेशा कानून बनाने वाले अधिकारीयों के साथ होने का फायदा भी है एक व्यापक पुलिस एजेंडा फिक्सिंग करते हुए, ये वहीं हैं जो ब्रिटेन में हो रहा है, जहाँ पर लोकल पुलिस अधिकारी को स्थानीय नेताओं और चिंतित नागरिकों के पार अनुभाग है, और ये ही वो अधिकार है जो एक निति को स्थापित करने के लिए सक्षम है, ज़ाहिर है, ख्याल रखना है कि वह पुलिस की परिचालन स्वायत्तता को इरोड नहीं करे

जब संयोग से राष्ट्रीय पुलिस आयोग , एनपीसी को 1977 में नियुक्त किया गया था इसे ध्यान में रखा था जब उसने प्रत्येक राज्य में एक राज्य सुरक्षा आयोग के सृजन का सुझाव दिया। ये मॉडल एक वास्तविकता बनने के लिए अभी भी इंतजार कर रहा है जबकि सुप्रीम कोर्ट ने 2006 में एक कडे निर्देश के साथ एनपीसी कि सारी सिफारिशों को कड़ाई से लागू किये जाना को कहा है ।

ASWAS मॉडल

कई अन्य मॉडल भी कोच्चि सम्मेलन से पहले आये थे। इनमें से एक असम में " " , था। एक राज्य जो बहुत समय से असम (उल्फा) उग्रवाद की यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट से प्रभावित था। एक पुलिस पहल से 850 बच्चे , ज्यादातर अनाथ का Aswas द्वारा ध्यान रखा गया है ताकि

वे उपयोगी नागरिक बनने और सार्थक रोजगार पाने के लिए बुनियादी योग्यता ले सके। महिलाओं जिन्होंने विद्रोही के हाथों में अपने पति को खो दिया था की भी इसी तरह की मदद की गई। इस प्रकार ये योजना कड़ाई से (COP) की परिभाषा के तहत नहीं आ सकती

लेकिन इन जैसे परियोजनाओं ने पुलिस की छवि बदलने और महत्वपूर्ण पुलिस कार्यों में समुदाय की मदद को सुविधाजनक बनाने में एक लंबा रास्ता तय करना है।

एक प्रासंगिक सवाल है कि किस हद तक (COP) को जम्मू और कश्मीर जैसे आतंकवाद ग्रस्त क्षेत्र में लागू किया जा सकता है । इसके अलावा ये अवधारणा है कि क्या ऐसी योजना तनाव काम करने में मदद कर पाएगी जहाँ धार्मिक समूहों के बीच एक इतिहास of animosity रहा है ।एक कसकर तैयार हुआ पुलिस योजना कुछ मायनों में मदद कर सकता है , हालांकि या तो सवाल का स्पष्ट जवाब नहीं लगता। दिलचस्प बात यह है कि तालिबान प्रेरित उग्रवाद अफगान पुलिस बल को कुछ प्रयोगों की कोशिश करने से विचलित नहीं कर पा रहा है । सम्मेलन में अफगान टीम के द्वारा दिखाई पिक्चर पुलिस और नागरिकों के बीच चल रही बातचीत की पुष्टि की। यह एक अलग संभावना के संदर्भ में प्रोत्साहित कर रही है जो की गठबंधन बलों को अगले कुछ वर्षों में देश से बाहर खींच रहा है और इस जगह को भरने के लिए एक मजबूत नागरिक समाज की एक बड़ी जरूरत होगी।

कोच्चि सम्मेलन के रूप में घटनाक्रम एक मात्र उत्सव के रूप में खारिज नहीं किया जा सकता। वे आधुनिक पुलिसिंग के क्षेत्र में शिक्षा और चिकित्सकों के बीच विचारों का एक जीवंत आदान प्रदान को बढ़ावा देते है । एक दूसरे से सीखने के लिए बहुत कुछ है । यह आवश्यक है क्योंकि एक बंद आपदा के लिए निश्चित नुस्खा है ,।

17.9 सारांश

पुलिस की जड़ का प्रबंधन एक ऐसी स्थिति है जहाँ दो या अधिक दल खुद को विरोधी महसूस करते है यह एक एक पारस्परिक प्रक्रिया है जोकि उन लक्ष्यों को पूरा करने के लिए लक्ष्य या तरीकों पर असहमति से उत्पन्न होती है।

अधिकांश समय वह अपनी धुन से बाहर होते है कि समुदाय को क्या चाहिए और वह अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करते है । पुलिस जनता से आश्वासन के बारे में बात करती हैं सभी तरीको पर जनता से आग्रह करती है की अपराध का भय अपराध की वास्तविकता को ग्रहण नहीं लगा दे। एक दृश्य पुलिस की उपस्थिति की तुलना में अधिक आश्वस्त और कुछ नहीं हो सकता. जो कि पुलिस को सीधे और घनिष्टता से पब्लिक जिसकी वो सेवा कर रहे उनसे जोड़ता है।

17.10 अभ्यास प्रश्न

1. प्रतिद्वंद के प्रभंधन और प्रकृति की विवेचना कीजिए

2 प्रतिद्वंद के कितने प्रकार होते हैं

3 प्रतिद्वंद के नियंत्रण में पुलिस की भूमिका की विवेचना कीजिए

4 प्रतिद्वन्द प्रबंधन की शैलियों और तरीकों को स्पष्ट कीजिए

इकाई - 18

संघर्ष समाधान : वैधानिक एवं व्यवहारात्मक सन्दर्भ

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 संघर्ष समाधान का वैधानिक एवं न्यायिक तन्त्र/व्यवस्था

(I) भारत का संविधान

(II) श्रम कानून - औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1948

18.3 विवाद को स्वेच्छा से मध्यस्थता हेतु सुपुर्द करना

18.4 वैकल्पिक विवाद समाधान तन्त्र

18.5 सारांश

18.6 अभ्यास प्रश्न

18.7 सन्दर्भ ग्रंथ

18.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- संघर्ष समाधान में निहित वैधानिक सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- भारतीय संविधान में संघर्ष समाधान के सन्दर्भ में उल्लेखित प्रावधानों से परिचित हो सकेंगे।
- संघर्ष समाधन हेतु देश में लागू वैधानिक एवं न्यायिक व्यवस्था से अवगत हो सकेंगे।
- औद्योगिक विवाद अधिनियम के प्रावधानों एवं तन्त्र के बारे में जान सकेंगे।
- वैकल्पिक विवाद समाधान तन्त्र के बारे में अपने ज्ञान में वृद्धि कर सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

संघर्ष मानवीय जीवन का एक स्वाभाविक एवं अपरिहार्य अंग है। संघर्ष मनुष्यों तक ही सीमित न रहकर पशु-पक्षियों, मछलियों एवं अन्य जीव-जन्तुओं में भी देखा जाता है। यह केवल अवलोकित सत्य ही नहीं है, अपितु अनुभव-सत्य भी है। अच्छा हो कि हम संघर्ष को असहमति के सन्दर्भ में ही लें और उसके उत्पन्न होने के मूल कारणों को भली-भाँति समझकर उसका व्यावहारिक एवं सर्वमान्य समाधान निकालें अन्यथा यह व्यक्ति, संस्था एवं समाज सभी के लिए घातक हो सकता है। संघर्ष आगे चलकर वैचारिक उग्रवाद एवं हिंसक घटनाओं को जन्म दे सकता है और विकास एवं शन्ति के मार्ग का बड़ा कंटक बन

सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि स्वस्थ संगठन और समाज अपने वैचारिक एवं भावनात्मक/मनोवैज्ञानिक संघर्ष को तनाव, उग्रता और हिंसा में परिवर्तित न होने दे अन्यथा इससे विघटन एवं वैमनस्य का मार्ग प्रशस्त हो सकता है और हम अपनी सांस्कृतिक विरासत को पतन के गर्त में जाते हुए किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर देखते रह जा सकते हैं। इसलिए संघर्ष का उचित समय रहते हुए आपसी विचार-विमर्श द्वारा यथासंभव सर्वानुभूति के आधार पर समाधान निकाला जाना चाहिए। यदि हम कल्पित भयजनित अथवा हित टकराहट की स्थिति को ठीक से समझ लें, तो हम संघर्ष समाधान की दिशा में व्यवहारात्मक एवं रचनात्मक रूप से आगे बढ़ सकते हैं।

संघर्ष बहुधा ''मान ली गई असहमति'' (Perceived Disagreement) के कारण होता है, न कि ''**वास्तविक असहमति**'' (Real Disagreement) के कारण इसलिए हमें अपनी असहमति को ''दो ध्रुवीय दृष्टिकोण'' (External) तक अनावश्यक रूप से नही ले जाना चाहिए, वरन् उसे आपसी समझ और संवाद के द्वारा त्याग-प्राप्ति की भावना (Gain Sacrifice Sprit) से सुलझाने का प्रयास करना चाहिए। यह इसलिए कि एक बड़ी सीमा तक संघर्ष का असली कारण संवादहीनता अथवा पूर्वाग्रह अथवा गलतफहमी (Communlcation Gape or Prejudices or Misunderstanding) है। प्राय: व्यवहार में गलतफहमी अथवा पूर्वाग्रह और संघर्ष का साहचर्य देखा जा सकता है। मान ली गयी असहमति आगे चलकर भय, अहंकार और चुनौती की स्थिति पैदा कर सकती है।

मूलत: संघर्ष दो या अधिक चरित्रों/पात्रों (Characters) के मध्य होता है। चूंकि हमारा सम्बन्ध मानव से है इसलिए यह ''आदमी का आदमी के विरूद्ध'' (Man Agalnst Man) ''मनुष्य का प्रकृति के विरूद्ध'' (Man Against Nature), ''मनुष्य का स्वयं के विरूद्ध'' (Man Against Self), तथा ''मनुष्य का व्यवस्था के विरूद्ध'' (Man Agalnst System) हो सकता है। मनुष्य का स्वयं के विरूद्ध संघर्ष आन्तरिक संघर्ष कहलाता है और शेष बाह्य/बाहरी संघर्ष कहलाता है।

किसी भी संघर्ष में सार्थक (Substantive), प्रक्रियात्मक (Procedural) तथा मनोवैज्ञानिक (Psychological) आयाम हो हैं, जिनका संघर्ष समाधन के समय ध्यान रखा जाना चाहिए। जो संघर्ष के पक्षकार होते हैं, उनमें स्वीकार कर लिये गये भय को ठीक से समझने के लिए संघर्ष के उक्त तीनों आयामों को समझना अत्यावश्यक है।

संघर्ष घरों, कार्यालयों तथा संगठनों के कार्य-वातावरण का सामान्य अनुभव है। इसलिए एक बड़ी सीमा तक इसका आशानुरूप एवं ज्ञात समाधन सम्भव है, बशर्ते कि संघर्ष के पक्षकार दुराग्रही न हों। हम इसलिए संघर्ष का पता लगाने के लिए प्रक्रियायें विकसित करते हैं तथा उसके समाधन की व्यवस्था अथवा तन्त्र विकसित करते हैं। बदलती हुई परिस्थितियों के सन्दर्भ में संघर्ष को रचनात्मक रूप से प्रबन्धित करने के लिए हमें संघर्ष को ''उत्पादक सीखने का अनुभव'' (Productive Learning Experience) में परिवर्तित करना होगा। संघर्ष समाधन एवं प्रबन्धन हेतु सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करने के लिए हमें ''समस्या समाधान की सृजनात्मक व्यूह रचनाओं'' (Creative Problem-solving Strategles) के विकास पर ध्यान देना होगा। हमें स्थितियों को इस प्रकार परिवर्तित करना होगा कि ''यह मेरा मार्ग और यह तेरा मार्ग'' (This is my way and that is your way) के दृष्टिकोण को

छोड़कर ''यह हम सबका मार्ग'' (Thls is our way) का दृष्टिकोण अपनाना होगा। यही संघर्ष समाधान का व्यवहारात्मक सन्दर्भ है।

यहाँ उक्त विचारणीय बिन्दुओं का उल्लेख प्रस्तावना में इसलिए किया गया क्योंकि ये सब संघर्ष समाधन की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हैं। यह सब बिन्दु इसलिए भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं कि संघर्ष समाधन के अन्तिम विकल्प - वैधानिक एवं न्यायिक विकल्प, को चुनने की बाध्यता न रहे। इस इकाई में हम संघर्ष समाधन के वैधानिक एवं न्यायिक सन्दर्भ का अध्ययन करेंगे।

18.2 संघर्ष समाधन का वैधानिक एवं न्यायिक तन्त्र/व्यवस्था (Legal and Judlclary Machanlsm/System)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में अन्य व्यक्तियों के साथ रहता है इसलिए उसका अन्य व्यक्तियों के साथ हितों का संघर्ष होना स्वाभाविक एवं अपरिहार्य है। इसलिए प्रत्येक सभ्य समाज को संघर्ष समाधन के लिए अन्य वैकल्पिक (गैर न्यायिक) उपायों के साथ-साथ न्यायपूर्ण एवं न्यायिक व्यवस्था बनानी एवं विकसित करनी पड़ती है। संघर्ष की स्थिति में एक व्यक्ति तथा व्यक्तियों के समूह अथवा संस्था को अन्य विकल्पों की विफलता पर विधि द्वारा स्थापित तंत्र/व्यवस्था का सहारा लेना पड़ता है। किसी संघर्ष के समाधान के लिए न्यायिक व्यवस्था के अतिरिक्त (Extra Judicial) अथवा ''**वैकल्पिक विवाद समाधान**'' उपायों (A altarnatlve Disputes Resolutions – ADR) का भी सहारा लिया जा सकता है। इनमें विवादों का समाधन अवश्य ही न्याय प्रणाली और प्रक्रिया के बाहर होता है लेकिन इनमें विधि सिद्धान्तों (Legal Principles) का अवश्य ध्यान रखा जाता है, जैसे ''**प्राकृतिक न्याय का सिद्धान्त**'' (Principle of Natural Justice) तथा ''**सुनवाई के नियम**'' (Rules of Hearing)।

(I) भारत का संविधान (Constltution of lndla)

किसी भी देश का संविधान उस देश के सभी ''**कानूनों की माँ**'' (Mother of all laws) होता है इसलिए सभी देशों के संविधानों की प्रस्तावना (Preamble) में न्याय और न्याय प्रशासन का उल्लेख है। भारतीय संविधान के आर्टिकल-39A में न्याय प्राप्ति हेतु समान पहुँच (Equal access to justice) की बात का स्पष्ट उल्लेख है। न्याय प्रशासन के अन्तर्गत निर्दोष का संरक्षण, दोषी को दण्ड तथा विवादों (संघर्षों) का संतोषजनक समाधन आता है। संघर्ष समाधान तंत्र के अन्तर्गत संघर्ष में निहित व्यक्तियों को पूर्ण न्याय दिलाना सम्मिलित है। राज्य, समाज तथा विवाद के अन्य पक्षकारों सहित सभी का यह दायित्व है कि वे संघर्ष का समाधान समय रहते कर लें ताकि इससे अन्य व्यक्तियों की शान्ति भंग न हो।

यह एक सर्वमान्य सत्य है कि एक सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज में ''**कानून का राज**'' (Rule of Law) होता है तथा प्रत्येक संघर्ष के समाधन में प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त की अनुपालना होती है ताकि सम्बन्धित सभी पक्षकारों को सम्पूर्ण न्याय मिल सके।

संघर्ष समाधान में निहित कानूनी सिद्धान्त (Legal Principles Iinvolve in Conflict Resolution)

भारतीय संविधान के अनुसार प्रजातन्त्र की प्रमुख आवश्यकता ''**कानून के राज**'' की स्थापना है। जिसका आशय यह है कि शासन व्यक्ति द्वारा न होकर कानून के सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए। वस्तुत: यह ''**कानून की सर्वोच्चता की गत्यात्मक अवधारणा**'' (Dynamic Concept of Supremacy of Law) है जो सरकार के विधि सम्मत कार्यों की पुष्टि तथा गलत कार्यों पर अवरोधक का कार्य करती है। न्याय प्रणली के सन्दर्भ में कानून के राज का आशय स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका है।

संघर्षसमाधान हेतु कानून के राज के साथ प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त का प्रयोग अत्यावश्यक है। कानून का राज तथा प्राकृतिक न्याय का सिद्धान्त एक-दूसरे से अन्तर्निहित रूप से जुड़े हुए हैं। ये सत्ता द्वारा अत्यधिक शक्ति के प्रयोग के विरूद्ध संरक्षा प्रदान करते हैं। समता, समानता, उचितता तथा न्याय प्रक्रिया में तर्कसंगतता ही प्राकृतिक कानून कहलाता है। (Equity, Equality, Fairness and Reasonableness in the process of justice is called Natural Law.)

भारतीय संविधान के **आर्टिकल 14 तथा 21** में प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त और कानून के राज का स्पष्ट उल्लेख है, इन दोनों आर्टिकल्स में **सार्थक एवं प्रक्रियागत उचित प्रक्रिया** (Substantive and Procedural due process) **समाहित है।**

न्याय की उपयुक्तता (fairness of the Justice) के लिए निम्नांकित विधि सिद्धान्त क्रियाशील होते हैं -

1. (अ) "**Nemo Judex in Causa Sua**" : यह लेटिन सिद्धान्त है, जिसमें यह आशा की जाती है कि अपने मामले में कोई भी व्यक्ति स्वयं न्यायाधिपति (Judge) नहीं बनना चाहिए। इस सिद्धान्त का पालन इसलिए किया जाना चाहिए ताकि न्याय में पक्षपात (Biasness) नहीं हो।

   (ब) "**Audi Alterum Partem**" : यह भी एक लेटिन सिद्धान्त है, जिसका तात्पर्य है कि न्यायपालिका से यह उम्मीद की जाती है कि वह निष्पक्ष न्याय हेतु दूसरे पक्ष को भी सुनेगी। इसके व्यापक अर्थ में जाँच प्रतिवेदन (Report of Enqulry) दूसरे पक्ष को भी दिखाई जानी चाहिए और उस पर उचित बहस (Reasoned DIscussIon) होनी चाहिए। वस्तुत: यह **मनमानी के खिलाफ नियम** (Rule Against Dictation) है।
2. **पर्याप्त सूचना** (Adequate NotIce) : सूचना उपयुक्त होनी चाहिए (The notice must be adequate)। **आर्टिकल 22(5)** के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को कारण जाने और अपना पक्ष रखने का पूरा अधिकार है जो **आर्टिकल 311(2)** द्वारा भी समर्थित है।

3. सुनवाई के उचित नियम (Falr Rules of Hearing) : इसका तात्पर्य यह है कि किसी भी व्यक्ति को सुने बिना दण्डित नहीं किया जा सकता है तथा कोई प्रमाण (Evldence) दूसरे पक्षकार की अनुपस्थिति में नहीं लिया जाना चाहिए।
4. प्रक्रियागत उचित प्रक्रिया (Procedural due process) : यह सिद्धान्त सभी प्रक्रियागत कानूनों का अंग है, जैसे Criminal Procedure Code and Civil Procedure Code / नोटिस, सम्मन, बहस के रूप में सूचनाओं का विनिमय, प्रोसिडिंग की खोज में, मुद्दे निर्धारण में, गवाहों के परीक्षण में, तर्कों एवं निर्णयों इत्यादि भी विवाद के पक्षकारों को सूचना देने का विस्तारित स्पष्टीकरण है। प्रक्रियागत उचित प्रक्रिया विवादों के निपटारे हेतु अपनाया जाना आवश्यक (Must) है।

संविधान के **आर्टिकल 251** में संसद द्वारा **आर्टिकल 249 तथा 250** के अन्तर्गत कानून बनाने तथा राज्य विधानसभाओं के बीच कानूनी असंगतता (inconsistancy) के निवारण का उल्लेख है। इसी प्रकार **आर्टिकल 311** केन्द्र और राज्य की सिविल सेवाओं में कार्यरत व्यक्तियों के निष्कासन एवं पदावनति (Dismissal, Removal or Reduction ln Rank) से सम्बन्धित है, जिसके अन्तर्गत सेवारत व्यक्ति को तब तक न तो सेवा से निष्कासित किया जा सकता है और ना ही उसकी पदावनति की जा सकती है जब तक कि उसके विरूद्ध लगे आरोपों को उसे बता न दिया गया हो और उन आरोपों के सम्बन्ध में उसकी बात अथवा पक्ष नहीं सुन लिया गया हो (कुछ अपवादों के अलावा)।

प्रशासकीय ट्रिब्यूनल्स (Administrative Tribunals) :

आर्टिकल **323-A** के अन्तर्गत संसद लोक सेवाओं में नियुक्त व्यक्तियों के चयन और सेवा शर्तों के सम्बन्ध में प्राप्त शिकायतों के निवारण के लिए प्रशासकीय ट्रिब्यूनल्स का गठन कर सकती है। यह ट्रिब्यूनल्स संघ सेवाओं के लिए गठित किया जा सकता है और इसी प्रकार से राज्य सेवाओं के लिए भी अलग से इनका गठन किया जा सकता है। एक राज्य के लिए पृथक से एक अथवा दो और अधिक राज्यों के लिए पृथक ट्रिब्यूनल का गठन किया जा सकता है। इन ट्रिब्यूनल्स के फैसलों को उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

अन्य मामलों के लिए ट्रिब्यूनल्स

आर्टिकल **323-B** के अन्तर्गत उपयुक्त विधान परिषदों द्वारा लोक सेवाओं में नियुक्त व्यक्तियों के चयन और सेवा शर्तों के अतिरिक्त अन्य विवादों, शिकायतों अथवा अपराधों के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार है। इनमें मुख्य रूप से निम्नांकित सम्मिलित हैं :

(i) लेवी, किसी भी कर का निर्धारण, संग्रहण एवं क्रियान्वयन
(ii) विदेशी विनिमय, कस्टम फ्रन्टियर्स के पार आयात एवं निर्यात
(iii) औद्योगिक एवं श्रम विवाद
(iv) भूमि सुधार - विशेषकर राज्य द्वारा भूमि अधिग्रहण
(v) नगरीय सम्पत्ति पर सीलिंग

(vi) संसदीय चुनाव अथवा विधानसभाओं के चुनाव तथा

(vii) अन्य

(II) श्रम कानून - औद्योगिक विवाद अधिनियम (Labour Law – industrial Dispute Act)

औद्योगिक विवाद अधिनियम 1948 में संघर्ष समाधान तथा विवादों के निपटारे के सम्बन्ध में प्रावधान है। इस अधिनियम के **पाठ दो** (Chapter-II) में विवादों के निपटारे के लिए सत्ता/अधिकारियों (Authorities) का उल्लेख है। अधिनियम की **धारा-3** में **कार्य समिति** (Works Committee) का प्रावधान है जो इस प्रकार है -

कार्य समिति (Works Committee) :

अधिनियम की धारा-3 के अन्तर्गत किसी भी ऐसे औद्योगिक प्रतिष्ठान में जिसमें 100 या अधिक कामगार कार्यरत हों अथवा पिछले 12 महीनों में किसी भी एक दिन कार्यरत रहे हों, तो **उपयुक्त सरकार** (Appropriate Government) सामान्य अथवा विशेष आदेश द्वारा निर्धारित तरीके से नियोक्ता द्वारा कार्यसमिति का गठन करने के लिए निर्देशित कर सकती है। कार्यसमिति में नियोक्ता तथा कामगारों दोनों के प्रतिनिधि होंगे। इस सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि कार्यसमिति में कामगारों के प्रतिनिधियों की संख्या नियोक्ता के प्रतिनिधियों से कम नहीं होगी। कामगारों के प्रतिनिधि प्रतिष्ठान में कार्यरत श्रमिकों में से ही होंगे जिनका मनोनयन श्रम संगठन के परामर्श से होगा, बशर्ते कि श्रम संगठन का पंजीयन **भारतीय श्रम संघ अधिनियम, 1926** (indian Trade Union Act, 1926) के अन्तर्गत हो।

कार्यसमिति का काम उन सभी उपायों को प्रोत्साहित करना है, जिनसे श्रमिकों तथा नियोक्ता के बीच मधुर सम्बन्ध बने रहें और सामान्य हितों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण मतभेद (Mutual Difference) उत्पन्न होने पर उन्हें कम करने अथवा मिटाने के लिए प्रयासरत रहना है।

कन्सीलिएशन अधिकारी (Conciliation Officers) :

औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा-**4** के अन्तर्गत उपयुक्त सरकार गजट घोषणा के द्वारा, जितनी भी संख्या उचित प्रतीत हो, उतने ही कन्सीलिएशन अधिकारी नियुक्त कर सकती है, जो औद्योगिक विवादों में मध्यस्थता करने अथवा उनके समाधान हेतु अधिकृत होंगे और इस हेतु कार्य करेंगे। एक कन्सीलिएशन अधिकारी एक निर्धारित क्षेत्र अथवा एक निर्धारित क्षेत्र में निर्धारित उद्योगों के लिए अथवा एक या अधिक उद्योगों के लिए या तो स्थाई रूप से अथवा एक निश्चित अवधि के लिए नियुक्त किया जा सकता है।

कन्सीलिएशन बोर्ड (Board of Conciliation) :

औद्योगिक विवाद अधिनियम धारा-**5** के अन्तर्गत उपयुक्त सरकार गजट अधिघोषणा के द्वारा औद्योगिक विवादों के निपटारे हेतु बोर्ड ऑफ कन्सीलिएशन का गठन कर सकती है, जिसमें एक अध्यक्ष तथा दो या चार अन्य सदस्य, जैसा भी उपयुक्त प्रतीत हो, नियुक्त कर सकती है। इनमें से अध्यक्ष स्वतन्त्र व्यक्ति होगा और अन्य सदस्य विवाद के पक्षकारों में से समान संख्या में होंगे।

जाँच न्यायालय (Court of inquiry) :

औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा-**6** के अन्तर्गत उपयुक्त सरकार अवसर उपस्थित होने पर गजट अधिघोषणा के द्वारा किसी औद्योगिक विवाद सम्बन्धित दिखाई देने वाले अथवा उससे जुड़े मामले में जाँच न्यायालय का गठन कर सकती है। इस न्यायालय में एक अथवा एक से अधिक स्वतन्त्र व्यक्ति जैसा सरकार को उचित प्रतीत हो, नियुक्त कर सकती है। जहाँ भी जाँच न्यायालय में दो या अधिक सदस्य हों, वहाँ उनमें से एक व्यक्ति को अध्यक्ष बनाया जायेगा।

श्रम न्यायालय (Labour Courts) :

औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा-**7** के अन्तर्गत उपयुक्त सरकार गजट अधिघोषणा के द्वारा एक या अधिक श्रम न्यायालयों का गठन ऐसे औद्योगिक विवादों के निपटारे के लिए कर सकती है जो द्वितीय अनुसूची **(Second Schedule)** में उल्लेखित मामलों से सम्बन्धित हो और उन अन्य कार्यों के निष्पादन हेतु, जो इस अधिनियम के अन्तर्गत हस्तांकित किये गये हों।

श्रम न्यायालय में केवल एक ही व्यक्ति उपयुक्त सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है। ऐसा व्यक्ति श्रम न्यायालय में पीठासीन अधिकारी के रूप में नियुक्ति हेतु योग्य नहीं होगा, बशर्ते कि **:**

(i) वह उच्च न्यायालय का न्यायाधिपति है अथवा रहा हो, अथवा

(ii) वह जिला न्यायाधिपति अथवा अतिरिक्त जिला न्यायाधिपति के रूप में रहा हो (तीन वर्ष की अवधि से कम नहीं); अथवा

(iii) वह किसी श्रम न्यायालय में, जिसका गठन प्रान्तीय अथवा राज्य अधिनियम के तहत किया गया हो, पाँच वर्ष की अवधि से कम नहीं रहा हो।

ट्रिब्यूनल्स (Tribunals) :

औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा-**7A** के अन्तर्गत उपयुक्त सरकार गजट अधिघोषणा के द्वारा एक अथवा अधिक औद्योगिक ट्रिब्यूनल्स का गठन द्वितीय अनुसूची अथवा तृतीय अनुसूची में उल्लेखित मामलों से सम्बन्धित औद्योगिक विवादों के समाधन हेतु कर सकती है। एक ट्रिब्यूनल में केवल एक व्यक्ति ही उपयुक्त सरकार द्वारा नियुक्त किया जा सकेगा। यह व्यक्ति ट्रिब्यूनल के पीठासीन अधिकारी के रूप में नियुक्ति योग्य नहीं होगा बशर्ते कि **:**

(i) वह उच्च न्यायालय का न्यायाधिपति है अथवा रहा हो, अथवा

(ii) वह जिला न्यायाधिपति अथवा अतिरिक्त जिला न्यायाधिपति के रूप में रहा हो (तीन वर्ष की अवधि से कम नहीं) रहा हो।

यदि सरकार उपयुक्त समझे तो ट्रिब्यूनल को परामर्श देने हेतु दो व्यक्तियों को असेसर्स **(Assessors)** नियुक्त कर सकती है।

राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल्स (National Tribunals) :

औद्योगिक विवादों के निपटारे के लिए केन्द्र सरकार गजट अधिघोषणा के द्वारा एक अथवा अधिक राष्ट्रीय औद्योगिक ट्रिब्यूनल्स का गठन ऐसे औद्योगिक विवादों के निपटारे के लिए कर सकती है जो उसके अभिमत में राष्ट्रीय महत्व के प्रश्नों से सम्बन्धित हो अथवा इस प्रकार की प्रकृति के हों, जिनका सम्बन्ध एक से अधिक राज्य में स्थापित औद्योगिक प्रतिष्ठानों से हो, जो उनको प्रभावित करता हो। राष्ट्रीय औद्योगिक ट्रिब्यूनल में केवल एक ऐसा ही व्यक्ति केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त किया जाएगा जो उच्च न्यायालय का न्यायाधिपति है अथवा रहा हो।

शिकायत निवारण अधिसत्ता (Grievance Settlement Authority) :

किसी ऐसे औद्योगिक प्रतिष्ठान जिसमें **50** या अधिक कामगार कार्यरत हैं अथवा विगत **12** महीनों में किसी भी एक दिन नियुक्त रहे हों, नियोक्ता को औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा-**9C** के अन्तर्गत शिकायत निवारण अधिसत्ता का गठन करना होगा, जो एक कामगार के औद्योगिक विवाद से सम्बन्धित हो। इस अधिसत्ता को अधिनियम की उप धारा **(1)** में उल्लेखित प्रक्रिया का पालन करते हुए अपनी प्रोसिडिंग्स को विनिर्दिष्ट अवधि में पूरी करनी होगी।

18.3 विवादों को स्वेच्छा से मध्यस्थता हेतु सुपुर्दकरना

औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा **10A** के अन्तर्गत जहाँ कोई औद्योगिक विवाद उपस्थित है अथवा उसकी आशंका है तथा जहाँ नियोक्ता और कामगार दोनों ही विवाद को मध्यस्थता हेतु लिखित समझौते के द्वारा किसी एक अथवा अधिक मध्यस्थों (श्रम न्यायालय अथवा ट्रिब्यूनल या राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल के पीठासीन अधिकारी सहित) को मध्यस्थता समझौते की शर्तों के अनुसार सुपुर्द **(Refer)** कर सकते हैं। किसी भी विवाद को धारा **10** के अन्तर्गत श्रम न्यायालय अथवा ट्रिब्यूनल अथवा राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल में लेने जाने के पहले ही मध्यस्थता हेतु मध्यस्थ/मध्यस्थों को सुपुर्द किया जा सकता है।

यदि मध्यस्थता समझौते में विवाद निपटारे हेतु मध्यस्थ सम-संख्या **(Even Number)** में है, तो समझौते में एक ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति का प्रावधान होना चाहिए जो अम्पायर **(Empire)** के रूप में अपना निर्णय तब दे सके मध्यस्थता करने वाले अपने अभिमत **(Opinion)** में बराबर संख्या में विभक्त हो जाये। ऐसी स्थिति में अम्पायर का फैसला मान्य होगा और वह अधिनियम के उद्देश्य की दृष्टि से मध्यस्थता फैसला **(Arbitration Award)** माना जायेगा। मध्यस्थता फैसले की एक प्रति उपयुक्त सरकार तथा कन्सीलिएशन अधिकारी को प्रेषित करनी होगी और उपयुक्त सरकार उसे प्राप्ति की एक माह की अवधि में गजट **(Official Gazatte)** में प्रकाशित करेगी।

जबकि औद्योगिक विवाद मध्यस्थता हेतु प्रेषित किया जाता है और उपयुक्त सरकार इस बात से सन्तुष्ट हो जाये कि मध्यस्थता हेतु जो पक्ष सहमत हुए हैं, वे प्रत्येक पक्ष के बहुमत का प्रतिनिधित्व करते हैं, तो उसे मध्यस्थता हेतु स्वीकार कर लिया जाता है। इसके अलावा जो नियोक्ता और कामगार जो मध्यस्थता समझौते के कामगार नहीं है, किन्तु विवाद से सम्बन्धित हैं, उन्हें भी मध्यस्थता करने वालों के समक्ष अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर मिलना चाहिए।

मध्यस्थता करने वाला अथवा वालों को विवाद की गहनता से जाँच-पड़ताल करनी चाहिए तथा उसके पश्चात् ही मध्यस्थता समझौते पर हस्ताक्षर करने चाहिए। जब औद्योगिक विवाद मध्यस्थता हेतु सुपुर्द किया गया हो और उसके सम्बन्ध में उप-धारा **(3A)** के अन्तर्गत नोटिफिकेशन किया गया हो तो उपयुक्त सरकार आदेश द्वारा उक्त विवाद के सम्बन्ध में चल रही हड़ताल अथवा तालाबन्दी पर प्रतिबन्ध लगा सकती है।

18.4 वैकल्पिक विवाद समाधान तन्त्र

अब सब यह महसूस करने लगे हैं कि वर्तमान न्याय व्यवस्था न्यायालयों के समक्ष आने वाले विवादों के निर्णयन हेतु पर्याप्त नहीं है। इसके अनेक कारण हैं। इसलिए विवादों के समाधान हेतु न्यायालयों में मुकदमों की बढ़ती संख्या के मध्यनजर यह आवश्यक हो गया है कि हमें संघर्षों के समाधान हेतु वैकल्पिक व्यवस्था विकसित करनी होगी। विगत वर्षों में इस दिशा में कुछ प्रयत्न हुए हैं। इन सामूहिक प्रयत्नों को जिनके परिणामस्वरूप वैकल्पिक व्यवस्था का जो स्वरूप उभरकर सामने आया है, उसे ''वैकल्पिक विवाद समाधान तंत्र'' (Alternative Disputes Resolution Mechanism) का नाम दिया जाता है और यह ADR के नाम से लोकप्रिय है।

ADR व्यवस्था में पक्षकार अपने विवादों के निपटारे हेतु नियायालय नहीं जाते हैं। वे किसी एक व्यक्ति को मध्यस्थ तय कर लेते हैं। ऐसा व्यक्ति निर्विवाद एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति (Person with Undisputed Repute) होना चाहिए तथा उसे विवाद का समाधान प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए करना चाहिए। उसके द्वारा दिया गया निर्णय, जो '**Award**' के नाम से जाना जाता है, विवाद के दोनों पक्षकारों के लिए बाध्यकारी होता है।

ADR का विकास विवादों से सम्बन्धित मामलों के शीघ्र निपटारे तथा गुणवत्तापरक न्याय प्रदान करने के उद्देश्य से हुआ है। इस सन्दर्भ में, न्यायालयों के वर्तमान ढाँचे के पूरक के रूप में ADR तन्त्र के फैलाव और उपयोग की महति आवश्यकता है। ADR केवल न्याय दिलवाने में ही मददगार साबित नहीं हुआ है, वरन् यह विवाद के पक्षकारों के मध्य मधुर सम्बन्ध स्थापित करने में भी सहायक होता है।

ADR में निम्नांकित तन्त्र/व्यवस्था का विकास अथवा उपयोग किया जाता है :

1. Arbitation
2. Mediation
3. Concilliation/Reconcilliation
4. Negotlation
5. Lok Adalat

उक्त तन्त्र के व्यापक शासन (Broader Governance) हेतु Arbltration Act, 1940 है, जिसके अन्तर्गत सभी पक्षकारों को सुनने के पश्चात् फैसला सुनाया जाता है। Mediation or Concilliation में पक्षकार स्वय आपसी विचार-विमर्श द्वारा किसी निर्णय पर पहुँचते हैं। लोक अदालतें, जो आज विवाद

समाधन का लोकप्रिय माध्यम बन गया है, में पक्षकार स्वयं आते हैं और उपयुक्त तन्त्रों का प्रयोग करते हुए विवादों का समाधान किया जाता है।

लोक अदालतों में दोनों पक्षकारों की उपस्थिति में मजिस्ट्रेट उन्हें मान्य फैसला सुना देता है और इस प्रकार संघर्ष का समाधान हो जाता है। लोक अदालतों में न्यायालय की प्रक्रिया का पालन नहीं किया जाता है। इसलिए इसमें न केवल विवाद के पक्षकारों का समय एवं धन बचता है, बल्कि सरकारी खजाने और सरकारी समय पर भी बोझ कम पड़ता है।

18.5 सारांश

संघर्ष मानवीय जीवन का एक स्वाभाविक एवं अपरिहार्य अंग है। संघर्ष मनुष्यों तक ही सीमित न रहकर पशु-पक्षियों, मछलियों एवं अन्य जीव-जन्तुओं में भी देखा जाता है। यह केवल अवलोकित सत्य ही नहीं है, अपितु अनुभव-सत्य भी है। अच्छा हो कि हम संघर्ष को असहमति के सन्दर्भ में ही लें और उसके उत्पन्न होने के मूल कारणों को भली-भाँति समझकर उसका व्यावहारिक एवं सर्वमान्य समाधान निकालें अन्यथा यह व्यक्ति, संस्था एवं समाज सभी के लिए घातक हो सकता है।

18.6 अभ्यास प्रश्न

1. संघर्ष समाधान के वैधानिक विकल्प पर प्रकाश डालिए
2. औद्योगिक विवाद अधिनियम के प्रावधानों को विवाद निपटारे के सन्दर्भ में स्पष्ट कीजिए।
3. संघर्ष समाधान के लिए हाल ही के वर्षों में विकसित वैकल्पिक विवाद समाधान तन्त्र का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
4. विवाद को स्वेच्छा से मध्यस्थता हेतु सुपुर्द करने के सम्बन्ध में अपने विचारों का परीक्षण करें।

18.7 सन्दर्भ ग्रंथ

1. औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1948
2. भारतीय संविधान
3. भारतीय श्रम संघ अधिनियम, 1926
4. Arbltration Act.

इकाई - 19

आपराधिक न्याय प्रशासन: अन्तर्विरोध निवारण का एक सिंहावलोकन

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2. दाण्डिक न्याय प्रशासन का अर्थ एवं महत्वता

19.2.1 दाण्डिक न्याय प्रशासन का अर्थ

19.2.2 दाण्डिक न्याय प्रशासन का क्षेत्राधिकार

19.2.3 दाण्डिक न्याय प्रशासन की महत्वता

19.3 आपराधिक विधि के विकास की व्यवस्थाएं

19.3.1 प्राचीन दाण्डिक न्याय व्यवस्था

19.3.2 बेबीलोनियन दाण्डिक न्याय व्यवस्था

19.3.3 रोमन दाण्डिक न्याय व्यवस्था

19.3.4 मुस्लिम दाण्डिक न्याय व्यवस्था

19.3.5 आंग्ल दाण्डिक न्याय व्यवस्था

19.3.6 भारतीय दाण्डिक न्याय व्यवस्था

19.3.6.1हिन्दु दाण्डिक न्याय व्यवस्था

19.3.6.2प्राचीन भारत में अपराध, अपराधी एवं आपराधिक विधि

19.4 अपराध के आवश्यक तत्व

19.4.1 कार्य करने हेतु आबद्व व्यक्ति हो।

19.4.2 आपराधिक मन:स्थिति हो।

19.4.3 कार्य या लोप हो।

19.4.4 आशय एवं उद्देश्य में भेद हो

19.4.5 मन:स्थिति के आग्रसरण में कार्य या लोप हो।

19.4.6 कृत्य विधि द्वारा निषिध हो।

19.4.7 विधि के अनुसार दण्ड देना रहे।

19.4.8 कृत्य एवं परिणाम में सम्बन्ध हो।

19.5 अपराध की विभिन्न अवस्थाएँ

19.5.1 आशय

19.5.2 तैयारी

19.5.3 प्रयास

19.5.4 पूर्ण घटित

19.6 अपराध के विभिन्न सिद्वान्त

19.7 दण्ड के विभिन्न सिद्वान्त

19.7.1 प्रतिरोधात्मक सिद्वान्त

19.7.2 प्रतिकारात्मक सिद्वान्त

19.7.3 निरोधात्मक सिद्वान्त

19.7.4 सुधारात्मक सिद्वान्त

19.7.5 प्रायश्चिकतात्मक सिद्वान्त

19.7.6 प्रतिकर सिद्वान्त

19.8 न्याय के विभिन्न सिद्वान्त

19.8.1. न्याय का समतामूलक सिद्वान्त

19.8.2 न्याय का उपयोगितावाद का सिद्वान्त

19.8.3. न्याय का सामाजिक संविदाकरण का सिद्वान्त

19.8.4. न्याय का हकदारी का सिद्वान्त

19.8.5. न्याय का सामान्य भलाई का सिद्वान्त

19.9 दाण्डिक न्याय के मूलभूत सिद्वान्त

19.10 आपराधिक विधि का स्वरूप

19.11 दाण्डिक न्यायालयों के अपराधों तथा मामलों का वर्गीकरण

19.11.1 अपराधों का वर्गीकरण

19.11.2 आपराधिक मामलों का वर्गीकरण

19.12 दाण्डिक न्यायालयों के न्यायधिक प्रशासन की व्यवस्था

19.12.1 उच्चजतम न्यायालय

19.12.2 उच्च न्यायालय

19.12.3 अधीनस्थ न्यायालय

19.13 दाण्डिक न्याय प्रशासन के सहयोगी दलबल

19.14 सारांश

19.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

19.16 प्रयुक्त कठिन शब्दावली

19.17 संदर्भग्रंथ-सूची

19.0 उद्देश्य

- इस ईकाई को आधोयान्त अध्ययन करने के पश्चात् अपराध, अपराधियों और दाण्डिक न्याय प्रशासन के तात्पर्य, क्षेत्र और महत्व के बारे में अवगत हो सकेगें।
- अपराध के तत्वों, चरणों, अपराध एवं दण्ड के विभिन्न सिद्वान्तों की गहन जानकारी हासिल कर सकेगें।
- दाण्डिक विधि को विकास व्यवस्था न्याय के सिद्वान्तों तथा दाण्डिक न्याय के मूलभूत सिद्वान्तों से सुपरिचित हो सकेंगें।
- दाण्डिक न्यायालयों प्रयुक्त आपराधिक विधि के स्वरूप, दाण्डिक अपराधों के वर्गीकरण के बारे में जान सकेगें। न्याय व्यवस्था के सामाजिक परिवेश को सीख पायेगें।
- दाण्डिक न्यायालयों की विभिन्न श्रेणियों और शक्तियों और दाण्डिक न्याय-प्रशासन के संगटक विभागों की कार्यप्रणाली के बारे में सुपरिचित हो सकेगें।

19.1 प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में व्यक्तियों के कृत्यों को सुनिश्चित नियंत्रित एंव नियमित करने हेतु राज्य द्वारा नियम बनाए जाते है। कानूनीभाषा में इनकों विधि कहते हैं। विधि एक ऐसा सिद्वान्त है। जिसकी सहायता से राज्य प्रजाजननों के आचरणों, व्यवहारों व कार्यकलापों पर उचित नियंत्रण रखते हुए समाज में शांति व्यवस्था बनाए रखना हैं। विधि मनुष्य की स्वच्छन्द जीवन को अनुशासित रखती है। जब-जब धर्म (विधि) की हानि हुई, शोषण अत्याचार और असमानताएं बढ़ने लगी, तब-तब उनका दमन करने के लिए ईश्वर शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ और न्याय और न्यायिक प्रक्रिया की पुनस्थापना हुई। हमारी प्राचीन दाण्डिक न्याय व्यवस्था अत्यन्त कठोर, जटिल एवं मानवीय रही है। न्यायिक प्रक्रिया का भी लगभग ऐसा ही स्वरूप रहा है। उस समय सुधारात्मक एवं मानवीय दृष्टिकोण गौण रहा था। विकसित एवं विकासशील सभी राष्ट्रों के समक्ष अपराध नियंत्रण की समस्या आज एक कठिनतम सम्पन्न और विपन्न सभी समाजों मे अपराध की संख्या मे निरन्तर हो वृद्वि रही है। वास्तविकता यह है कि अपराध संख्या मे प्रतिशत वृद्वि, जनसंख्या मे प्रतिशत वृद्वि से भी अधिक हो गई है। मानव की प्रारम्भिक अवस्था मे बदले की भावना प्रबल थी। दाँत के लिए तथा आँख के लिए आँख का सिहान्त मान्य था। प्राचीन समय से ही राज्यो का कायर् देश के अंदर शांति व्यवस्था बनाए रखना तथा ब्राध्य आक्रमण से रक्षा करना था। कुछ प्राश्चात्य देशों में मानव प्राणी के अलावा अन्य जीवधारियों दारा कारित क्षति भी दण्डनीय थी। निर्जीव वस्तुओ के सम्पकर् से होने वाली क्षति के लिए भी दण्ड की व्यवस्था थी। राजा का सबसे महत्वपूर्ण और

लाजिमी कार्य स्मतियों के अनुसार न्याय का प्रशासन करना होता था। दीवानी फौजदारी और राजस्वं मामलो की सुनावाइ राजा के दारा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप मे फैसला दिया जाता था। न्यायाधीश निष्पक्ष, स्वतंत्र,निभयर्, ईमानदार व कतर्व्य परायण होनी चाहिए। प्राचीन काल मे कुल क्षेणी गण अधिकत और नप इत्यादि न्यायालयो की क्षेणियां थी न्यायालय के सदन को धमाधिक रण कच हरी इजलास अदालत के नाम से जाना जाता था। दुनिया की न्यायिक व्यवस्था के दण्डिक न्याय प्रशासन को संचालित करने के लिए प्राचीन बेबीलोनियन, रोमन, मुस्लिम, मुगल, आग्ल और भारतीय दण्ड व्यवस्था के अनुसार ही दाण्डिक फौजदारी न्यायालय स्थापित किए गये थे। अपराध न्यायालय अपराध एवं दण्ड के सिद्धान्तों अपराध के तत्वों चरणों अपराध व दण्ड के विभिन्न सिद्धान्तों की विवेचना की जाएगी न्याय और दाण्डिक न्याय के प्रमुख सिद्धान्तों के बारें में बताया जायेगा। इसके बाद दाण्डिक न्यायालयों के न्यायिक प्रशासन आपराधिक विधि के विभिन्न स्वरूपों अपराधो के वगीकरण और न्यायिक व्यवस्था के सामाजिक परिवेश की व्यवस्था की जाएगी आपराधिक न्यायलयो के विभिन्न वर्गों शक्तियो और दाण्डिक न्याय प्रशासन से संसक्त विभागो की कार्यप्रणाली को समझाया जायेगा। दाण्डिक प्रकिया संहिता 1973 मे बताया गया है इसके पूव राजा नवाब समार्ट काजी मद्रास मुम्बई और कोलकता मे अदालते स्थापित की गई और तदपश्चात प्रिवी काउन्सिल फेडरल न्यायालय और सवोच्च न्यायालयो का विकास होता गया।

19.2. दाण्डिक न्याय प्रशासन का अर्थ एवं महत्वता

19.2.1. दाण्डिक न्याय प्रशासन का अर्थ

दाण्डिक न्याय प्रशासन से तात्पर्य भारत मे प्राचीन से वर्तमान काल तक फौजदारी मामलो के संचालन हेतु स्थापित किए गए न्याय प्रशासन को ही दाण्डिक न्याय प्रशासन के नाम से पहचानते है। अपराध से अभिप्रेत कोई ऐसे कार्य से है जो तम्समय प्रवता किसी विधि दारा दण्डनीय बना दिया गया हो। फौजदारी मामलो के अन्तर्गत समन वरिष्ठ मामले आते है फौजदारी मामले की कार्यवाही थाने मे प्रथम सूचना रिपोर्टया दाण्डिक न्यायालय के समक्ष परिवाद पक्ष प्रस्तुत करके मामले संक्षिप्त किए जाते है न्यायिक कार्यवाही हमेशा न्यायालय के कार्यवाही हमेशा न्यायालय के गठन और 'शक्तियों के बारे मे प्रावधान दण्ड प्रकिया संहिता 1973 के अध्याय.2 मे धारा 6 से 35 तक मे व्यवस्था की गई है। दाण्डिक न्याय प्रशासन के अन्तर्गत पुलिस न्यायालय कारागह विधि विज्ञान प्रयोगशाला चिकित्सक लोक अभियोजक वैज्ञानिक किशोर न्याय व महिला से सम्बन्धित विभाग और अधिक्त भी इस न्याय प्रशासन के अभिन्न भाग होते है। पुलिस के अन्तर्गत राज्य और केन्द्र के आरक्षीदल रेल्वे सुरक्षा बल फौजदारी अन्वेषण विभाग और केन्द्रीय अन्वेषक का सूचना कस्टम इत्यादि विभागो के सुरक्षा दल सम्मिलित होते है

19.2.2 दाण्डिक न्यायालयो का क्षेत्राधिकार

जब कोई फौजदारी मामला प्राथमिक परिवाद के माघ्यम से पंजीकत या दायर किया जाता है सर्वप्रथम उस मामले की क्रमश: न्यायिक दण्डाधिकारी, उपर मुख्य दण्ड नायक या मुख्य दण्डनायक, सहायक या अतिरिक्त सैशन या सैशन, उच्च या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बहस सुनकर निर्णय दिया जा सकता है। लेकिन संशीन मामलों का विचारण केवल अपर सैशन या सैशन न्यायालय द्वारा ही किया जाता है।

इसके बाद फौजदारी मामले की किस्म के अनुसार अपील पुन: रीक्षण और पुन: र्विलोकन या निर्देश या लेख याचिका या विविध याचिका में उस प्रकरण की सुनकर न्यायधीश मजिस्ट्रेट द्वारा निर्णित किया जाता है।

19.2.3 दाण्डिक न्याय प्रशासन का महत्वता

जब दो या अधिक व्यक्तियों के बीच झगड़ा लड़ाई शुरू हो जाती है उसमें जानमाल की क्षति पहुंचाई गई हो तो सर्वप्रथम जहां अपराध घटित हुआ है उस क्षेत्र के पुलिस थाने में निम्नलीखित या मौखिक रूप से प्रथम सूचना प्रतिवेदन पंजीबद्व करवाने हेतु व्याथित पत्रकार/पत्रकारों के द्वारा जानमाल का नुकसान करने वाले व्यक्ति के विरूद्व या तो प्राथमिकी दर्ज करवाई जाती है या फिर सम्बन्धित स्थानीय क्षेत्राधिकार रखने वाले सक्षम दण्ड न्यायालय के समक्ष परिवाद पत्र दायर करवाया जा सकता है। न्यायालय पक्षकारों में हुए विवाद या घटनास्थल पर घटित अपराध को शांत और न्याय प्रदान करने के साधन है। दण्ड न्यायालयों के महत्व को कभी गौण नहीं किया जा सकता है। फौजदारी न्यायालयों का महत्व निम्नलिखित कारणों से बढ़ता जा रहा है। 1. प्राथमिकी पंजीबद्व करवाना 2. समक्ष न्यायालय के समक्ष परिवाद-पत्र पेश करना 3. लेख/विविध याचिका दायर करना 4. अपील करने का हक 5. निगरानी करने का हक 6. नजरसानी करने का हक 7. अभ्यापति दायर करने का हक 8. निर्देश उच्च न्यायालय के समक्ष भेजने का हक 9. विशेष अनुमति याचिका (अपील) दायर करना। 10. पुन: सुधारात्मक याचिका दायर करना तथा 11. दाण्डिक विविध प्रार्थना-पत्र सुपुर्दगीनामा, जमानतनामा, मुचलके पेश करना और स्वीकार करने की 'शक्ति 12. न्यायालयो को दाण्डिक मामलो मे सजा स्थागित करना 13, प्रथम सूचना प्रतिवेदन को अपास्त करना 14, मृत्य दंड आजीवन कारावास या दण्ड विधि के प्रावधानो के अनुसार सजा या बेकसूर निर्दोष दोषित करके सजायाप्ता या दोषमुक्त रिहा करना 15, दया याचिका को ग्रहण कर सजा को माफ कम करना सजा मे परिवर्तन संशोधन करने की शक्ति इन सभी कारणो से दण्ड न्यायालयो के महत्व की कम नही किया जा सकता है जनास्था बढ गई है ।

19.3 अपराधिक विधि के विकास की व्यवस्थाएं

19.3.1 प्राचीन दाण्डिक न्याय व्यवस्था 19.3.2 बेबीलो नियम दाण्डिक न्याय व्यवस्था 19.3.3. रोमन दाण्डिक न्याय व्यवस्था 19.3.4 मुस्लिम दाण्डिक न्याय व्यवस्था 19.3.5 ब्रिटिश दाण्डिक न्याय व्यवस्था और 19.3.6 भारतीय दाण्डिक न्याय व्यवस्था मानव स्वाभारत ही एक संघर्षशील प्राणी होने के कारण अपराध रहित समाज की कल्पना करना व्यर्थ होगा। वास्तव मे देखा जाए तो ऐसा कोई समाज नही होगा जिसमे अपराध और अपराधियो की समस्या न हो अपराध की परिकल्पना आवश्यक रूप से सामाजिक व्यवस्था से जुडी हुई है, इस तरह आपराधिक विधि के विकास क्रम को हमे निम्न भागो मे वगीकृत कर सकते है

19.3.1 प्राचीन दाण्डिक न्याय व्यवस्था

प्राचीन काल मे मानव प्राणी की जरूरत जीवनकाल मे कम होती थी समय के अनुसार मानव सभ्यता संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था का विकास होता रहा हमारी प्राचीन दाण्डिक न्याय व्यवस्था का विकास जटिल एंव मानवीय रही है न्यायिक प्रकिया का भी ऐसा ही स्वरूप् रहा है। उस समय सुधारात्मक

और मानवीय दृष्टि कोण गोण था। मानव अकेले से परिवार समाज समुदाय मे रहने लगा मनुष्य आरवेट पशु पालन कृषि युग से गुजरकर ओधोगिक युग मे कार्य को तत्पर रहने लगा मानव वध के लिए मृत्यु का प्रावधान था

19.3.2 बेबीलोनियन दाण्डिक न्याय व्यवस्था

इसे रवेम्बूराबी दाण्डिक न्याय व्यवस्था भी कहा जाता है इसमे अपराधो की विभिन्न श्रेणियां है तथा उन के लिए कठोर और बर्बर दण्ड की व्यवस्था है यह अस्पष्ट है कि अपराध व्यक्ति के प्रति है या राज्य के प्रति इस व्यवस्था मे अपरिपक्वता पायी गई है

19.3.3 रोमन दाण्डिक न्याय व्यवस्था प्राचीन रोम दण्ड व्यवस्था

इसकी झलक 12 सारणियो मे मिलती है जिसकी आठवीं सारणी निजी डिडेलिक्टस से सम्बन्धित है जिसमे अपराधो से सम्बन्धित 26 विषय वर्णित है। अपराध सम्बन्धी अधिकारिता का मिशन सेचुरियाटा का मिशन टिब्यूटा तथा सीनेट मे निहित थी। इसमे का मिशन से चुरियाटा मे मृत्यु दण्ड देने का अधिकार था अपनी 'शक्ति का प्रत्यायोजन आयुक्तो को कर सकते थे जस्टीनियम काल मे अपराधो का 1. लोकन्याय 2. असाधारण अपराध तथा निजि दुष्कति तीन प्रकारो मे वर्गीकरण किया जाता था लोकन्याय के अन्तर्गत चार तरह के अपराध आते थे जो कि राज्य के विफल अपराध 2.लैगिंक अपराध 3. हिसा के अपराध तथा 4. मानव वध जिसमे उपेक्षा से कारित मृत्यु नही आती थी दण्ड बदले के सिद्धान्त पर आधारित होते थे इसमे सभ्यता के विकास के साथ साथ मानवीय तथा सुधारात्मक सिद्धान्तों को मान्यता प्राप्त हुई।

19.3.4 मुस्लिम दाण्डिक न्याय व्यवस्था

मुगल कालीन 'शासन मे भारत मे प्रचालित दण्ड व्यवस्था के अनुसार अपराधियो को दण्डित किया जाता था यह दण्ड न्याय प्रशासन कुरान द्वारा प्रशासित होता था यह व्यवस्था अत्यन्त बर्बर और अमानवीय थी इसमे प्राकतिक न्याय के सिद्धान्तों के लिए कोई स्थान नही था। छोटे छोटे अपराधो के लिए कठोर दण्ड दिया जाता था चोरी के अपराध मे आर्ययुक्त के हाथ काट दिए जाते थे और व्याभिचार के मामलो मे अभियुक्त को पत्थरो से मारा जाता था इस न्याय प्रशासन मे काजी मुक्ती मौलवी आदि का विशेष योगदान रहता था यह न्यायिक प्रणाली अत्यन्त जटिल एंव अव्यव्हारिक थी मौलिक अपराध विधि कुरान हदीस इजमा तथा कयास मे मिलती है प्रकियात्मक विधि मानव दारा बनायी गई है कुमारी गमन को दुष्टता और एक कुमार्ग पैगम्बर ने बताया था अपराधियो को दण्ड के रूप मे फासी न लगा कर कोडे लगाए जाते थे मुस्लिम दाण्डिक न्याय व्यवस्था मे किसा प्रतिकर बदला 2. दिया खून का मूल्य 3. हद सीमा और 4.ताजीर विवेकालीन के चार स्वरूप मौजूद थे मानववध को 1. कत्ल अम्द 2. कत्ल 'शबाह अम्द 3. कत्ल खता 4. अस्वैच्छिक मानववध तथा 5. दुर्घटनात्मक मानववध इत्यादि पांच भागो मे बाटा गया था।

19.3.5 आग्ल या ब्रिटिश दाण्डिक न्याय व्यवस्था

आम्ल विधि मे दण्ड व्यवस्था का क्रम ब्रघ्द इतिहास 'शुरू से मिलदाना कठिन है भारत को न्यायिक व्यवस्था तथा न्यायिक प्रकिया ब्रिटिश न्याय व्यवस्था एंव न्यायिक प्रकिया की देन है कुछ अपराध जैसे

राजा की हत्या की योजना चर्च मे झगडा करना राजा की 'शांति भंग करना मिथ्या साभ्य देना अशुचिता जारकर्म कौटुम्बिक व्यमिचार कुमारी गमन मानववध बलात्संग तथा अश्लील हमले आदि अपराध बहुत पहले ही पाये गये है दण्ड 'शारीरिक और आर्थिक दोनो ही दिए जाते थे मृत्यु दण्ड अंग भंग या कोडे लगाने के 'शारीरिक दण्ड दिए जाते थे कारा वास का दण्ड नही था अपराधी से अतिग्रस्त व्यक्ति को प्रतिकार दिया जाता था दण्ड मे भंयकर रूप जैसे हाथ पैरो को काट देना कान नाक काट देना आदि सिर की खाल उतार देना या आंखे निकाल देना आदि मौजुद थे। दिव्य परीक्षा जैसे गर्म लोध, अग्नि, जल, जहर और तुला परीभा तथा युद्व द्वारा प्रथा की विद्यमान थी। सम्राट और काजी को मुकदमों का विश्चिय करने की शक्तियां दी गई। रेग्यूलेटिंग कानून द्वारा कलकता में एक सर्वोच्च न्यायालय स्थापित किया गया था। विचारण के लिए विशेष न्यायालय स्थापित किए गये विधियो के सहिंता करण के लिए विधि आयोग का गठन किया गया था विधायी प्रशासिक एंव वितिह 'शक्तियां सपरिषद भारत के सचिव मे निहित की गई विधिक एंव न्यायिक दृष्टि से निम्मलिखित महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गये थे 1.विधायी 'शक्तियो का विभाजन 2.विधानमंडल का दिसदनात्मक बनाना 3.विधियो का संहिता करण 4.फोडरलन्यायालय की स्थापना 5.प्रान्तो मे उच्च न्यायालयो की स्थापना 6.हदेय 'शासन प्रदति का 'शुभारंभ 7.निर्वाचन मंडलो का गठन तथा 8.मतदाताओ की अहिताये आदि तथा कई न्यायिक सुधार किए गये थे।

19.3.6 भारतीय दाण्डिक न्याय व्यवस्था

19.3.6.1 हिन्दु दाण्डिक न्याय व्यवस्था

हिन्दु दण्ड व्यवस्था धर्मशास्त्रो मे मिलती है हमला प्रहार अवभावना चोरी लूट हिंसा जारकर्म आदि अपराधो का मनुस्मति मे वर्णन है 'शैशवावस्था मत्रता विकताचित की स्थिति कार्य करने मे विवशता तथा कपट के अधीन कार्य करने के लिए आपराधिक दायित्व नही होता था निन्दा अत्रसना जुर्माना सम्पति का समपहरण तथा 'शारिरिक दण्ड दिए जाते थे 'शारिरिक दण्ड मे मृत्यु दण्ड कारावास और निर्वासन आदि थे सम्पूर्ण विश्व दण्ड के अधीन है देव दानव मानव गन्वर्ध राक्षस पक्षी तथा नाग थे सब दण्ड भय से ही त्रस्त होकर नियम मे रहते है दण्ड के उचित प्रयोग न होने पर सभी वर्ग दुषित हो जायेगे धर्म के सब बंधन टूट जाने पर सभी मे विद्रोह उत्पन्न हो जाता है। राजा धर्म अर्थ काम से बढता है किन्तु कामासक्त विषम और क्षुद राजा उसी दण्ड से नष्ट हो जाते है। जो राजा पवित्र सत्यनिष्ठ 'शास्त्रानुसार आचरण करने वाला बुद्धिमान और क्षेष्ठ सहायको से सम्पन्न हो वही दण्ड का प्रयोग कर सकता है

19.3.6.2 प्राचीन भारत मे अपराध अपराधी और अपराधिक विधि

प्रकिया विधि की उत्पति और विकास का प्रांरभ पातक्रम 'शब्द से हुआ था इसके बाद यह 'शब्द व्यव्हार दोष अपकार के लिए दाण्डिक कानून मे प्रयोग किया गया था। मुस्लिम काल मे इस 'शब्द को गुनाह और आपराधिक गलती करने वाले को गुनाहागार कहा गया ब्रिटिश काल मे दाण्डिक कानून मे आपराधिक दुराश्य कहा जाता है और अपराध करने वाले को अपराधी आफेण्डर बचावक कहा गया जिसे अपराध की अवधारणा का जन्म पातक पाप 'शब्द से व्युत्पति हुई है वह कार्य जिसमे समाज मे नैतिक और सामाजिक मूल्यो को मूल्यांकित करके विधि के अनुसार ऐसा कार्य या लोप जो विधि

विफल हो अपराध पाप कहलाता है पातक 'शब्द की व्युत्पति वेदो मे श्रुति से उदगमन हुआ है और धर्मशास्त्रो मे विकसित हुआ था धर्मशास्त्रो और श्रुतियों मे दो सुभिन्न भागों आचार और व्यव्हार मे ही पातक पाप को सुविचारित किया गया था प्रत्येक कार्य जो धर्म के विरोधाभाषी हो और जो सभी त्रुटिपूर्ण कार्य कलापों और पाप दायक सभी पूरे सरगम पाप की अवधारणा कहा गया है जो जिनमे नैतिक प्रावधान का उल्लंधन करते हो और ऐसे कार्य जिनमे नैतिक धार्मिक सांस्कतिक और सामाजिक नियमो का उल्लंधन किया गया हो। इसे ही हम पापदायक या त्रिटिपूर्ण किय्राकलाप कहते है दुसरे 'शब्दो मे वह कार्य जो धर्मविफड हो उसे पाप कहते है इसमे आचार और व्यव्हार दोनो मे नियमो को उल्लंधित कर दिया जाए वह उसे ही हम पाप कहते है यदि केवल पाप के नियमो का उल्लंधन हो और इसमे धार्मिक स्वीकति इसे हम प्रायश्चित कहते है। इसमें राजा और राज्य परस्पर सम्बन्धित नहीं है और केवल सिविल कार्यवाही सदैव पीड़ित पक्षकार के हाथ में रहती है। एक व्यक्ति के आधिकार यदि किन्हीं प्रावधान के उल्लंघन द्वारा प्रभावित होते है। तो वह विधि के लिए न्यायालयों के समक्ष उपचार ले सकता है। लेकिन दाण्डिक विधि के प्रावधानों के उल्लंघन न होने की दशा में कोई भी सदस्य कानून को लागू करवाने के लिए लेख याचिका के माध्यम से राजा या राज्य को इसके उल्लंघन करने की सूचना दी जायेगी। इस विधि के संप्रत्यय की उत्पति बृहदारण्यक उपनिषद में हुई लगती है। कानून औ धर्म यौद्वा वर्ग या क्षत्रिय की शक्ति होते थे। धर्म में बढ़कर कोइ ताकतवर नहीं है, विधि राजाओं की राजा है, इसमें बढ़कर कोई भी शक्तिशाली नहीं होते है चाहे वह पद प्रभाव एवं शक्ति कितना ही बड़ा क्यों नहीं हो। विधि कमजोर व्यक्ति को बलिष्ठ बनाती है। राजा को विधि की पालना कराने को कर्तव्य सौंपा गया है। उसे अपने राज्य या सम्राज्य का प्रशासन विधि के अनुसार ही संचालित करना होगा। राज्य की आन्तरिक और बाहरी सुरक्षा के लिए पुलिस और सैन्य बल की सहायता ली जाती है। कॉटिल्य के अर्थशास्त्र, महाभारत के शांति-पर्व श्रीमद्भागवत् गीता और स्मृतियों के अन्तर्गत दण्ड देने की शक्ति के बारे में उल्लेख किया गया है। राजलेख कानून 1833 के अन्तर्गत प्रथम भारतीय विधि को स्थापित किया गया था। इस आयोग के अध्यक्ष लार्ड मेकाले को बनाया गया था। इस आयोग ने भारतीय दंड संहिता को मसौदे को बनाकर सन् 1937में पेश किया गया था। इस दण्ड संहिता में संशोधन करने वालों में प्रमुख बेनार्ड पीकाक थे। इस संशोधित मसविदे को सन् 1856 में विधान परिषद् में प्रस्तुत किया गया था। 6 अक्टूबर 1860 की भारतीय दण्ड संहिताकरण अपने आप में सम्पूर्ण संविधि बन गया। हमारे संविधान की सांतवी अनूसूचि की समवर्ती सूची के अन्तर्गत दण्ड संहिता और दाण्डिक प्रक्रिया संहिता को शामिल किया गया था। इन संहिताओं के विधायन की पूर्ति कराने के लिए हमारी संसद/विधायिका को संविधान के अनुच्छेद 246 के अन्तर्गत राज्य विधायिका को भी कानून बनाने की शक्ति दी गई है। यदि राज्यों की विधानपालिका द्वारा कोई कानून बासा या विसंगत बना दिया गया हो तो भारतीय संसद को अनुच्छेद 251 में कानून बनाने के शक्ति दी गई है। संसद अनुच्छेद249 में राष्ट्रीय हित में तथा अनुच्छेद 250 में आयातकाल की घोषणा के दौरान राज्य सूची में वर्णित विषयों पर कानून बनाने की शक्ति दी गई है। संसद द्वारा बनाया गया विशिष्ट कानून राज्यों द्वारा बनाये गए सामान्य कानून पर अधिमानता रखता है। पुलिस संगठन की शक्तियों और कार्यों को संविधान की दूसरी या राज्य सूची के प्रवि"ट संख्या 1 व 2 में राज्य विधानपालिका को नियम बनाने की शक्ति दी गई है। विभिन्न प्रकार के अपराधों, दण्डों, न्यायिक

प्रशासन, भारतीय प्राचीन विधि की उत्पति इत्यादि के बारे में मनुसंहिता को धर्मशास्त्रीय साहित्य स्मृतियों और पी.वी.काणे द्वारा लिखित बहुभागीय 'पुस्तक धर्मशास्त्र में स्पष्ट उल्लेख किया गया है। आरंभिक विधिक विकास का लेखन का प्रतिनिधित्व या ड्रावलक्य, विष्णु, नारद, बृहस्पति, कात्यापन, अत्री व पाराशर ऋषियों ने किया था।

आपराधिक न्याय प्रशासन के अभिन्न अंग के रूप में हम दाण्डिक न्यायालयों, पुलिस, अभियोजकों, काशपालों, विधि विज्ञान के वैज्ञानिकों, चिकित्सकों, न्यायाधीशों, दण्डाधिकारियों, विशेषज्ञों, साक्षीगण दस्तावेज तथा अधिवक्ताओं को मानते है। आपराधिक न्याय प्रशासन में किसी फौजदारी मामले के विचारण त्वरित और शीघ्रतिशीघ्र करते तुंरत न्याय में विलम्ब करना न्याय देने से इंकार करने के बराबर होता है। वहीं दूसरी ओर यह कहावत भी प्रचलित हो गई है कि ''न्याय में जल्दबाजी करना न्याय को जलाने के समान है।''

अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्रो मे यह बताया गया है कि राजा न्याय का फौहारा या झरना है। प्राचींन काल मे राजा के दरबार मे निम्न न्याय मे सहायता और ब्रहम और स्थानीय न्यायालय मे बैठन वाले लोकप्रिय नाम 1 पुगारा 2 क्षीनिस 3 कुलास और 4 मध्यस्थ इत्यादि थे। हिन्दु विधि मे अधिकार व्यक्ति को कर्तव्यो के निर्वहन को और ज्यादा आकर्षित किया गया है । प्राचीन समय मे न्यायालयों द्वारा निम्न प्रकार के दण्ड दिए जाने की व्यवस्था को उल्लेंखित किया गया है। यथा 1.वागदण्ड 2. दिगदण्ड 3. अर्थदण्ड और वधदण्ड के तरीकें को प्रयोग में लिया जाता था । ब्रहस्पति ने न्याय प्रदान करने वाले न्यायालयों को यथा 1. प्रतिष्ठा 2.अप्रातिष्ठा 3.मुदारिता और सास़त्रिता मे विभक्त किया था।

हमारे महाग्रंथ रामायण के अन्तर्गत धर्म अर्थ और काम की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है रामायण मे व्यवहार दाण्डिक, प्रशासनिक और संवैधानिक सिहान्तों का बरवान किया गया है । इस महाग्रंथ के अन्तर्गत यथा 1. अर्थशास्त्र 2. राजशास्त्र 3. नीतिशास्त्र और 4. दण्डनीति के बारे में स्पष्ट विवेचना की गई है। इसमे साम ,दाम , दण्ड भेद क्षमा , धर्म ,सत्य ,धैर्य ,मर्यादा ,पराक्रम और दण्ड आदि को 'श्वासकर उजागर किया गया है । राजा द्वारा राजधर्म चलाने के लिए 1.न्याय 2. विनय 3. दण्ड तथा 4. अनुग्रह इन चार गुणो धारण करना अपेक्षित किया गया है । समुची दुनियां धर्म कानून पर जीवित रहती है । श्रीराम ने भरत को राजचलाने के लिए विधि प्रशासन को 'शासन में रखने को अतिआवश्यक बताया। रामायण में विधिक न्यायिक कार्यवाही को व्यवहार माना है। राज्यशासन को चलाने के लिए धर्म के सत्य और न्याय दोनों उपायों को आधार स्तम्भ माना गया है। विधि(धर्म) के बिना राज्य का प्रशासन चलाने को असंभव बताया गया है। महर्षि वेद व्यास ने ऋगवेद, सामवेद, अर्थवेद और यजुर्वेद के अन्तर्गत नित की अवधारणा को सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण बताया है।

इस संसार में प्रकृति की कुछ स्वचालित व्यवस्थाएं कायम है। इस स्वचालित विधि(धर्म) के द्वारा अन्याय और कुप्रशासन के पीड़ितों की निराशा को मिटाया जा सकता है। रित का संप्रत्यय हमें यह सिखाता है कि प्रकृति के नियम उसकी नियमित व्यवस्था के अधीन होते है। यह व्यवस्था विधि के आबहकारी बल को जन्म देती है। विधि की अवधारणा को कुदरती रित नैतिक सम्बल प्रदान करती है। यह सत्य और न्याय पर आधरित आदेश ही नियम बनाते है। मनु ने कहा था कि दण्ड़ केवल वह हथियार है जो कि

समाज में व्यक्ति के अधिकारों को बचाता/ संरक्षित करता है। आगे बोला कि राजा को जनता के अधिकारों को सरंक्षण करने के लिए ईमानदारी नि"पक्षता और निरर्भरता का गुण रखना होगा। राजा को अपराधी चाहे उसका पिता, शिक्षक, मित्र, माता, पत्नी, पुत्र, और घरेलु नौकर और पुजारी ही क्यो न हो उनको दण्डित किए बिना नहीं छोड़ना चाहिए। इसमें यह प्रलक्षित होता है कि बिना किसी भेदभाव के अपनाए हुए विधि के समक्ष समानता और विधियों के बीच समान संरक्षण बरतने के सिद्वान्तों को न्यायहित में अपनाया गया है। मनु ने राजा (न्यायधीश) से फिर यही अपेक्षा की है कि उसे हमेशा अनुचित, अन्याय और अमानवीयता के विरूद्व हमेशा लामबन्द रहकर सतर्कता रखनी चाहिए।

इस्लामधर्म के अन्तगर्त पैगम्बर मौहम्मद ने जीवन के आधारभूत मानवधिकारों की स्पष्ट चर्चा की थी। कुरान और सुन्नाह में मानवधिकारों के पूर्ण चरित्र को उजागर किया गया है। और इनमें मानव के प्रति सभी भेदभाव को उन्मूलित करने की भरसक चेष्टा की गई थी। इसमें राष्ट्रीयता, श्रेष्टता, वंश और नस्ल के विभेद को निवासित करने के प्रयास किए गये है। कुरान में धार्मिक, जीवन और प्राण के स्वतंत्रता के अधिकारों को सरक्षित किया गया है। व्यक्तिगत, संचरण और अभिव्यक्ति की आजादी को बचाने की हिदायतें दी गई है। सम्मान, गरिमा, समता, गौरव और भाईचारे और एकान्तता के हकों का समर्थन किया गया है। इसमें व्यक्ति परिवार के हक, निष्पक्ष सारोकार आजीविका और सम्पति के हकों के बारे में स्पष्ट विवेचना की गई हैं। प्राचीन न्याय प्रशासन के अन्तर्गत मृत्युदंण्ड, माहपातकास, स्त्री हत्या और देश निर्वासन जैसे शारिरिक दण्डों के दाण्डिक न्याय प्रणाली के अन्तर्गत रखा गया है। वर्तमान में भारतीय दंड संहिता की धरा 53 के अधीन 1मृत्यु 2आजीवन कारावास है 3. कठोर एंव सादा कारावास 4. सम्पति का समपहरण तथा जुमाना आदि दण्डों सें अपराधी के दोष सिद्व होने पर दण्डनीय बनाने की व्यवस्था दण्डित न्याय प्रशासन में की गयी है।

19.4 अपराध के आवश्यक तत्व

अपराध को परिभाषित करना एक कठिन कार्य है। साधारण भाषा में 'अपराध' शब्द का अर्थ उस कार्य से है जिसे समाज अनैतिक तथा अनुचित समझता है। इसे सामाजिक शांति का विनाशक भी माना जाता है। ब्लैक स्टोन, स्टीफन, आस्टिन, कैनी और मिलर जैसे विधिशास्त्रियों ने अपराध को परिभाषित किया है। अपराध का जितना अधिक प्रचलन है उसकी परिभाषा देना उतना ही कठिन है कोई भी विद्वान इसकी पूर्ण उपयुक्त परिभाषा नहीं दे पाया है। भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा 40 अपराध ऐसाकार्य अथवा कार्य का लोप जिसे विधि द्वारा दण्डनीय बनाया गया हो, संहिता के अन्तर्गत अपराध है। अपराध के निम्न तत्व बताए गए है।

(1) विधि द्वारा विशिष्ठ कार्य करने के लिए आबह व्यक्ति

(2) व्यक्ति की आपराधिक मन: स्थिति होनी चाहिए।

(3) मन: स्थिति को अग्रसर करने में कार्य अथवा कार्य का विलोप होना चाहिए।

(4) कार्य अथवा कार्य के विलोप द्वारा अन्य व्यक्ति अथवा सामाजिक, वैयक्तिक, मानसिक अथवा भावनात्मक हो सकता है।

(5) आपराधिक आश्य के संदर्भ में आशय और उद्देश्य में भेद होना चाहिए। किसी अपराध को करने के पीछे अच्छा ध्येय हो सकता है परन्तु उस कृत्य को करने का आशय बुरा, हानिकारक तथा विधि द्वारा हो सकता है। अत: अपराध को सिद्व करने के लिए प्राय: अपराधी के आपराधिक आशय पर ही ध्यान दिया जाता है न कि उसके द्वारा किए गए उद्देश्य पर स्वैच्छया, बेईमानी से तथा कपटपूर्वक, भ्रष्टतापूर्वक, परिद्वेष से, स्वैरिता से, उतावलापन या अपेक्षापूर्व शब्द भारतीय दंड संहिता में आपराधिक आशय का बोध कराते है।

19.5. अपराध की विभिन्न अवस्थाएँ

कोई भी अपराध एकदम कारित नहीं किया जाता है। एक अपराध विभिन्न चरणों या अवस्थाओं में कारित होता है, जिनमें से कुछ दण्डनीय है और कुछ को दण्डनीय नहीं बनाया गया है। अपराध करते समय निम्नलिखित चार अवस्थाओं/चरणों गुजरना पड़ता है।

19.5.1 अपराध का आशय 19.5.2 अपराध की तैयारी 19.5.3 अपराध का प्रयास तथा 19.5.4 अपराध का कारित होना

19.51 अपराध का आशय

आशय/मनसा अपराध कारित किये जाने की प्रथम अवस्था है। कोई भी आपराधिक कृत्य बिना आशय के कारित नहीं किया जा सकता है। अपराधी तभी बनता है जब आपराधिक कृत्य करने से पूर्व उसके प्रति कोई बुरा आशय या इरादा रहा हो। किसी भी कार्य को अंजाम दने से पूर्व उसे करने के लिए मानव मन में कुछ भावनांए उत्पन्न होती है। जिन्हें हम उसका आशय कह सकते है। कोई भी अपराध कारित करने के लिए सर्वप्रथम व्यक्ति ऐसा आशय इरादा बनाता है। अपराध की पहली सीढ़ी या चरण दण्डनीय नहीं है। कोई व्यक्ति कितना ही बड़ा अपराध करने का अपने मन में विचार करें उसका आशय अपराध नहीं माना जा सकता। मात्र आशय रखने के आधार पर व्यक्ति दंडित नहीं किया जा सकता है। इसमें आपराधिक षडयंत्र, उत्प्रेख और सहयोग करने को दंडित करने का प्रावधान किया गया है। व्यक्ति के मस्तिष्क के पूर्व मिलन या अपराध के बारे में कोई एक राय होकर योजना बनाए या कोई वैध कार्य अवैध साधनों द्वारा करने, या अवैध कार्य को वैध साधनों द्वारा करने के विचार को दंडित किया जा सकता है।

19.5.2 अपराध की तैयारी:

यह अपराध कारित करने की दूसरी सीढ़ी या चरण की तैयारी है। इरादा बना लेने के बाद व्यक्ति उस अपराध को कारित करने की तैयारी करता है। बिना तैयारी के कोई अपराध कारित नहीं किया जा सकता है। अपराधी द्वारा अपराध को करने के लिए आवश्यक साधनों को जुटाना, एकात्रित करना व प्रबन्ध करना तैयारी की अवस्था होती है। चाकू, रिवाल्वर, हथियार, जहर, मकान के ताले तोड़ने की सामग्री बस या साधन की व्यवस्था करना सभी तैयारी करने के उदाहरण है। आशय की तरह तैयारी भी दण्डनीय नहीं है। परन्तु भारतीय दंड संहिता की निम्नलिखित धाराओं के अन्तर्गत तैयारी करने को निम्न अवस्थाओं में दण्डनीय बनाया गया है।

1- भारत सरकार के विरूद्व युद्व करने की तैयारी करना (धारा 122)

2- भारत सरकार के साथ शांति पूर्व सम्बन्ध रखने वाले राष्ट्रों में लूट या आतंक मचाने की तैयार करना।

3- डकैती डालने की तैयारी करने (धारा 399) को दंडनीय बनाया गया है। धारा 402, 233, 234, 235, 242, 243, 254, 256, 259, 266व 465 की तैयारी का दंडित किया गया है।

19.5.3 अपराध का प्रयास:

अपराध करने की तीसरी अवस्था या चरण इसका प्रयत्न या प्रयास करना है। आशय और तैयारी मिल कर व्यक्ति को अपराध कारित करने के लिए प्रेरित करते है। जिसे ही अपराध प्रयास या प्रयत्न कहते है। प्रयास करने पर ही कोई अपराध कारित किया जा सकता है, अन्यथा नहीं तैयारी पूरी होने के बाद प्रयास प्रारम्भ होता है और किसी कृत्य या लोभ का किया जाना उस अपराध को करने के निमित्र अगला कदम होता है। अपराध करने का प्रयास हर परिस्थिति में दण्डनीय है चाहे अपराध घटित हुआ हो या नहीं। प्रयास दो तरह का हो सकता है। 1. सफल प्रयास; 2. असफल प्रयास। असफल प्रयास को हम दो भागों में विभक्त कर सकते है। 1. सम्पति के लिए असंभव/असफल प्रयास और 2. शरीर के लिए असंभव/असफल प्रयास। सम्पति के लिए असफल प्रयास के हाने पर भी दंडित किए जाने की व्यवस्था की गई है परन्तु शरीर सम्बन्धी अपराध के असफल प्रयास को दंडित नहीं किया जा सकता है। भारतीय दंड संहिता 1860 की निम्नलिखित अवस्थाओं में अपराध करने के प्रयास को पृथक रूप से दण्डनीय माना गया है-

1- भारत सरकार के विरूद्व युद्व करने का प्रयास करना। (धारा 121)

2- लोक सेवक द्वारा रिश्वत लेने का प्रयास करना (धारा 161)

3- लोक सेवक पर भष्टतरी को से प्रभाव डालने या रिश्वत देने का प्रयास करना धारा 162 व 163 धारा 161 से 165 को हटाकर अब इस से सम्बन्धित भष्ट्राचार के मामलों के लिए भष्ट्राचार निवारण अधिनियम 1988 बना दिया गया है।

4- किसी अपराधी को मुक्त करने के लिए रिश्वत देने का प्रयास करना (धारा 213)

5- किसी को जाली के सिक्के देने का प्रयास करना (धारा 239 व 240)

6- हत्या करने का प्रयास करना (धारा 307)

7- मानव-वध करने का प्रयास करना (308)

8- लूट या डकैती करने का प्रयास करना (धारा 393, 397 व 394)

9- रात्रि में गृह अतिचार द्वारा हत्या या गंभीर चोट पहुँचाने का प्रयास करना (धारा 460)

10- शेष अपराधों के प्रयास करना (धारा 511) यदि प्रयास के अन्तर्गत कोई काम नहीं होता है तो उतर दायित्व नहीं बनाया जायेगा।

19.5.4. अपराध का पूर्ण होना

अपराध करने की यह चौथी और अंतिम अवस्था या चरण स्वयं अपराध को पूर्ण घटित करने से है। जब आशय और तैयारी पूर्ण हो जाती है तो आपराधिक कार्य किया जाता है यदि वह सफल होता है तभी अपराध पूर्ण घटित हो पाता है और उसके लिए कर्ताउतरदायी होगा। यदि वह किसी अपराध को कारित

करने कराने में सफल नहीं होता हो तो वह अपराध के प्रयास के लिए उत्तरदायी ठहराया जायेगा। अपराध की तृतीय और चतुर्थ अवस्थाओं अर्थात् प्रयास और स्वयं अपराध दोनों ही दण्डनीय है। किसी दण्ड विधि में परिभाषित अपराध के पूर्ण घटित प्राथमिक सक्षम दाण्डिक न्यायालय द्वारा उस मामले में पूर्ण विचारण करने के बाद अंतिम बहम मौखिक या लिखित में बचाव पक्ष एवं अभियोजन पक्ष के वकीलों द्वारा भी की जाती है। इसके बाद ही दण्डनायक/न्यायधीश उस मामले के निर्णय में दोषी हो या दोषमुक्ति (बरी) का आदेश देता है। अपराध के पूर्ण घटित होने के बाद सम्बन्धित थाने में प्रथम सूचना प्रतिवेदन (प्राथमिकी) दर्ज करवाई जाती है। प्राथमिकी दर्ज नहीं होने की अवस्था में सक्षम न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में परिवाद-पत्र पेश करके दोषी व्यक्ति के विरूद्व व्यथित या पीड़ित पत्र पेश करके दोषी व्यक्ति के विरूद्व व्यथित या पीड़ित व्यक्ति कानूनी कार्यवाही करवा सकता है

भारतीय दण्डनीति में दण्ड के प्रकार

1- वाकदण्ड या चेतावनी 2. प्रायश्चित 3. अर्थदण्ड 4. कारावास 5. मृत्यु दण्ड 6.वध दण्ड या अंग विच्छेद 7. कोड़े मारना या पीटना 8. दागना 9. दण्ड कटघरा 10. देश निकाला या निर्वासन 11. एकांत कारावास, आजन्म करावास, कारावास (कठोर व साधारण) का प्रयोग प्रचलन में रहा था। भारत के प्रमुख अपराधों में हत्या, बलात्कार, अपहरण, डकैती, लूट चोरी, दंगा, प्रहार, धोखा धड़ी, यौन अपराध, कपट, श्वेतपोश अपराध, बालअपराध, कन्या भ्रूण अपराध एवं शिशुवध एवं महिला-अपराध प्रमुख रूप से आगे रहे है।

19.6. आपराध के विभिन्न सिद्वान्त

अपराध, अपराधी बनने के कई कारण जैसे सामाजिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, भौगोलिक, मनोवैज्ञानिक,वंशनुक्रमण, शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, विलासी साहित्य आपराधिक संगति, मधपान, अशिक्षा तथा मीडिया के प्रभावी कारण जाने या अनजाने में अपराध कर बैठते है''। इसमें अपराधियों का आपराधिक व्यवहार भी उतरदायी बनता है। अपराध उत्पन्न होने के निम्नलिखित अपराध घटक के सिद्वान्त उत्तरदायी माने गये है।

19.6.1. पेशाचिकी सिद्वान्त
19.6.2 स्वतंत्र इच्छा शक्ति
19.6.3 आंगिक विषमता सिद्वान्त
19.6.4 मानसिक क्षमता सिद्वान्त
19.6.5 मनौवैश्लेषिक सिद्वान्त
19.6.6 आनुवांशिक विद्वान्त
19.6.7 पारिस्थितिकी विज्ञान सिद्वान्त
19.6.8 भेददश्रष्ठी सहचारी सिद्वान्त
19.6.9 अमानकीय सिद्वान्त
19.6.10 भौगोलिक सिद्वान्त
19.6.11 अन्योन्य क्रिया सिद्वान्त
19.6.12 संघर्ष सिद्वान्त
19.6.13 आर्थिक सिद्वान्त
19.6.14 सामाजिक सिद्वान्त
19.6.15 मानवजातीय सिद्वान्त
19.6.16 किशोर अपचारिता सिद्वान्त
19.6.17 गृहया समुदाय प्रभाव सिद्वान्त
19.6.18 निम्नकोटी बुद्वि सिद्वान्त
19.6.19 बहुविधि कारण तत्व सिद्वान्त

इत्यादि सिद्वान्तों के माध्यम से यह समझाने का प्रयास किया गया है कि किसी एक घटक को अपराध का कारण नहीं कहा जा सकता है। अपराध विभिन्न प्रकारों से घटित होते है। उपरोक्त वर्णित सिद्वान्तों से हमें अपराध के विभिन्न कारणों का पता चलता है। इस तरह अपराध के घटक फेरी के अनुसार वैयक्तिक, भौतिक, प्राकृतिक और सामाजिक होते है। आयु, लिंग, नागरिक स्तर, व्यवसाय, अधिवास, सामाजिक पद, अनुदेश शिक्षा और अंगो की रचना मानवशास्त्रीय घटक है। जाति, जलवायु, उर्वरता, मौसमी दशाएं, तापमान इत्यादि भौतिक घटकों में आते है। जनसंख्या घनत्व, प्रवास, लोकमत, रूढ़िया, धर्म, लोक व्यवस्था, आर्थिक एवं औद्योगिक स्थितियां कृषि व औद्योगिक उत्पादन, लोक सुरक्षा के लिए लोक प्रशासन, लोक निर्देश, शिक्षा, लोक लाभ, व्यवहार और दण्ड विधायन सामाजिक घटक है। हिंसकता, अहिंसकता, आकस्मिक मनोवेग, लैंगिगवासना, बदलते दृष्टिकोण, सम्पति में उतराधिकार पाने की लालच और व्यक्ति अहमग्रस्तता और ऋण ग्रस्तता के कारण भी अपराध की ओर प्रवृत होता हैं।

19.7 दण्ड के विभिन्न सिद्वान्त

व्यक्ति द्वारा अपराध कारित करने के बाद जब पीड़ित पक्षकार द्वारा आरोपी पक्षकार के विरूद्व प्राथमिकी या परिवाद-पत्र दायर किया जाता है। उसके बाद व्यक्ति के विरूद्व सक्षम न्यायालय द्वारा आरोप विरचित किए जाते है। इसके विचारण में लोक अभियोजक गवाहन को जिस सवालों का जवाब चाहते है। अंतिम बहस सुनने के बाद ही अभियुक्त व्यक्ति को साक्ष्यों की प्रबलता के आधार पर दोषसिद्व या दोषमुक्त (बरी) करने के लिए न्यायाधीश द्वारा इस आशय का फैसला दिया जाता है। दोष सिद्व होने पर दण्ड या सजा के बिन्दु पर बहस सुनी जाती है। अपराध की जिम्मेदारी तय करने के बाद उस अपराधी को उस अपराध में विधि अनुसार प्रस्तावित सजा दी जाती है। यह सजा क्यों दी जाती है, इसका क्या उद्देश्य है, इसके क्या-क्या फायदें और नुकसान होते है। इस सम्बन्ध में कानून में कई तरह की, दाण्डिक विचार धाराएं प्रचलित है जो कि सजा के निम्न उद्देश्यों से सम्बन्धित होती है। 1. दण्ड द्वारा अपराधियों में भय उत्पन्न करना 2. अपराधों का निरोध 3. अपराधी का प्रतिकार करना 4. अपराधी में सुधार करना और अपराधी को पश्चातप करने का अवसर देना। सामण्ड दण्ड के सम्बन्ध में चार सिद्वान्तों को प्रस्तुत किया है। आपराधिक न्याय प्रशासन का प्रयोजन अपराधी को दण्ड देना होता है। उसको राज्य द्वारा दण्ड दिया जाता है। सभी उद्देश्यों के अन्तर्गत दण्ड के निम्न सिद्वान्तों का आविर्भाव हुआ।

19.7.1 प्रतिरोधात्मक के सिद्वान्त
19.7.2 प्रतिकारात्मक सिद्वान्त
19.7.3 निरोधात्मक सिद्वान्त
19.7.4 सुधारात्मक सिद्वान्त
19.7.5 प्रायश्चितात्मक सिद्वान्त
19.7.6 प्रतिकार सिद्वान्त

अब हम इन विभिन्न छः दण्ड के सिद्वान्तों के बारे में स्पष्ट विवेचना निम्नानुसार करेगें।

19.7.1 प्रतिरोधात्मक सिद्वान्त:

प्रतिरोध का अर्थ रोकना या रोक लगा देना है। इस सिद्वान्त को भयोपरत या निवारणार्थ सिद्वान्त भी कहते है। इस सिद्वान्त का उद्देश्य समाज के द्वारा उन व्यक्तियों पर रोक लगा देना है जो गलत रास्ते पर चलकर समाज को हानि पहुंचाते है। यह दण्ड का सिद्वारा सुखवादी दर्शन पर आधारित है। इस सिद्वान्त के

समर्थकों में बेकारियां, बैंथम, स्टुअर्ट मिल प्रमुख है। अपराधी को कठोर दण्ड देकर अन्य लोगों का आतंकित करना है। जिससे वे अपराध करने से भय खायें। इस सिद्वान्त में मृत्यु दण्ड जैसा कठोर दंड दिया जाकर भविष्य में अपराध की पुनरावृति को रोकने के लिए भयभीत कर देना है। अपराध करने में व्यक्ति ने कितने दु:ख या पीड़ा होनी चाहिए। ऐसा करने से समाज में अपराध कम किए जा सकते है। दण्ड देने के कारण अपराध नहीं रूकता है, सजा काटने का भय सजावधि में शनै-शनै समाप्त होता रहता हैं। अन्य अपराधि में संपर्क में आकर पूर्ण अपराधी बन जाता है। यह सिद्वान्त पूर्णतया अनैतिक और अमानवीय प्रतीत होता है।

19.7.2 प्रतिकारात्मक सिद्वान्त:

प्रतिकारात्मक सिद्वान्त को हम प्रतिकारी या प्रतिशोधात्मक सिद्वान्त के नाम से भी जान सकते है। यह सिद्वान्त बदले की भावना पर आधारित है। काण्ट ने कहा कि इस सिद्वान्त में अपराधी को उसी अनुपात में दण्ड मिलना चाहिए जितना उसने अपराध किया है। यह सिद्वान्त मुख्यतया बर्बर जातीय समाज के सिद्वान्तों ''आँख के अदले आँख, दाँत के बदले दाँत, पर आधारित है। ''जैसे को तैसा'' वाला लोकोक्ति पर आधारित है। बुरे के साथ बुरा ही व्यवहार किया जाना चाहिए। इसमें ईंट का जवाब पत्थर से देने की कहावत चरितार्थ होती है। यह सिद्वान्त अपराध के कारणों पर ध्यान नहीं देता है। यह अपराध के कारणों को मिटाने के स्थान पर अपराधों को ही मिटा देना उचित समझता है। यह सिद्वान्त अपराधी का उपचार नहीं करता, वरन् उसे और अपराध करने के लिए प्रोत्साहित करता है। यह दण्ड का सिद्वान्त स्वयं ही एक दोष है और बड़े दोष से छोटे दोष को दूर नहीं किया जा सकता है। इसमें व्यक्ति को उसके कार्य के अनुसार फल मिलना ही चाहिए। इस सिद्वान्त के प्रतिपादक जर्मन दार्शनिक काण्ट थे। इस सिद्वान्त के अन्य समर्थक अरस्तू, स्टीफेन, बोसां के, प्लेटों व बेडले आदि प्रमुख है। इसके आलोचक कीटन, इर्विंग, सामण्ड सेठना इत्यादि है।

19.7.3 निरोधात्मक सिद्वान्त :

इस सिद्वान्त को निवार कार्य सिद्वान्त के नाम से ही पहचानते है। इस सिद्वान्त का उद्देश्य किसी अपराधी को बार-बार अपराध करने से रोकना है। समाज को भी अलग रखना है। उनके अनुकरण से अन्य लोग अपराधीन बने, इसी आधार पर यह सिद्वान्त आधार है। सामण्ड और काण्ट इस सिद्वान्त के समर्थक रहे है। पैटन इसमें दण्ड की ऐसी व्यवस्था की जाती है। जिसमें कि अपराधी को दण्ड भोगने के बाद दुबारा दण्ड भोगने का अवसर नहीं मिले। यह सिद्वान्त में यह गुण मौजूद है कि यह अपराध की पुनरावृति को रोकने का प्रयत्न करता है। इस सिद्वान्त में अपराधी पर तभी रोक लगाई जा सकती है जब अपराधी तथा उसके दूषित क्रियाकलापों पर अंकुश लगाया जाए। यह अंकुश तब लग सकता है जब अपराधी को अपराध करने में असमर्थ कर दिया जाए। अंग-अंग की व्यवस्था इसी विचार की देन है। मृत्यु का रावास दण्ड, इसी सिद्वान्त पर आधारित है। अपराधियों को या तो प्राणदण्ड दे दिया जाए या उन्हें समाज से अलग रखने हेतु कारावास में रखा जाए तभी अपराध रोके जा सकते है। कोई कर्मचारी भ''ट्राचार अपराधी है तो यह सिद्वान्त इस समर्थन करता है कि भष्ट्राचार को यदि उस विभाग में जड़ से उपाड़ना है तो कर्मचारी को नौकरी से हटा या निकाल दिया जाए। इस सिद्वान्त की यह कमी है कि इसमें अपराधी की

परिस्थितियों एवं अपराधी को स्थाई रूप से अयोग्य कर देना कि वह पुन: ऐसा न कर सके, अर्थ हीन है। बाल अपराधियों के सम्बन्ध में यह सिद्वान्त न्यायोचित नहीं प्रतीत होता है। अत: ऐसा दण्ड अपराधी को रोकता नहीं, अपितु अपराधियों में और आपराधिक प्रवृति पैदा करता है।

19.7.4 सुधारात्मक सिद्वान्त :

इस सिद्वान्त को हम विशोधक या सुपारार्थ सिद्वान्त भी कहते है। इस सिद्वान्त का उद्देश्य यही है कि अपराधी का सुधार होना चाहिए। अपराधी से घृणा न करके उसके अपराध से घृणा करनी चाहिए। बन्दीगृहों को सुधार गृहों में परिवर्तित कर देना चाहिए। अपराध किन स्पष्ट रूप से परीक्षण कराना चाहिए। इसका उपाय निकालकर अपराधी के मानसिक वातारण में परिवर्तन कर देना चाहिए। इस सिद्वान्त का प्रमुख उद्देश्य अपराधी को एक अच्छे व्यक्ति में बदलना होता है। अपराधी को शारीरिक और मानसिक कष्ट न देकर बंदीगृह में ऐसे अवसर प्रदान करना चाहिए जिनके अभाव में उसको आपराधिक जीवन को और उन्मुख होना पड़ा तथा ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए जिससे उसकी दूषित क्रियाएं समाप्त हो सके। राज्य को प्रतिशोध की बजाए पुनर्वास कराना है। दण्डादेश का दाण्डिक प्रयोजन सुधारात्मक होना चाहिए। इस सिद्वान्त के अनुसार अपराधी व्यक्ति अपनी चारित्रिक दुर्बलता के कारण अपराध करता है। अत: अपराध करने की प्रवृति को अपराधी के चरित्र निर्माण करने की नैतिक शिक्षा द्वारा रोका जा सकता है। यह सिद्वान्त अपराधी को कारागार की काल-कोठरियों में बंद करके यातनां ए देना उचित नहीं समझता है। अपराधी को फांसी देने की बजाए उसमें सुधार किया जाए तो अच्छा रहेगा। यह विचारधार आधुनिक सुधारवादी विचार धारा है। भारत में इसे खुले कारागार खोलकर अपनाया जा रहा है। कैदियों को रचनात्मक कार्यों, परियोजनाओं नदी घाटी योजनाओं में काम कर लगाया जाता है। कैदियों को कारावास, खुली जेल में काम देना, कैदियों की पत्नियों को साथ रहने देने की सुविधाएं दी जा रही है। कारागार अपराधियों के लिए विश्राम-कक्ष बन जाना दोष रहा है। अपराधी प्रवृति को आसानी से नहीं परिवर्तित किया जा सकता है। सामण्ड इस सिद्वान्त के आलोचक रहे है।

19.7.5 प्रायश्यिकतात्मक सिद्वान्त :

इस सिद्वान्त को हम क्षतिपूर्ति या समन्वयात्मक सिद्वान्त के नाम से सुशोधित कर सकते है। यह सिद्वान्त धार्मिक भावना पर आधारित है। ऐसी धारणा रही है कि अपराध करने वाला पाप करता है जिसका पछतावा उसे हर हाल में करना ही पड़ता है। पाप करने से व्यक्ति की आत्मा कलुषित हो जाती है। जिसकी शुद्वीकरण का एकमात्र उपाय पायश्चित करना ही श्रेष्ठकर है। प्रायश्चित कर लेने के बाद व्यक्ति उस पाप के दायित्व से मुक्ति पा सकता है। इस सिद्वान्त दण्ड का कानून सिद्वान्त नहीं माना गया है। इसमें सजा केवल पश्चाताप के लिए दी जाती है व दी जानी चाहिए। यह सिद्वान्त प्रतिकारार्थ सिद्वान्त से घनि"ट रूप से सम्बन्धित है। इस सिद्वान्त की निम्न कमियां या दोष पाए गये है। 1. आजकल यह लागू नहीं किया जा सकता है। 2. अभियुक्त पायश्चित का झूठा बहाना बनाकर सजा से बच सकता है। 3. यह नैतिकता और धार्मिकता पर आधारित है अत: वर्तमान किसी विधि में शामिल नहीं होता है। 4. प्रायश्चित करने का क्या मापदण्ड रखा जाए और किस तरह से रखा जाए। यह इसमें तय नहीं किया जा सकता है।

हिन्दु विधि के अनुसार प्रायश्चित पाप को मिटा देता है तथा दण्ड पाप से मुक्ति दिलाता है तथा अपराधी दण्ड पाकर निर्दोष हो जाते है। यह वास्तव में एक नैतिक सिद्वान्त है।

19.7.6 प्रतिकर/क्षतिपूर्ति का सिद्वान्त

इस सिद्वान्त को हम समन्वयात्मक सिद्वान्त के नाम से भी बोल सकते है। वर्तमान में पीड़ित पक्षकार को आरोपी व्यक्ति से मुआवजे के रूप में प्रतिकर या क्षतिपूर्ति दिलवाई जाने लगी है। इस सिद्वान्त के समर्थक डॉ.एम.जे सेठ व डॉ. पी.के सैन है। इस सिद्वान्त के अनुसार अभियुक्त से जो भी उसने अपराध करके प्राप्त किया है, उसके बदले में या तो उस सामान का प्रतिकार या वही सामान वापस पीड़ित व्यक्ति को दिलवाना चाहिए। इसके कारण वह उस तरह के अपराध नहीं करेगा। इसमें सिद्वान्त में सजा देने का उद्देश्य प्रतिकर देने से होना चाहिए। प्रतिकर देने की बाध्यता, अनुचित कमाई का ले लिया जाना और उपर से दण्ड ये तीनों बातें यदि शामिल कर ली गई। तो आपराधी पुन: अपराध करने के लिए प्रेरित नहीं हो सकेगा। इस सिद्वानत की कमी यही है कि यह सिद्वान्त आदत प्रकार के अपराधों के अपराधियों पर लागू नहीं किया जा सकता है। सर्वोच्च न्यचायालय ने अपने कई फौजदारी मामलों तथा जनहित याचिकाओं के फैसलें में पीड़ित पत्रकारों को अभियुक्त या दोषकर्ताओं से मुआवजा दिलवाने के निर्देश देकर आहत व्यक्तियों को उत्पीड़त शास्त्रीय विधि शास्त्र के अनुसार नवीन धारणा का विकास करके न्यायिक प्रवृतियों के नवाचार को बल प्रदान किया है।

19.8 न्याय के सिद्धान्त विभिन्न

19.8.1 न्याय का समता मूलक सिद्धान्त

उपयोगिता वाला सिद्धान्त का सिद्धान्त तथा सामान्य भलाई का सिद्धान्त न्याय कोई विशुह विघिक अवधारणा न होकर राजनितिक धर्शनिक नैतिक और सामाजिक न्याय की अवधारणा यह देश काल एंव परिस्थिति की अपेक्षा के अनुरूप सामन्जस्य स्थापित करने का माध्यम है न्याय के सम्बन्ध मे समय समय पर अनेक सिद्धान्त निखपित किए गये है जोकि यथानुसार है 19.8.1 न्याय का समतामूलक सिद्धान्त समानता का यह सिद्धान्त यह कहता है कि समान लोगो के बीच समान व्यव्हार होना चाहिए। समान स्तर के लोगो के मध्य मे समान व्यव्हार किया जाना ही समता मूलक न्याय का सारतत्व है इस सिद्धान्त की अवहेलना होते ही लोगो मे अन्याय उत्पन्न होने की संभावनाएं प्रबल हो जाती है इसमे दो मुख्य बाते बताई गई है 1.जब समान लोगो के बीच मे असमान व्यव्हार किया जाए तथा 2. जब असमान स्तर के लोगो के साथ समान व्यव्हार किया जाएं इस सिद्धान्त के अनुसार अनुच्छेद 14 के समानता के सिद्धान्त की पालन समान स्तर और परिस्थिति को लोगो के बीच समता मूलक व्यव्हार चल सकता है समान लोगो मे समान न्याय का वितरण होनी चाहिए तथा असमान मामलों मे भिन्न व्यव्हार होना चाहिए बोधगम्य अंतरकता के द्वारा समानता के सिद्धान्त मे वर्गीकरण किया जा सकता है रंगभेद करना कभी न्याय संगत नही हो सकता है प्राकतिक समता की अपेक्षा करनी है जबकि समानुपाती समता परोपकारिता की अपेक्षा करती है प्राकतिक समता मे राज्य की नकारात्मक भुमिका तथा समानुपाती न्याय मे राज्य की भुमिका सकारात्मक रहती है जिसमे समतामूलक न्याय को सार्थक बनाने वाली

परिस्थितियां बन सके दुर्मिक्ष के कारण व्यक्ति धनाभाव के कारण प्रतिलिपि तथा अपील करने मे असमर्थ रहने पर समानुपाती समता के अनुसार न्याय दिलाया गया

19.8.2 न्याय का उपयोगितावादी सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक जेरेमी बेन्थम थे यह सिद्धान्त अच्छाई और बुराई की कसौटी का मापदण्ड निर्धारित करता है सार्वजनिक भलाई विधायी बहस की नींव होनी चाहिए कानून अधिकतम लोगो की अधिकतम संख्या मे भलाई करने वाले होनी चाहिए बेन्थम ने अपने प्रतिपादित सिद्धान्त के सार मे कहा कि मनुष्यों के समस्त कार्य आंनद और कष्ट अर्थात सुख और दुख से नियत्रितं होते है सुख और दुख की मात्रानुसार किसी कत्य की अच्छाई और बुराई आंकी जाती है उपयोगितावादी न्याय का स्तर परिणामावाद है उपयोगितावाद भविष्य की और देखता है इसका सम्बन्ध अधिकतम सुख आंनद भलाई या कल्याण करने से है बैन्थम ने व्यक्ति के 14 प्रकार के सुख और 12 तरह के दुख बताये है सुखों में ऐन्दिक सम्पति ज्ञान मित्रता यश या ख्याति दया परोपकारिता दुराशय स्मति कल्पना आशा संपर्क तथा सहायता आदि आते है इसी प्रकार दुखो मे दरिद्रता भावना 'शत्रुता अपशय दया दुराशय परोपकारिता कल्पना स्मति भय संपर्क निराशा या असफलता के गिनाए थे।

बेन्थम ने विधि के बनाते समय विधायिका से आजी विकास 2. पर्याप्तता 3. समानता तथा 4. सुरक्षा चारों बातों को ध्यान मे रखने की अपेक्षा की थी बेन्थम ने श्रेष्ठ विधि के निम्न लक्षण व्यक्त किए है यथा 1.विधि सरल स्पष्ट तथा सुबोधा भाषा मे होनी चाहिए 2. विधियों का जनसाधारण को ज्ञान होना चाहिए 3. विधियां व्यावहारिक होनी चाहिए 4. विधियां जनसाधारण की आशा आकाशां एंव विवेक बुध्दि के अनुरूप होनी चाहिए 5. विधियो मे विरोधाभास नही होनी चाहिए 6. विधियो का पूर्णयता पालन किया जाना चाहिए तथा 7. विधियो का संहिताकरण किया जाना चाहिए बेन्थम ने दण्ड व्यवस्था मे सुधार के लिए भी उपयोगी अनेक योजनाएं प्रस्तुत की थी 1. दण्ड की मात्रा अपराधों के अनुपान मे छोटे छोटे अपराधो के लिए मृत्युदण्ड दिया जाना न्यायोचित नही है 2. इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि कही निर्दोष व्यक्ति दाण्डिक न हो पायें 3. दण्ड बर्बर नही होनी चाहिए तथा दण्ड सदभावना से दिया जाना चाहिए 4. दण्ड निश्चित और निष्पद होनी चाहिए 5. अपराध और दण्ड मे सामजस्य होना चाहिए 6दण्ड का उदेश्य सुधारात्मक होनी चाहिए 7. दण्ड बदले या प्रतिशोध की भावना से नही दिया जाए 8. न्यायिक प्रकिया सरल न्याय सम्मत व त्वरित बने 9. दण्ड की मात्रा निर्धारित करते समय 1.अपराध की प्रकति आश्य परिस्थितियां पूर्वआचरण चरित्र और व्यव्हार को देखा जाए 10. दण्ड आदर्श व 'शिभापद्र होना चाहिए 11. दण्ड के द्वारा अपराधी को उतना ही कष्ट दे ताकि अपराध की पुनरावति करे 12. दण्ड का स्वरूप ऐसा हो जाए 13. दण्ड मे पिडिंत पभकार को प्रतिकर या अतिपूर्ति के रूप मे भरपाई की जाए 14. दण्ड व्यवस्था लोकहित एंव जनमत के अनुरूप होनी चाहिए तथा 15. दण्ड का अंतिम ध्येय अपराधों की रोकथाम करना चाहिए 16. एंकात कारावास को समाप्त किया जाए 17. कारागारों मे बंदियो से कठोर श्रम नही करवाया जाए 18. कारागहो बंदियो के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था की जाए 19.बंदियो को स्वावलम्बी बनाने हेतु रचनात्मक कार्य व व्यवसाय सिखाए जाएं 19. कारागहों की दशा

मानवोचित हो और आवास शिक्षा भोजन की समुचित सुविधाएं होनी चाहिए इस तरह बेन्थम ने अपनी विधिक दाण्डिक काराग्रह सुधार और न्यायिक सुधार की नई दिशाएं प्रदान की है।

19.8.3 न्याय का सामाजिक संविधानकरण का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक राल्स को माना गया है राल्स ने अपनी पुस्तक न्याय के सिद्धान्त मे उपयोगितावादी सिद्धान्त को स्वीकार नही किया था क्योकि सिद्धान्त मे व्यक्तियो की विशिष्टता अथवा प्रथकता को महत्व नही दिया गया और भलाई के आधार पर औचित्य उचित नही कहा है राल्स ने सामाजिक संविधान मे प्रारम्भिक स्थिति की कल्पना की है लोगो की सभा प्रत्येक सामाजिक वर्ग का प्रतिनिधि के रूप मे सही है राल्स ने अनाभिज्ञता का पर्दा उठाकर आगे नि"पक्षता पूर्ण न्याय की तरफदारी की है जो कि विवेकशील व्यक्तियों द्वारा चयनित सिद्धान्त है

19.8.4 न्याय का हकदारी का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रणेता राल्स के शि"य नोजिक रहे है नोजिक उपयोगितावाद और राल्स के सामाजिक समझौतावादी नि"पक्षता पूर्व न्याय के सिद्धान्त के विरोधी रहे थे नोजिक ने कहा कि हम संविदा क्रिडा को स्वीकार करे राल्स अपने सिद्धान्त मे व्यक्ति की विशिष्टता को उचित स्थान नही दिया था नोजिक ने व्यक्तिवाद पर आधारित हकदारी के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था यह सिद्धान्त व्यक्ति की स्वतंत्रता और सम्पति से सम्बन्धित है सम्पति का हक श्रम विषय आजादी का परिणाम है हकदारी का सिद्धान्त व्यक्ति के अलग अस्तित्व की महता पर आधारित है नोजिक की मान्यता यह रही थी कि एक व्यक्ति ने जो कुछ न्याय पूर्ण तरीके से आर्जित किया है उसे अपने पास रखने के लिए हकदार होना चाहिए नोजिक ने हकदारी के सिद्धान्त को निम्नाकिंत तीन सिध्दान्तों पर आधारित किया है यथा 1.अर्जन का सिद्धान्त 2.अंतरण का सिद्धान्त तथा 3.सुधार का सिद्धान्त आदि व्यक्त किए है न्याय हकदारी को बहाल करता है

19.8.5 न्याय का सामान्य भलाई का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के जनक जान फिनिस रहे है न्याय की अवधारणा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के प्रति न होकर दुसरो की भलाई के प्रति माना है उनकी व्यवहारिक युक्ति अभिलाषा पर आधारित न होकर पदार्थ पर आधारित है। यह नैतिक मूल्यों पर आधारित न होकर उन वस्तुओं से सम्बन्धित है जो जीवन को अर्थ पूर्ण बनाती है यह उन गुणों से सम्बन्धित है जो जीवन की गतिविधियों और तरीको को वांछनीय बनाते है फिनिस सात निरपेक्ष प्रदार्थो की सुची 1. जीवन 2.ज्ञान 3.खेल 4.सौन्दर्यानुभुति 5.मित्रता या सामाजिकता 6.धर्म तथा 7.व्यवहारिक युक्ति युक्तता को 'शामिल किया था इन सभी पदार्थो का समान महत्व है ये व्यावहारिक युक्ति के मूल है जो न्याय के सिद्धान्त के आधार बताये गये है फिनिस ने उपयोगितावाद के सिद्धान्त की ही आगे बढाया है इसमे भलाई ही नही कल्याण को स्थान दिया गया है इसमे एक मात्र भलाई ही नही बल्कि उसके साथ अन्य कई सात प्रदार्थ भी 'शामिल किए गये है समान वितरण हेतु आवश्यकता के विचार ही प्रर्याप्त नही हो इसके साथ 1.गुणवता का विचार 2.व्यक्ति कि भुमिका 3.क्षमता की क्रियाशील अपेक्षा तथा 4.लाभ लेने योग्य व्यक्तियों की उच्च योग्यता आदि भी महत्वपूर्ण कारक है इन सबको ध्यान रखकर सभी बातों पर विचार करते हुए सामान्य भलाई को पुरा

किया जा सकता है न्याय के उदेश्य को विभिन्न माध्यमों से हासिल किया जा रहा है अत वर्तमान मे सामाजिक न्याय की अवधारणा प्रबल हो रही है

19.9 दाण्डिक न्याय के मुलभूत सिद्धान्त

फौजदारी मामलों के विचारण से लेकर निर्णयतक कई अपराधिक न्याय प्रशासन द्वारा अन्तविरोध समाधान के लिए दाण्डिक प्रकरणों को निबटाते समय अनेक दाण्डिक न्याय के मूलभूत सिद्धान्तों की प्रतिपादना दाण्डिक न्यायलकों द्वारा ही की गई है अत दाण्डिक न्याय प्रशासित करते समय निम्मलिखित मूलभूत सिद्धान्तों को ध्यान मे रखना संघर्ष समाधान के लिए जरूरी होता है।

19.9.1. आपराधिक आशय एंव कार्य का सिद्वान्त

19.9.2. आसवधनी का सिद्वान्त 19.9.3. लोक उपताप का सिद्वान्त 19.9.4. निजी प्रतिरक्षा के हक का सिद्वान्त 19.9.5. सामान्य अपवाद का सिद्वान्त 19.9.6. तथ्य एंव विधि की लूट का सिद्वान्त 19.9.7. निर्दोषिता का सिद्वान्त 19.9.8. परिस्थितिजन्य साक्ष्य का सिद्वान्त 19.9.9. भूतल विधान का सिद्वान्त 19.9.10 सहअपराधी का सिद्वान्त 19.9.11. दोहरे परि संकट। खतरे का सिद्वान्त 19.9.12 आत्म अभिशासन का सिद्वान्त 19.913. संयुक्त दायित्व का सिद्वान्त 19.9.14.कठोर निरपेक्ष दायित्व का सिद्वान्त 19.9.15 परिवीक्षा का सिद्वान्त 19.916 कारावास का सिद्वात 19.9.21 प्रत्यावर्तिता का सिद्वान्त 19.9.22 अंतिम दृश्य का सिद्वान्त

19.9.1 आपराधिक दुराशय एवं कृत्य का सिद्धान्त: किसी भी अपराध करते समय दो तत्वों का होना आवश्यक बताया गया है। व्यक्ति के मन में अपराध का आशय होना चाहिए तथा आशय के साथ-साथ अपराध कारित करने के लिए अपराधिक कृत्य या लोप का होना भी जरूरी है। यह सिद्वान्त अपराधिक विधि में महत्वपूर्ण है।

19.9.2. असावधानी का सिद्वान्त: कुछ परिस्थितियों में कर्ता की असावधानी भी आपराधिक विधि में दाण्डिक करने हेतु कलषित बुद्वि मान ली जाती है। भारतीय दंड संहिता की धारा 304 का किसी व्यक्ति की असावधानी से किसी की मृत्यु हो जाती है तो उस व्यक्ति (मृतक) की हत्या के लिए असावधानी के नियम के अनुसार दोषी माना जाता है।

19.9.3 लोक उपताप का सिद्वान्त: कुछ परिस्थितयों में कलुषितत बुद्वि के बिना भी कुछ कृत्यों को जनकल्याण के विरूद्व मानकर उन्हें अपराध मान लिया जाता है। जैसे राजकीय कानून का उल्लंघन एवं सार्वजनिक बाधांए इसमें आती है।

19.9.4. निजी प्रतिभा के अधिकार के सिद्वान्त के अन्तर्गत जानमाल की रक्षा करने के लिए यह बचाव का आधार सामान्य अपवाद के अन्तर्गत शामिल किया गया है। किसी व्यक्ति के घर जाकर आक्रमण किया जाता है तो उस पीड़ित व्यक्ति को आरोपी व्यक्ति से मुकाबला करने हेतु निजी प्रतिभा (बचाव) का प्रयोग किया था।

19.9.5. सामान्य अपवाद का सिद्वान्त : भारतीय दण्ड संहिता के अध्याय4 के अन्तर्गत धारा 76 से 106 तक में अपराध से बचाव करने के आधार दिये गये है। विधि एवं तथ्य का भूलविधिपूर्व कार्य के

दौरान दुर्घटना, शिशु, बालक विक्रमादित्य, व्यक्ति महोन्मत व्यक्ति, सम्मति से किया गया कार्य, सद्भावना पूर्वक दी गई संसूचना, तुच्छ अपहानि, जानमाल की निजी बचाव का हक आदि को बचाव में प्रयोग किया जा सकता है।

19.9.6. तथ्य और विधि की भूल सम्बन्धी सिद्वान्त : तथ्य की भूल क्षम्य की जा सकती है। परन्तु विधि की भूल क्षम्य नहीं की जा सकती है। यह भी सामान्य अपवाद के अन्तर्गत शामिल है।

19.9.7 निदेर्षिता का सिद्वान्त : अपराधिक विधि के विरूद्व अभियोजन के समय पर धारणा कर ली जाती है। अभियोगी (अभियुक्त) निर्दोष है जब तक कि उसके विरूद्व अभियोग विधि के उपबंधों के अनुसार संदेह से परे यह सिद्व न कर दिया। इस प्रकार दोष सिद्वि का भार अभियोजक पर रहता है। इसमें उस अभियुक्त को बेक सुखार या बेगुनाहार कहा है।

19.9.8 परिस्थितिजन्य साक्ष्य का सिद्वान्त: इस सिद्वान्त के अनुसार दण्ड देते समय अपराध घटित होने की परिस्थितियों पर भी दृष्टिपात किया जाना चाहिए। इस प्रकार एक ही अपराध के लिए प्रथम अपराधी की अपेक्षा अभ्यस्त अपराधी को अधिक कठोर दण्ड दिया जा सकता है। परिस्थितियों के समर्थन में सपोक्षक साक्ष्य का होना जरूरी है।

19.9.9 भूतलभी विधान का सिद्वान्त : इस सिद्वान्त को संविधान के अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत स्पष्ट किया जाता है। इसमें विधियों को भूतकालीन प्रभाव से लागू नहीं किया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति तब तक किसी कार्य करने के समय प्रवृत विधि के अधीन अपराध न हो और उससे अधिक दण्ड दिया जा सकता है।

19.9.10 सहअपराधी का सिद्वान्त: जब किसी अपराध एक से अधिक व्यक्ति अपराधी बनाए गये हों और सहअपराधी सरकारी गवाह बन गया हो तो उसे मुख्य अभियुक्त के सदृश्य ही माना जायेगा। साभ्य विधि की धारा 114 ब और 30 और 133 तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 306 से 308 तक सहअपराधी के सम्बन्ध में बताया गया है।

19.9.11 दोहरे खतरे का सिद्वान्त : इस सिद्वान्त को भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 (2) तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 300 में चर्चा की गई है। किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक से अधिक बार अभियोजित और दंडित नहीं किया जायेगा। इस सिद्वान्त को साधारण खण्ड अधिनियम 1897 की धारा 26 तथा भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा 71 मे व्यवस्था की गई है।

19.9.12. आत्म अभिशंसन का सिद्वान्त : इस सिद्वान्त के अनुसार किसी अपराध के लिए अभियुक्त किसी व्यक्ति को स्वयं के विरूद्व साक्षी बनने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। कोई व्यक्ति किसी फौजदारी के प्रकरण में स्वयं अपने विरूद्व गवाह होने के लिए विवश नहीं किया जाएगा।

19.9.13 संयुक्तदायित्व का सिद्वान्त: इस सिद्वान्त की व्याख्या भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 34 सामान्य आशय, धारा-149 सामान्य उद्देश्य, धारा-108 से 114 तक में दुष्प्रेरण तथा धारा 120 क व ख के अन्तर्गत आपराधिक षडयंत्र के बारे में विवेचना की गई है। किसी भी आपराधिक दायित्व में यदि अपराधी एक से अधिक है तो सभी को मस्तिष्क के पूर्व मिलन के दायरे में आ जाएगें।

19.9.14 कठोर यध निरपेक्ष या पूर्ण दायित्व का सिद्वान्त: कठोर दायित्व के अपराध विधियों के अन्तर्गत अपराध को साबित करने का भार अभियोगी। अभियुक्त पर सौंपा गया है। साधारण स्थिति में अपराध को संदेह से परे साबित करने का भार लोक अभियोजक पर डाला गया है। निरपेक्ष या पूर्ण दायित्व के लिए अपराध विधियों में आपराधिक आशय के बिना ही अपराध को साबित करने का भार अभियोगी को दिया गया है।

19.9.15 परिवीक्षा का सिद्वान्त: जब किसी व्यक्ति ने कोई अपराध किया है वह अपराध मृत्यु दण्ड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध का नहीं हो और अपराधी 21 वर्ष से कम आयु का होता है। तो दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 360 तथा पारिवीआ अधिनियम 1858 की धारा 4 से 6 तक में लाभ देकर अपराध को सजा भोगने के लिए नहीं भेजा जाता ब्लकि उसे परिवीआका जमानत-मुचलका लेकर रिहा कर दिया जाता है।

19.9.16 कारावास का सिद्वान्त: जब अपराध ने न्यायालय द्वारा सुनवाई गई कुल सजा का 1/3 भाग भोग लेने पर ऐसे सजा या बंदी को कारावास से अवकाश पर जिला कारावाश समिति की संस्तुति करने पर छोड़ दिया जाता है।

19.9.17 खुली जेल का सिद्वान्त : यह सिद्वान्त सुधारात्मक सिद्वान्त का समर्थन करता है। कैदियों को जेल की कोठरियों में रखने की बजाए उनके संतोषजनक कार्य एवं आचरण व सहचरित्र के आधार पर सभ्य नागरिक बनाने पर खुली जेल में रखा जाता है। दिन में बाहर मजदूरी करके रात को कैदी खुली जेल में ही आकर विश्राम करता है।

19.9.18 सजा निलम्बन का सिद्वान्त: यह सिद्वान्त फौजदारी अपील होने की अवस्था में सजा के निलम्बन का दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 के अन्तर्गत जमानत पर रिहा करने का आदेश दिया जाता है। धारा 390 के अन्तर्गत जमानत आदेश को निरस्त करने पर वापिस न्यायिक अभिरक्षा में रखने का निर्देश दिया जाता है।

19.9.19 निजता का सिद्वान्त : यह सिद्वान्त संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत एकान्त का अधिकार के नाम से जाना जाता है। इसमें व्यक्ति की गरिमा और सम्मान का ध्यानपूर्वक पालना करवाई जाती है।

19.9.20 इकबाली का सिद्वान्त : इस सिद्वान्त की विवेचना भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 24 से 30 तक में की गई है। इसमें संस्वीकृति के नियम से भी जानते है। अपराधी द्वारा अपने अपने जुर्म को स्वीकार कर लेना ही संस्वीकृति कहलाता है।

19.9.21 प्रत्यावर्तिता का सिद्वान्त : इस सिद्वान्त के अन्तर्गत आदतन या आभ्यासिक अपराधियों के बारे में बताया गया है जब अपराध बार-बार करने की प्रवृति को रोकने के लिए प्रत्यावर्तिता के सिद्वान्त का सहारा लेते है।

19.9.22 अंतिम दृश्य का सिद्वान्त: जब किसी आपराधिक मामले में अभियुक्त को घटनास्थल पर अंतिम बार चक्षुदश्री साक्षी ने देख लिया था। तब यह पूछा जाता है अपराधी अंतिम बार देखने पर कहां पर स्थित रहा था। यह सिद्वान्त बहुत ही उपयोगी सिद्वान्तों में से एक है।

19.10. आपराधिक विधि का स्वरूप

19.10.1 दाण्डिक विधि का स्वरूप राज्य द्वारा निर्धारित और मान्य होना चाहिए। 19.10.2. दाण्डिक विधि का स्वरूप स्पष्ट और निश्चित होना चाहिए।

19.10.3 दाण्डिक विध के स्वरूप में एक रूपता होनी चाहिए।

19.10.4 दाण्डिक विधि के स्वरूप के पीछे दण्ड की शक्ति होनी चाहिए।

19.10.5 न्याय, ईमानदारी, निष्पक्षता, पारदर्शिता और अभयता से व्यथित पक्षकारों को मिलना चाहिए।

19.11. दाण्डिक न्यायालयों के अपराधों और मामलों का वर्गीकरण

19.11.1 दाण्डिक अपराधों का वर्गीकरण

मनुष्य के व्यवहार में विविधता होने के कारण उस पर आधारित अपराधों में भी विविधता पाई जाती है। अपराधों के विभिन्न प्रकार होते है। मौटे तौर पर इन विभिन्न अपराधों को हम तीन प्रमुख वर्गों में रखा जा सकता है।

1- दण्ड विधि के अन्तर्गत किए गए अपराध 2. दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन आने वाले अपराध 3. विशिष्ठ विधियों तथा अधिनियमों के अन्तर्गत किए जाने वाले अपराध
2- प्रकृति के आधार पर अपराधों को दो वर्गों में बांटा गया है (1) साधारण अपराध (2) गंभीर एवं संगीन अपराध
3- लेमर्ट ने अपराधों को (1)स्थितिजन्य अपराध (2) नियोजित अपराध (3) विश्वासधात अपराध
4- बोंगर ने अपराधों को उनके प्रयोजन के अनुसार (1) आर्थिक अपराध (2) यौन-सम्बन्धी अपराध (3)राजनैतिक अपराध (4)विविध अपराध
5- हेंज के अनुसार अपराध (1) व्यक्ति के विरूद्व (2) सम्पति के विरूद्व (3) व्यवस्था के विरूद्व
6- सदरलैण्ड के अनुसार अपराधों को 1. साधारण अपराध 2. श्वेतपोश अपराध
7- सांख्यिकी के आधार पर अपराधों (1)व्यक्ति के विरूद्व अपराध (2) सम्पिति के विरूद्व अपरध (3) राज्य के विरूद्व अपराध (4)व्यवस्था के विरूद्व अपराध (5) न्याय के विरूद्व अपराध

भारतीय दंड संहिता **1860** के अनुसार अपराधों को निम्न सात भागों में विभक्त किया गया हैं।

1- शरीर सम्बन्धी अपराध 2. सम्पति सम्बन्धी अपराध 3. दस्तावेजों सम्बन्धी अपराध 4. मस्तिष्क को प्रभावित करने वाले अपराध 5. लोक शांति के विरूद्व अपराध 6. राज्य के विरूद्व अधराध 7. लोक सेवाओं के विरूद्व अपराध 8. सेना सम्बन्धी अपराध 9. निर्वाचन सम्बन्धी अपराध 10. अवमानना के विरूद्व अपराध 11. लोक न्याय के विरूद्व अपराध 12. सिक्कों और सरकारी मुद्राओं सम्बन्धी अपराध 13. बांटों व माप सम्बन्धी अपराध 14. लोक स्वास्थ्य, श्रेम, सुविधा शि"टता और सदाचार सम्बन्धी अपराध 15. धर्म सम्बन्धी अपराध 16. दस्तावेजों और सम्पति चिन्हों सम्बन्धी अपराध 17. सेवा संविदाओं के अपराधिक भंग सम्बन्धी अपराध 18. विवाह सम्बन्धी अपराध 19. मान हानि सम्बन्धी अपराध 20. आपराधिक अभित्रास,

अपमान सम्बन्धी अपराध 21. अपराधों के प्रयत्न सम्बन्धी अपराध इत्यादि का वर्गीकरण किया गया है।

19.11.2 आपराधिक मामलों का वर्गीकरण :

दाण्डिक न्यायालय के समक्ष अनेक किस्म के दाण्डिक प्रकरण लम्बित रहते है। यहां सुविधा के आपराधिक मामलों की किस्म एवं प्रकृति के अनुसार निम्न भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। 1. बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका 2. समन मामले 3. वारण्ट मामले 4. संक्षिप्त मामले 5. सैशन विचारण मामलें 6. संज्ञेय मामले 7. अंसज्ञेय मामले 8. जमानतीय मामलें 9. अजमानतीय मामले 10. प्रसंज्ञान योग्य मामले 11. अप्रसंज्ञानयोग्य मामले 12. अंतरणीय मामले 13. लम्बित मामले 14. निणषित मामले 15. परिवाद-पत्र के मामले 16. प्राथमिकी आधारित मामले 17. पुन:रीक्षण (निगरानी) मामले 18. पुन:र्विलोकन/नजरसानी मामलें 19. निर्देश के मामले 20. अन्यापति के मामलें 21. विशेष अनुमति अपील के मामले 22. दया-याचिका के मामले 23. विविध याचिका मामलें 24. पारिवारिक मामलें 25. भष्ट्राचार के मामलें 26. आर्थिक मामलें 27. पर्यावरण मामलें 28. अत्याचार निवारण मामलें 29. महिला अत्याचार निवारण मामलें 30. स्वापक औषधि एवं मन प्रभावी पदार्थ के मामलें 21. संती निवारण के मामलें 22. मोटर पदार्थ के मामलें 23. जाली नोट के मामले 24. आवश्यक वस्तु के मामलें 25. सहकारी औद्योगिक एवं कर्मचारियों के मामलें इत्यादि में वगीकृत किया जा सकता है।

19.11.3 अपराधियों का वर्गीकरण :

विधि द्वारा निषिद्व घोषित किए गये मानव आचरणों को अपराध कहा जाता है। ये ऐसे समाज-विरोधी कृत्य होते हैं जो जनसाधारण में भय और आतंक उत्पन्न करते है और अपकारित व्यक्ति को क्षति पहुंचाते है अपराध एक गतिशील परिकल्पना है जो समय और स्थान के साथ बदलती रहती है। अपराध करने के ढंग तरीकों के आपार-पर अपराध करने वाले अपराधियों का भी निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया गया है।

1.लोम्ब्रोसो इटेलियन अपराध शास्त्री थे।आपने अपराधियों को निम्न लिखित वर्गो में वर्गीकृत किया है (1) जन्म जात अपराधी 2. विक्षिप्त अपराधी 3. कामासुर अपराधी व 4. प्रंसगवंश अपराधी भाई को बताया है।

(2). रेफेल गेरोफलो इटेलियन अपराध 'शास्त्री ने अपराधियों की निम्न चार भागों में बांटा था-. प्रारूपिक अपराधी 2. हिंसात्मक अपराधी 3. सद्भाव-रहीत अपराधी तथा लंफट। कामुक अपराधी

(3). एनारिको फैरीने अपराधियों को निम्न पांच भागों में श्रेणी बद्व किया था-1. जन्मत: अपराधी 2. अभ्यस्त अपराधी 3. मनोविक्षिप्त अपराधी 4. आकस्मिक अपराधी तथा 5. भावावेशी अपराधी

4. अपराधियों का सर्वमान्य वर्गीकरण: निम्नानुसार किया गया है- 1. नव अपराधी या प्रथमत: अपराधी 2. स्थितिक अपराधी 3. यदा-कदा अपराध करने वाले अपराधी 4. अभ्यस्त अपराधी 5. व्यावसायिक अपराधी 6. महिला अपराधी 7. बाल-अपराधी 8.मनोविक्षिप्त अपराधी 9. संगठित अपराधी तथा 10. गिरोह अपराधी तथा 11. दुश्चरित्रवान अपराधी

अपराधिकता एक बुराई है लेकिन है लेकिन प्रत्येक समाज में सह विद्यामान है। अपराध विहीन समाज की कल्पना करना व्यर्थ होगा। क्योकिं आपराधिकता का सम्बन्ध मानव आचरक से है। अत: अपराध की बजाए अपराधियों को ओर उनमें सुधार लाने के लिए अधिक ध्यान देने की जरूरत है। ताकि उपचारात्मक पद्वति से उनका सुधारकर उन्हें समाज में सामान्य नागरिक के रूप में पुनस्थापित किया जा सकें।

19.12. दाण्डिक नयायालयों के न्याय प्रशासन की व्यवस्था

हमारी प्राचीन वर्तमान न्याय व्यवस्था ने सन् 1600 से अबतक एक लम्बी न्यायिक प्रशासन की सुचारक व्यवस्था की यात्रा का सफर निश्चित किया है। प्राचीन न्यायिक व्यवस्था के साथ वर्तमान न्यायिक व्यवस्था के बीज भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना के साथ पदार्पित हुए है। वर्तमान न्याय व्यवस्था पर मुगलकालीन न्याय व्यवस्था का अल्प बृहदप्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है।फिर भी यह ब्रिटिश न्याय व्यवस्था का ही परि'कृत रूप प्रचलन में है।

भारत की वर्तमान न्याय व्यवस्था में प्रमुख रूप से तीन प्रकार के न्यायालय फौजदारी और दीवानी न्याय-प्रशासन के अन्तर्गत अवस्थित है:- यथा-

(1) सिविल न्यायालय 2. दाण्डिक न्यायालय एंव 3.राजस्व न्यायालय। यह न्यायालय क्रमश: व्यवहार प्रक्रिया संहिता दण्ड प्रक्रिया संहिता और भू-राजस्व तथा काश्तकारी विधि द्वारा प्रशासित होते है। विभिन्न राज्यों में अनेक राजस्व व काश्तकारी विधियां संविधान की नौवी अनुसूची में वर्णित भूमिसुधार कानूनों के अनुसार की प्रचलन में है।

विभिन्न प्रकार के न्यायालयों को हम श्रेणीवार निम्न प्रकार से विभक्त कर सकते है। हमारी आधुनिक न्याय प्रशासनिक व्यवस्था न्यायालयों की निम्न है।

1- उक्त उच्चतम या सर्वोचय न्यायालय अनुच्छेद 124 से 147

2- राज्यों में उच्च न्यायालय अनुच्छेद 214से 231

3- अधीनस्थ या निम्न न्यायालय अनुच्छेद 233 से 237

भारत में दो प्रकार के 'शीर्षस्थ न्यायालय न्याय- प्रशासन का कार्य संभालते है। उच्यतम न्यायालय और उच्च न्यायालय उच्चतम न्यायालय को हम सर्वोचय न्यायालय भी कहतें है, देश का अंतिम अपीलीय न्यायालय है। उच्च न्यायालय राज्य स्तर पर अंतिम अपीलीय न्यायालय है।

1- उच्चतम न्यायलय -इस 'शीषतम न्यायालय की स्थापना संविधान के अनुच्छेद- 27 में की गई है। इसका मुख्यालय नई दिल्ली में स्थित है। वर्तमान में इसके न्याय मूर्तियों की संख्या मुख्य न्याय मूर्ति के अलावा 30 है। अनुच्छेद 129 के अन्तगर्त अभिलेख-न्यायलयको भवमान के लिए दोषी व्यक्ति को दण्डित करने की 'शाक्ति दी गई है। सर्वोच्चय न्यायालय को आरम्भिक अधिकारिता .अनु.132.से1342.अपीलीय अधिकारिता 3. अभिलेखीय अधिकारिता 4. लेख-याचिकारिता अनु.232 5. सलाहकारी अधिकारिता 6. विशेष अनुमति अपील अनु. 136

अधिकारिता 7. पुनविलोकन शक्तियां 8. नियम निर्माण की शक्ति 9. अपनुशागिक शक्तियां तथा 10. अंतरग की शक्तियां प्रदान की गई है।

सर्वोच्चय न्यायालय की दण्डिक मामलों में अपीलें न्यायालय व्यवस्था**:-**

किसी दण्डिक कार्यवाही में उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय आज्ञप्ति या अंतिम आदेशा के विरूद्व सर्वोच्चय न्यायालय में अनु. 134 कें अनुसार अपीलार्थी को अपील दायर करने का हक दिया गया है। यह अपील निम्न परिस्थितियों में होगी-(1) उच्च न्यायालय द्वारा अपील में दोषमुक्त के आदेश को उलट दिया गया हो तथा अभियुक्त को मृत्युदण्ड दे दिया गया हो। (2) उच्च न्यायालय ने विचारक को अपने समक्ष मंगा लिया हो और अभियुक्त को दोषसिद्व करते हुए मृत्युदण्ड दिया गया हो तथा (3) उच्चन्यायालय ने अनुच्छेद 134 क के अन्तर्गत यह प्रमाण पत्र दिया हो कि मामला सर्वोच्चय न्यायालय के लिए उपयुक्त है।

सर्वोच्चय न्यायालय द्वारा अपील की विशेष अनुमति (अनुच्छेद 136) अनुच्छेद 136 में विवेकीय अपीन की 'शक्ति दी गई है। सशस्त्र बल से सम्बन्धित विधि द्वारा या उसके अधीन गठित न्यायालय या न्यायाधिकरण के निर्णय, दण्डादेश, या आदेश के सम्बन्ध में अनुच्छेद-136 लागू नहीं होता है। अनु. 136 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय भारत में स्थित किसी न्यायालय, न्यायाधिकरण मेंु पारित निर्णय आदेश या दण्डादेश के विरूद्व अपील की विशेष अनुमति दे सकता है।

(2). उच्च न्यायालय**:-** संविधान के अनुŒ214 के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय स्थापित करने की व्यवस्था की गई है। यह राज्य का 'शीर्षस्थ न्यायालय होता है। प्रत्येक उच्च न्यायालय एक मुख्य न्यायाधिपति एंव अन्य उतने न्यायाधिपति होते है। जिसने राष्ट्रपति द्वारा समय-समय पर नियुक्त किए जाते है- अनु.Œ216 के अनु.Œ 215 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय को अभिलेखीय न्यायालय घोषित किया गया है। वह अपने अवमान के लिए दोषी व्यक्ति को दण्डित कर सकता है। अनच्छेद 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय को निम्नकित लेख- याचिका जारी करने की अधिकारिता दी गई है।-

(1) बंदी प्रत्यभी करण याचिका 2. परमादेश 3. प्रतिषेध 4. अधिकार-पृच्छा एंव व 5. उत्प्रेषण जैसी याचिका और लोकहित वादों को सुनवाई करने की अधिकरिता दी गई है। उच्च न्यायालय को निम्नांकित क्षेत्राधिकार दी गई है (1) प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार 2. अपीलीय क्षेत्राधिकार 3. न्यायिक-पुनर्विचार का अधिकार 4. अधीनस्थ न्यायालयों के निरिक्षण की 'शक्ति व 5. अभिलेखन्यायालय के रूप में अधिकारिता दी गई है।

दण्डिक अपीलीय क्षेत्राधिकार **:-** आपराधिक मामले में सत्र न्यायाधीश। अपर सत्र न्यायाधिश । सहायक सत्र न्यायाधीश के निर्णयो के विरूद्व के उच्च न्यायालय में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 372 से 394 में अपील की जा सकती है। उच्च न्यायालय में धारा 395 से 405 तक में निर्देश और पुन: रीक्षण दायर की जा सकती है। सत्र न्यायालय द्वारा दिए गये मृत्युदंड को तब तक लागू नही किया जा सकता। जब तक उच्च न्यायालय उसका अनुमोदन न कर दे। उच्च न्यायालय को दोषमुक्त /विमुक्ति के विरूद्व भी अपील धारा 378 से 380 दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 में अपील सुनने का अधिकार दिया गया है। यह

अपील पीडित पक्षकार की और से दायर की जाती है। भूमि अधिग्रहण संरक्षकता हिन्दू विवाह प्रणाली आदि से सम्बन्धित निर्णयों के विरूद्व अपील उच्च न्यायालय के समक्ष दायर की जा सकती है।

(3)अधीनस्थ दाण्डिक न्याय प्रशासन**:-**दाण्डिक मामलों के विचारण और निस्तारण हेतु राज्य के प्रत्येक जिले में विभिन्न दाण्डिक न्यायालयों की स्थापना का दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा-6 से 35 तक में दाण्डिक न्यायालयों और कार्यालयों के गठन और 'शक्तियों के बारे में स्पष्ट सावधान किए गये है। दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 6 के अन्तर्गत दण्ड न्यायालयों के निम्नांकित वर्ग बताये गये है:- (क) सेशन न्यायालय (ख) प्रथम वर्ग न्यायिक दण्डनायक एंव नायक तथा (घ) कार्यपालक दण्डनायक आदि बताए गये है।

(1)सेशन न्यायाधीश:- आपराधिक मामलों के विचारण के लिए जिले के प्रत्येक खण्ड में एक सेशन न्यायालय राज्य सरकार स्थापित करती है तथा इसका पीठासीन अधिकारी सेंशन न्यायाधीश उच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त किया जाता है। एक जिले में आवश्यकतानुसार अपर सेशन न्यायाधीश तथा सहायक सेशन न्यायाधीशों की धारा -9 में की जाती है। सेशन न्यायाधीश स्तर के नियुक्ति दण्ड प्रक्रिया की विशिष्ट सेशन न्यायालय स्तर के न्यायाधीशों को भी नियुक्त किया जाता है।

(1) अनुशासित जाति और अनुसूचित जाति (अत्याचार-निवारण) न्यायालय 2. स्वापक औषधि एंव मन:प्रभावी पदार्थ न्यायालय 3. भष्टाचार निवारण न्यायालय 4.महिला भष्ट्राचार निवारण न्यायालय का 5. सती निवारण न्यायालय 6. आवश्यक वस्तु कानून में स्थापित नयायालय 7.जाली नोट मामालात 9. सहकारिता न्यायाधिकरण 10. औद्यौगिक न्यायाधिकरण 11. परिवहन न्यायाधिकरण 12. कारारोपण न्यायाधिकरण आदि में भी जिला एंव सैशन न्यायाधीश ही विशिष्ट न्यायाधीश बनाए जाते है। सैशन, अपर सैशन न्यायालय को मृत्यु दण्ड एंव आजीवन कारावास सहित अनेक प्रकार के दण्ड से दण्डनीय अपराधों के विचारण करने की अधिकारिता होती है। सेशन न्यायाधीश की बैठक सामान्यत: जिला मुख्यालय पर होती है; लेकिन अन्य स्थानों पर भी सैशन न्यायालय शिविर के रूप में बैठक कर सकता है। सेशन न्यायालय और अपर सेशन न्यायालय के समक्ष राज्य की और से दाण्डिक मामलों की पैरवी करने हेतु क्रमश: लोक अभियोजक और अपर लोक अभियोजक, विशिष्ट लोक अभियोजक द्वारा ही मामले का संचालन किया जाता है।

(2) न्यायिक दण्डनायक के न्यायालय**:-**धारा 11 से 19 प्रत्येक जिले में सैशन न्यायालय के अधीनस्थ विभिन्न प्रकार के न्यायिक दण्डधिकारी प्रथम वर्ग के न्यायालय राज्य सरकार द्वारा स्थापित किए जाते है और उनमें पीठसीन अधिकारी राज्य न्यायिक सेवा के अधिकारी को उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक दण्डलायक नियुक्त किया जाता है। प्राय: देश के सभी राज्यों के जिलों के खण्डों और उपखण्डों, एंव तालुका स्तर पर निम्नांकित प्रथम वर्ग न्यायिक दण्डलायक के न्यायालय स्थापित है। (क)मुख्यन्यायिक मजिस्ट्रेट धारा-12 (ख) अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट धारा-12 (ग) न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग (घ) विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट धारा-13 (ड) मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट धारा-17 (च) महानगर मजिस्ट्रेट धारा-17(छ)विशेष महानगर मजिस्ट्रेट धारा-18 आदि न्यायिक अधिकारी पदस्थापित किए जाते है। प्रत्येक जिले में एक मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय (शहर तथा ग्रामीण के लिए) होते है। अन्य न्यायिक

मजिस्ट्रेट उसके अधीनस्थ, किन्तु सेशन न्यायालय के नियंत्रणाधीन करते है। इसी तरह महानगरों में मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट का न्यायालय के अधीनस्थ होते है।

दाण्डिक न्यायालयों की 'शक्तियां (धारा **26** से **31** दण्ड प्रक्रिया संहिता**, 1973:-**

1.उच्च न्यायालय विधि द्वारा प्रधिकृत कोई दण्डादेश दे सकता है तथा 2. सेशन न्यायाधीश, अपर सेशन न्यायाधीश विधि द्वारा प्रधिकृत कोई दण्डादेश दे सकते है किन्तु मृत्यु दण्डादेश की सजा को उच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट करवाने की आवश्यक होगी देखे धारा 28 एवं 366 द. प्र. सं. प्र. सं. 3.सहायक सेशन न्यायाधीश आजीवन कारावास या दस वर्ष से अधिक अवधि के लिए कारावास के दण्डादेश के सिवाय कोई दण्डादेश दे सकता है जो विधि द्वारा प्रधिकृत दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 29 के अनुसार न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालययों की निम्न दण्डादेश पारित करने की अधिकारिता और 'शक्ति प्रदत की गई है।

(1) मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट एंव अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट आजीवन कारावास मृत्यु दण्ड या सात वर्ष से अधिक के कारावास के सिवाय अन्य कोई दण्डादेश दे सकता है।

(2) मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट एवं अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट आजीवन कारावास,मृत्यु दण्ड या सात वर्ष से अधिक के कारावास के सिवाय अन्य कोई दण्डादेश की सजा दे सकता है।

(3) न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग को तीन वर्ष की अवधि का कारावास एवं दस हजार रूपये तक का अर्थदण्ड के रूप में जुर्माना ले सकता है।

(4) न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वितीय वर्ग को एक वर्ष की अवधि का कारावास एवं पांच हजार रूपये तक का जुर्माना ले सकता है।

न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय के समक्ष पैरवी राज्य सरकारी ओर से नियुक्त सहायक लोक अभियोजक द्वारा की जाती हैं धारा(25 दं.प्रं. सं.)

(3) कार्यपालक मजिस्ट्रेट**:-**प्रत्येक जिले में कुछ राज्य की प्रशासनिक सेवा, तहसीलदार सेवा के अधिकारियों को उनके जिले के खण्ड, उपखण्ड या तालुका स्तर पर कार्यपालक मजिस्ट्रेट बनाने की परम्परा सन 1973 के दण्ड प्रकिया संहिता 1973 के कार्यपालिका मजिस्टेड की 'शक्तियां राज्य के प्रशासनिक सेवा अधिकारियों को दी गई है 1973 से पूर्व ये कार्यपालिका 'शक्तियां न्यायिक मजिस्टेड के पास ही थी प्रत्येक जिले मे निम्म तीन प्रकार के कार्यपालक मजिस्टेड के न्यायालय बनाए जाते है 1.जिला मजिस्टेड के न्यायलय 2.अतिरिक्त जिला मजिस्टेड के न्यायलय को डी.एम. ए. एम. डी. एम तथा एस. डी. एम. के नाम से संक्षेप मे पुकारते है ये सभी कार्यपालक मजिस्टेड या अधिकारी प्रशासनिक न्यायिक एंव राजस्व सम्बन्धी मामलों का विचारण भी किया जाता है राजस्व मामलों की अपील राजस्व अपील प्राधिकारी संभागीय आयुक्त तथा राजस्व मेडल द्वारा सुनी जाती है

19.13 दाण्डिक न्याय प्रशासन का सहयोगी दलबल

न्यायिक प्रशासन के क्षेत्र मे सभी दाण्डिक दीवानी और राजस्व न्यायालयों द्वारा विचारणीय और निस्तारणीय मामलें सम्मिलित किए जाते है न्यायालयों के पीठासीन अधिकारी को सहायता प्रत्यक्ष एंव

अप्रत्यक्ष रूप् से निम्नलिखित विभागों के अधिकारीगण और कर्मचारीगण करते है प्रत्येक न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय से लेकर निम्न न्यायालय के द्वारा दो प्रकार के कामकाज किए जाते है 1.न्यायिक कार्य 2.प्रशासनिक कार्य साथ साथ किए जाते है निम्मविभाग दाण्डिक न्याय प्रशासन के सहयोगी हो सकते है

19.13.1 पुलिस प्रशासन ए. सी. डी. सी. आई. डी. व सी. बी. आई

19.13.2 न्यायालयों का प्रशासन न्याय मूर्ति से दण्डनायक तक

19.13.3 कारागार प्रशासन आई. जी. डी. आई. जी. समादे"टा जेलर

19.13.4 चिकित्सा एंव स्वास्थ प्रशासन सचिव निदेशक प्राचार्य आचार्य चिकित्सक सर्जन

19.13.5 अभियोजन प्रशासन निदेशक उपनिदेशक सहायक निदेशक विशेष लोक अभियोजक व सहायक लोक अभियोजन पुलिस अधिकारी सी. ओ. सी. आई. ए. एस. आई आरक्षक

19.13.6 विधि विज्ञान प्रयोगशाला प्रशासन इसमे निदेशक उपनिदेशक सहायक निदेशक वरिष्ठ वैज्ञानिक कानिष्ठ वैज्ञानिक व विशेषज्ञ वैज्ञानिक

19.13.7 सामाजिक अधिकारिता एंव कल्याण प्रशासन सचिव निदेशक उपनिदेशक सहा. निदेशक

20.0.13.8 महिला एंव बाल विभाग प्रशासन इस प्रकार दाण्डिक न्याय प्रशासन के निस्तारणार्थ न्यायमूर्ति व न्यायाधिकारी न्यायाधीश मजिस्टेड न्यायिक एंव कार्यपालक पुलिस अधिकारी कारापाल लोक अभियोजक विधि विज्ञान चिकित्सक चिकित्सा न्यायशास्त्री विशेषज्ञों वैज्ञानिकों गवाहों प्रभाकारों और अधिवक्तागण दाण्डिक न्याय प्रशासन की सहायता करते है। दाण्डिक न्याय प्रशासन पत्रकारों के विवादास्पद मुदों को संघर्ष के समाधान करने का सशक्त जरिया बन चुका है अन्र्तविरोध निवारण मे दाण्डिक न्याय प्रशासन की महत्वपूर्ण योगदान को विस्मित नही किया जाना चाहिए। आपराधिक मामलों के त्वरित गति से निस्तारित करने मे फौजदारी न्यायलयों के निवारण की अहम भुमिका रही है इसमे सेशन विचारण धारा 22.5 से 237 मजिस्टेटो के द्वारा वारण्ट मामलों के विचारण धारा 238 से 250 समन मामलों के विचारण धारा 251से 259 तथा अतं मे संभित्त विचारण धारा 260 से 265 की पूरी अन्वीक्षा प्रकिया को स्पष्ट उजागार करके दाण्डिक न्याय प्रशासन को सम्बल प्रदान करने मे कोई कसर नही छोडी है।

19.14 सारांश

इस इकाई दाण्डिक न्याय प्रशासन अन्तर्विरोध समाधान एक सिंहावलोकन का वर्तमान मे अतिमहत्वपूर्ण स्थान हो गया है न्याय प्रशासन मे फौजदारी दीवानी राजस्व बीमा बैंकिग परिवहन सहकारिता भष्ट्राचार दुर्घटना दावे पारिवारिक व अत्याचार निवारण मामलों की भरमार हो गई है प्रस्तुत ईकाई के अन्तर्गनत अपराध अपराधियों और दाण्डिक न्याय प्रशासन मामलों के विवादों के निस्तारण मे संघर्ष समाधान किस तरह से हो सकता है इसे औचित्य अर्थ परिभाषा क्षेत्र और वर्तमान परिहश्यों मे इसके महत्व को बताया गया है न्यायिक प्रशासन के उपांगो पर प्रकाश डाला गया है दाण्डिक न्यायालयों और कार्यलयों के गठन और दाण्डिक अधिकारियों को प्राप्त सजा देने की 'शक्तियां की व्याख्या की गई है आपराधिक

विधि के उत्पति से लेकर विकास प्रक्रम को समझाया गया है रोमन मुगलकाल ब्रिटिश काल एंव आधुनिक काल मे भारतीय दाण्डिक व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है। प्राचीन भारत मे विधमान रहे साथ ही अपराध अपराधियों के तत्व चरण और वर्गीकरण को समाहित किया है। अपराध तथा दण्ड के विभिन्न सिघ्दान्तों की भलीप्रकार से व्याख्या की गई है न्याय के समतामूलक उपयोगिता सामाजिक संविदाकरण हकदारी तथा सामान्य भलाई के नियमो धार्मिक के अर्थ को समझा दिया गया है। इसके बाद हमनें आपराधिक न्याय के मूलभूत सिद्वान्तों के प्रतिपादकों के गहन विचारों के साथ विमर्श किया गया है। आपराधिक विधि के संक्षेप स्वरूप को उजागर करने के पश्चात् दाण्डिक न्यायालयों में अपराधों और मामलों के वर्गीकरण के सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न प्रकार के दाण्डिक मामलों की प्रकृति के अनुसार वर्गीकरण के बाद विभिन्न दाण्डिक न्यायलयों के न्यायिक एवं प्रशासनिक कामकाज के ढांचे पर स्पष्ट विवेचना कर दी गई है। इसमें हमारे देश की शीर्षस्थ न्यायलयों जैसे उच्च न्यायालय और अधीनस्थ न्यायालयों के प्रशासनिक और न्यायिक ढांचे, न्यायालयों के खासकर अपाराधिक न्यायलयों के न्याय-प्रशासन के महत्वपूर्ण बिन्दुओं को आलोकित किया गया है। न्यायालय के क्षेत्राधिकार एवं उनकी कार्यप्रणाली को विस्तार से व्याख्या की गई और ईकाई के सब अंत में दाण्डिक न्याय प्रशासन में सहयोगी दलबलों के अनवरत सहयोग के बारे में बताया गया है। इसमें कोई अतिश योक्ति नहीं है कि न्यायिक पीठासीठ अधिकारियों के साथ कंधा से कंधा मिलाकर पुलिस, काराग्रह, अभियोजन, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, सामाजिक अधिकारिता एवं कल्याण, महिला एवं बाल, विधि विज्ञान प्रयोगशाला इत्यादि विभागों के अधिकारीगण एवं कर्मचारी वृन्द अपना अभवस्त सहयोग दाण्डिक न्यायालयों के न्यास प्रशासन को सुदृढ़ बनाते रहे हैं। न्यायालय के अधिवक्तागण अधिकारी होते है। इसमें न्यायाधीशों, दण्डनायाको, अभियोजकों, चिकित्सकों, वैज्ञानिकों, विशेषज्ञों, साथीगण पत्रकारों का भी न्याय प्रशासन में अपरिचित सहयोग महसूस किया गया है।

19.15 अभ्यासार्थ-बोध प्रश्न

1- आपराधिक न्याय प्रशासन की पुलिस, जनता, जनप्रतिनिधियों और कर्मचारियों के मध्य विवादों के अन्तर्विरोध समाधान में किए गये योगदान को बताइए। अपराध और अपराधियों के बीच संघर्ष निवारण में दाण्डिक न्याय प्रशासन की भूमिका पर निबन्ध लिखिए।

2- अपराध और अपराधियों के बीच संघर्ष निवारण में दाण्डिक न्याय प्रशासन की भूमिका पर निबन्ध लिखिए।

3- न्यायिक प्रशासन से आप क्या समझते है? दाण्डिक न्याय प्रशासन के तात्पर्य, क्षेत्र और महत्व को उजागर कीजिए।

4- अपराध को परिभाषित कीजिए। अपराध के तत्वों और अवस्थाओं के बारे में विवेचना कीजिए।

5- अपराध करने वाले घटकों (कारकों) को स्पष्ट करने वाले अपराध के विभिन्न सिद्वान्तों को स्पष्ट किजिए।

6- दण्ड से आपका क्या अभिप्राय है? भारत में दण्ड के विभिन्न प्रकारों और दण्ड के सिद्वान्तों के पक्ष एवं विपक्ष में अपने विचार विमर्श कीजिए।

7- दाण्डिक विधि की उत्पति और विकास प्रभावित करने वाले दाण्डिक न्याय व्यवस्थाओं की विवेचना कीजिए।

8- न्याय से आपका क्या आशय है? विभिन्न न्याय के सिद्वान्तों और उसके स्वरूपों और प्रचलित दण्ड के प्रकार को आलोकित कीजिए।

9- दाण्डिक न्याय प्रशासन से आप क्या समझते है? दाण्डिक न्याय के प्रतिपादित किए गये मूलभूत सिद्वान्तों पर प्रकाश डालिए।

10- आपराधिक न्यायालयों ने शांति और लोक व्यवस्था और न्याय दिलवाने में अग्रणनीय भूमिका निभाई है। दाण्डिक विधि के विभिन्न स्वरूपों पर अपनी समीक्षा किजिए।

11- ''अपराधों ने भारत में अपनी गहरी जड़े पसार ली है। यदि आप इस मत से सहमत है तो इनके अपराधों के वर्गीकरण को स्पष्ट किजिए।

12- '' सामाजिक न्याय की नवीन अवधारणा अपना समाज में वजूद कायम कर रही है। न्याय व्यवस्था में सामाजिक परिवेश के संदर्भ में विवेचना किजिए।

13- भारत में वर्तमान के फौजदारी न्यायालयों के गठन और इनको प्रदत की गई शक्तियों को रेखांकित कीजिए।

14- न्याय-प्रशासन में सहयोग करने वाले विभागों व दलबलों का विवादों के अन्तर्विरोध समाधान कराने में क्या योगदान रहा है। इसकी विवेचना कीजिए।

15- दाण्डिक न्याय प्रशासन कुशलता के साथ अग्रसर करने में न्यायपालिका और खबरपालिका की भूमिका पर निबन्ध लिखिए।

16- आपराधिक मामले में विचारण अभियुक्त के सभी ओर परिक्रमा करता है? यदि आप इससे सहमत है तो विचारण की व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।

17- निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए।

(I) फौजदारी न्याय प्रशासन (II) पुलिस प्रशासन (III) अभियोजन प्रशासन (Iv) विधि विज्ञान प्रयोगशाला (v) कारागार प्रशासन (vI) चिकित्सा विधि शास्त्री (vII) उच्चतम और उच्च न्यायालय की दाण्डिक क्षेत्राधिकारिता

19.16. प्रयुक्त शब्दावली

1- संघर्ष निवारण : न्यायालयों द्वारा पत्रकारों के विवादों के अन्तविरोध निवारण के प्रयास से है।

2- आपराधिक मामलें : भारतीय दण्ड संहिता और दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन दाण्डिक मामलों से है इनको फौजदारी न्यायालय ही विचारण में लेते है।

3- सिद्वान्त से अभिप्रेत बनाए गए नियम से है।

4- मूलभूत से तात्पर्य मौलिक या आधाभूत से है।

5- विधि से तात्पर्य केन्द्र या राज्य सरकार द्वारा बनाए गए संहिताबद्व प्रावधानों से है।

6- स्वच्छन्दता से अभिप्रेत सीमाहीन स्वतंत्रता से है।

7- न्यायलय से अभिप्रेत न्याय सदन कचहरी से है।

8- न्यायिक कार्यवाही से तात्पर्य उस विधिक कार्यवाही से है। जिसे न्याय सशपथ पर कार्यवाही सम्पन्न करते है।

9- पुनस्थापना से अभिप्रेत दुबारा स्थापना होने से है।

10- समाधान से तात्पर्य किसी विवाद के हल निकालने की युक्ति से है।

11- जमानतीय मामले से तात्पर्य प्रथम अनुसूची में जमानत होने योग्य बताए गये मामले से है। इसमें जमानत हक और जेल अपवाद है।

12- आरोप: से अभिप्रेत किसी आरोपी पर लगाए गये दोषारोपण करने से है न्यायालय आरोप पत्र बनाते है।

13- संज्ञेय अपराध इसमें पुलिस अधिकारी वारण्ट के बिना गिरफ्तार कर सकता हैं।

14- परिवाद से दण्डनायक द्वारा की गई लिखित/मौखिक रूप किया गया अभिकथन अभिप्रेत है। इसमें पुलिस रिपोर्ट नहीं आती है।

15- जांच से अभिप्रेत है विचारण से भिन्न प्रत्येक जांच मजिस्ट्रेट या न्यायालय द्वारा की जाए।

16- अन्वेषण : के अन्तर्गत वे सभी पुलिस द्वारा दी गई सत्यता का पता चलता लगाने हेतु साभ्य एकात्रित करने से है।

17- अंसज्ञेय अपराध : से अभिप्रेत उस मामले से है जिसमें वारण्ट के बिना गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है।

18- अपराध से कोई ऐसा कार्य लोप अभिप्रेत है जो विधि द्वारा दंडनीय है।

19- पुलिस रिपोर्ट से अभिप्रेत पुलिस द्वारा पेश किए गये आरोप-पत्र चालान से है।

20- समन मामला: किसी अपराध से सम्बन्धित है जो वारंट मामलान है।

21- वारण्ट मामला : ऐसा मामला अभिप्रेत है जो मृत्यु आजीवन करावास या 2 वर्ष से अधिक की अवधि के कारावास दण्डनीय किसी अपराध से है।

19.17 संदर्भ-ग्रंथ

1- भारतीय दंड संहिता डॉ. एस.एस. श्रीवास्तव 2003 प्रथम संस्करण, यूनिवर्सिटी बुक हाउस (प्रा.लि.)79 चौड़ा रास्ता, जयपुर, राजस्थान (भारत)।

2- अपराधशास्त्र एवं अपराधिक प्रशासन एम.एस. चौहान 1991 चतुर्थ संस्करण, सेन्ट्रल लॉएजेन्सी मोतीलाल नेहरू रोड़, इलाहाबाद-211002 उतरप्रदेश (भारत)।

3- अपराधशास्त्र एवं दण्ड प्रशासन डॉ. ना.वि.पराज पे 2000 द्वितीय संस्करण पुन:मुद्रित सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स 107 दरभंगा कॉलोनी, इलाहाबाद (उ.प्र.)।

4- दण्ड प्रक्रिया संहिता आर.सी.खेड़ा 2006 प्रथम संस्करण एलाइड बुक कम्पनी (पब्लिकेशन्स) एफ-4, गोखले बाजार, दिल्ली-110054 (भारत)।

5- न्यायिक प्रक्रिया डॉ. बी.एल बाबेल 2012 प्रथम संस्करण, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स 107 दरभंगा कैंसल इलाहाबाद-211002, उतरप्रदेश (भारत)।

6- आपराधिक विधि एवं प्रक्रिया में अभियुक्त व्यक्ति के अधिकार एक सामाजिक विधिक भारत में इसकी विधायिकी की और न्यायिक प्रद्वतियों का एक अध्ययन डॉ. नाथूलाल गुर्जर 2002 पीएच.डी.विधि शोध प्रबंध-पंचाधित 2004।
7- विधिशास्त्र एवं विधि के सिद्वान्त डॉ. राधा गुप्ता प्रा.लि.79 चौड़ा रास्ता, जयपुर, राजस्थान (भारत)
8- विधिशास्त्र एवं विधि के सिद्वान्त डॉ. मंजू कुलवाल, 2005 प्रथम संस्करण, यूनिवर्सिटी बुक हाउस प्रा.लि. 79 चौड़ा रास्ता, जयपुर-302003, राजस्थान (भारत)।
9- भारत का संविधान डॉ.जे.एन. पाण्डे 2009, 42वां संस्करण, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, नेहरू रोड़, इलाहाबाद, उतर प्रदेश (भारत)।
10- भारतीय साक्ष्य अधिनियम डॉ. शर्मा, शर्मा विश्वकर्मा 2011 प्रथम संस्करण, यूनिवर्सिटी बुक हाउस प्रा.लि. 79 चौड़ा रास्ता, जयपुर-302003, राजस्थान (भारत)।